Navneet Sep-Oct 1982 G.K.U.

35 वर्ष का होने से पहले
ही अपनी पेन्शन
कैसे प्राप्त करें!

नवनीत

संस्थापक
कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक
वीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक
रामलाल शुक्ल

*

संयोजक
शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक
सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :
कमलाक्ष शेणै

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३२; अंक : १०

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

अक्तूबर १९८३

चित्र-सज्जा : ओके, शेणै, राणा, दिनेश सिसौदिया।

नयी दिल्ली में २८ से ३० अक्तूबर तक

तृतीय विश्व हिंदी - सम्मेलन

भारतीय संविधान में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के संबंध में निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है :

'हिन्दी भाषा का प्रचार करना और उसका विकास करना, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।'

संविधान में उल्लिखित पैराग्राफ की शब्दावली से न तो राजभाषा हिन्दी के और न अन्य भारतीय भाषाओं के संबंध में किसी प्रकार के भ्रम की गुंजाइश रह जाती है। फिर भी समय अपना काम करता है और राजनीति अपना। पर हम अपने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के निम्न कथन को नहीं भुला सकते : 'स्वदेशाभिमान को स्थिर रखने के लिए हमें हिन्दी सीखनी ही चाहिये। वह हमारे देश की राष्ट्रभाषा है और बिना राष्ट्रभाषा के राष्ट्र गूंगा है। मैं चाहता हूं कि हर भारतवासी हिन्दी सीखकर अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना व्यक्त करे।'

राष्ट्रपिता की उपरोक्त भावना का सम्मान करते हुए हिन्दी के प्रति प्रेम और सद्भावना का वातावरण बनाने की दृष्टि से ही हमारे देश की राजधानी नयी दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम में आगामी २८ से ३० अक्तूबर तक 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा' द्वारा आयोजित तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन होने जा रहा है। इसके पूर्व प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन जनवरी-१९७५ में नागपुर में हुआ था। उसका उद्घाटन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था। उसके बाद द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन अगस्त-१९७६ में मारिशस में सम्पन्न हुआ। मारिशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री शिवसागर रामगुलाम ने उसका उद्घाटन किया था और भारत के तत्कालीन स्वास्थ्य-मंत्री डा. कर्णसिंह ने उसकी अध्यक्षता की थी।

इस बार यह तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन बड़ी तैयारियों के साथ भारत की राजधानी दिल्ली में होने जा रहा है। इसमें लगभग ४०० विदेशी हिन्दी विद्वान, लेखक, कवि, पत्रकार और प्रचारकों के भाग लेने की आशा है। भारत के विभिन्न

प्रान्तों से भी लगभग ४ हजार प्रतिनिधि इसमें हिस्सा ले रहे हैं।

रूस, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, हंगरी, जापान, इटली, इंग्लैंड, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, अमरीका, मारिशस, फिजी, सुरीनाम, केनिया, थाईलैंड, बांग्लादेश, श्रीलंका और पाकिस्तान के हिन्दी विद्वान बड़ी संख्या में भारत पधार रहे हैं।

सम्मेलन के दिशा-निर्देश और व्यवस्थित संचालन के लिए लोकसभा के अध्यक्ष श्री बलराम जाखड की अध्यक्षता में राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया है।

सम्मेलन के मुख्य आकर्षणों में होगा खुला अधिवेशन और तीन दिवसीय विचार गोष्ठियां। इनमें साहित्य और भाषा की विभिन्न समस्याओं पर खुलकर बहस होगी। इस अवसर पर भारतीय और विदेशी साहित्यकारों का सम्मान भी किया जायेगा।

इसमें हिन्दी के क्रमिक विकास की प्रदर्शनी, सांस्कृतिक कार्यक्रम और हिन्दी की एक त्रैमासिक पत्रिका 'विश्व हिन्दी धारा' का प्रकाशन दर्शनीय होंगे।

खुले अधिवेशन में १. अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी के प्रसार की सम्भावनाएं और प्रयास, २. भारत के सांस्कृतिक संबंध और हिन्दी भाषा तथा ३. मानव मूल्यों की स्थापना में हिन्दी की भूमिका पर खुलेआम बहस होगी।

तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के आयोजकों का विश्वास है कि समस्त भारतीय भाषाओं के साथ ही हिन्दी का विकास संभव है। तभी हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप भी प्राप्त हो सकेगा। भाषाओं में आपसी सहयोग और सद्भावना बहुत जरूरी है।

☐

कविवर मतिराम कुछ दिनों बूंदी नरेश महाराज भाऊसिंह के दरबार में रहे। एक बार जयपुर से एक सरदार महाराज से मिलने आया और बातों ही बातों में उसने उन्हें बिहारी का यह दोहा सुनाया :

लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुंहजोर तुरंग लौं ऐंचत ही चलि जाहिं !

महाराज को यह दोहा बहुत पसंद आया, और उन्होंने मतिराम की ओर देखा। मतिराम ने जवाब में तत्काल बनाकर यह दोहा पढ़ा :

मानत लाज लगाम नहिं, नेक न गहत मरोर।
होत लाल लखि बाल के दृग-तुरंग मुंहजोर !

काव्यकुशल पारखी बूंदी नरेश ने मतिराम की बड़ी प्रशंसा की क्योंकि मतिराम की अभिव्यक्ति अधिक सुंदर बन पड़ी थी।

—डा० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

☐

भारत में सूर्योपासना की प्राचीनता

□

डा. महेन्द्र वर्मा

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत उपासना के क्षेत्र में देवी-देवताओं में प्रमुख देव पांच माने गये हैं—गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य और शक्ति। इन देवताओं के नाम पर इनकी महत्ता के कारण विभिन्न सम्प्रदाय भी प्रचलित हो गये। यथा-गाणपत्य, शैव, वैष्णव, सौर और शाक्त सम्प्रदाय। गणेश सकल विघ्नों के विनाशक एवं कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने वाले रूप में, शिव कल्याणकारी और संहारक के रूप में, विष्णु सृष्टि पालनकर्त्ता के रूप में, सूर्य जीवन-शक्ति देने वाले रूप में और शक्ति आदि-जननि के रूप में मान लिये गये।

सूर्य वैसे सौर-मंडल के प्रधान हैं। वर्तमान भूगर्भ-शास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी व सौर मंडल के समस्त नक्षत्र गण आदि सब सूर्य के ही अंश हैं। सारा संसार उन्हीं के प्रकाश से ज्योतित रहता है। उन्हीं की कृपा से वर्षा होती है, खेत लहलहाते हैं, श्री-समृद्धि की वृद्धि होती है। इसीलिए सूर्य की पूजा वैदिक काल से ही प्रचलित है और वेदों में इन्द्र, अग्नि, मरुत, वरुण आदि अन्य देवों की भांति उनसे भी विभिन्न प्रकार की याचना की गयी है? यद्यपि यह बात दूसरी है कि इन्द्र व अग्नि के समान उनके संबंध में अधिक ऋचाएं वर्णित नहीं हैं। सूर्य से ही ऋतुएं, वर्ष, माह, सप्ताह आदि की कल्पना की गयी है, जो आज तक हर धर्म व सम्प्रदाय वाले मानते हैं।

'ऋग्वेद' (१।१२।१६४।१) एवं (११, १५) में कहा गया है—'सूर्य प्रजापालक सात किरणों से युक्त हैं। उनके एक पहिये वाले रथ में सात घोड़े जुतते हैं। इस अक्षय और तीन-नाभि वाले पहिये को एक घोड़ा ले जाता है। सभी लोक इस पहिये के आश्रित हैं। सात पहिये वाले समीपस्थ रथ को सात घोड़े चलाते हैं। सूर्य का बारह राशि रूप अरों से युक्त रथ चक्र आकाश के चारों ओर बारम्बार फिरता है। वह कभी पुराना नहीं होता। छः ऋतुएं परस्पर जुड़ी हुई क्रमशः इनके साथ गमन करती हैं। सहजात ऋतुओं में अधिक मास वाली सातवीं ऋतु अकेली ही रहती है।' इन ऋतुओं को सूर्य की सात बहिनों के रूप में किरणें माना गया है। इसकी पुष्टि 'ऋग्वेद' (१।१६४।३) इस प्रकार करती है—**'इमं रथमधि ये सप्त तस्थु सप्तचक्रं सप्त बहन्त्यश्वाः . . .'**

वेदों में उनका बड़ा गुणगान किया गया है। 'ऋग्वेद में (१।१६४।१४)—**'तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा'** कहकर

समस्त भुवन उन्हीं में स्थित बताये गये हैं। इसी वेद में (७।६३।२) वर्णित **'उद्वेति प्रसवीता जनानां महान केतु-रर्णवः सूर्यस्य'** के आधार पर उन्हें मनुष्यों का उत्पन्न कर्त्ता, सबका प्रेरक आदि कहा गया है। इसी वेद में अन्य (१।१६४।८) स्थान पर कहा गया है—'पृथ्वी माता आकाशस्थ सूर्य को वृद्धि के लिए पूजती है। वह गर्भेच्छा से वर्षा रूप गर्भ से सींची गयी, तब मनुष्यों ने अन्न प्राप्त कर स्तुति की।' 'अथर्ववेद' (३।४।१६।२) के अनुसार-सूर्य अदिति-पुत्र हैं एवं (४।४।१५।११) के आधार पर—वे प्रजापालक, अश्व के समान वेग वाले हैं तथा (५।२।४।९) के अनुसार वे शरीर के पालनकर्त्ता, राजयक्ष्मा व कुष्ठ रोग को दूर करने वाले देवता हैं।

कुष्ठ रोग से मुक्ति दिलाने के संबंध में 'भविष्य पुराण' (अ.—१३९) में एक स्थल पर कहा गया है—'जाम्बवती से उत्पन्न कृष्ण के पुत्र शाम्ब ने जिन्हें कृष्ण के शाप से कुष्ठ हो गया था, सूर्य की उपासना से अपना कुष्ठ ठीक किया गया था। 'वाराह पुराण' (१७७।५९-७२) भी इस आख्यान की पुष्टि इस प्रकार से करता है—'शाम्ब ने तब उदयगिरि, मथुरा, शाम्बपुर (पश्चिमी पंजाब में चन्द्रभागा के तट पर स्थित) एवं वर्तमान समय में मुलतान जनपद) में तीन सूर्य मंदिरों की स्थापना कराई। इन तीनों मंदिरों में स्थापित सूर्य की प्रतिमाएं प्रातः मध्याह्न और सायंकालीन अस्त होते हुए

सूर्यदेवता : हिन्दू पॅथियान

सूर्य की प्रतीक हैं। मथुरा में शाम्ब के द्वारा स्थापित कराई हुई प्रतिमा शाम्बादित्य के नाम से प्रसिद्ध है। शाम्बपुर के सूर्य मंदिर की सूर्य-प्रतिमा सोने की थी और भारत की तत्कालीन समस्त सूर्य-प्रतिमाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसका सुन्दर वर्णन किया है और अंग्रेज इतिहासकार डाउसन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में इस प्रतिमा के संबंध में लिखा है—'यह स्वर्णप्रतिमा २३० मन की थी और इसे मुहम्मद बिनकासिम ने जिसका भारत पर सबसे प्रथम मुस्लिम आक्रमण सन ७१२ ई. में हुआ था, नष्ट

कर दिया था।'

'अथर्ववेद' (३।४।१६।२) के अनुसार–'सूर्य सबके धारणकर्त्ता और पालनकर्त्ता हैं। दरिद्र व्यक्ति से लेकर राजा तक अपने इच्छित फल की प्राप्ति हेतु उनकी पूजा करता है। वे धनवान हैं। उनके धन का कभी नाश नहीं होता।' वेदों में सूर्य तथा उनके अनेक रूपों–जैसे सविता, पूषन, भग, विवस्वत, मित्र, अर्यमन्, धाता, विष्णु, आदि के उल्लेख मिलते हैं। 'ऋग्वेद' (२।२७।१) में मित्र, अर्यमन, भग, वरुण, दक्ष व अंश ये छः, 'तैतरी ब्राह्मण' (१।१।९।१-३) में धाता, अर्यमन, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान् ये ८, महाकाव्यों व पौराणिक साहित्य में धाता, मित्र, अर्यमन, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, पूषन, विवस्वान, सविता, त्वष्टा व विष्णु ये १२ नाम सूर्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इन्हीं को बारह आदित्यों की संज्ञा दी गयी है। ये सभी देवता किसी न किसी रूप में साम्य रखते हैं। कुछ देवों के कर्म समान होने से वे एक दूसरे का रूप भी धारण कर सकते हैं। यथा अपन नियमों में साम्य रखने से सविता मित्र का रूप धारण (ऋग्वेद–५।८१।४) कर लेते हैं। 'अथर्ववेद' (३।४।१६।५) में भग देवत्ता को धन का देवता मानकर उनसे धन की कामना की गयी है और उषा देवी से भग देवता को समीप लाने की प्रार्थना की गयी है। इसी 'अथर्ववेद' (८।५।९।११) में उषा सूर्य की वधू कही गयी है। अतः स्पष्ट है कि भग व सूर्य दोनों की उषा व होने के कारण दोनों ही एक हैं।

'ऋग्वेद' (१।३५।८-१०) में सूर्य लिए सविता का प्रयोग हुआ है और उन स्वर्णाक्ष एवं स्वर्णपाणि **'हिरण्याक्षः सवित देव . . . हिरण्यपाणि सविता . .'** कहक अंतरिक्ष को प्रकाशमान करने वाला क गया है। 'यजुर्वेद' (१।२०) भी **'धां देव वः सविता हिरण्यपाणिः'** कहकर इसक पुष्टि करता है। 'ऋग्वेद' (१।४२। एवं ९) में पूषा (पूषन) के रूप में स्व रथवाला कहा गया है और उनसे धन क प्राप्ति, उदर की पूर्ति, बल की प्राप्ति त तेजस्वी बनाने के लिए प्रार्थना की ग है। यथा–**'शग्धि पूर्धि प्रयंसि च शिशी प्रास्युदरम्। पूषन्निह क्रतुं विदः। न पूष मेथामसि सूक्तैरभिगृहोमसि। वसूनि दस् मीमहे।'**

जिस प्रकार सूर्य सहस्रों प्रकार के ध के स्वामी हैं, समस्त संसार उनमें स्थित उसी प्रकार इन्द्र (ऋग्वेद-२।१३।९-१० भी बताये गये हैं। जिस प्रकार इन्द्र अनेक राक्षसों का वध किया, उसी प्रका सूर्य भी नित्यप्रति राक्षसों का वध कर हैं। यथा–**'अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थ द्देवः प्रतिदाषं गृणानः'** (ऋग्वेद–१।३ १०)। 'यजुर्वेद' (उ.-२९।९) में को त्वष्टा मानकर उन्हें सम्पूर्ण विश्व रचयिता कहा गया है। यथा–'त्वष **विश्वं भुवनं जनान वहो .. होतः'** में 'तत **त्रापिता भुवनानि विश्वा'** समस्त वि

उन्हीं को अर्पित है, उन्हीं में समाहित है, (ऋग्वेद–१।१६४।१४) का भाव छिपा हुआ है।
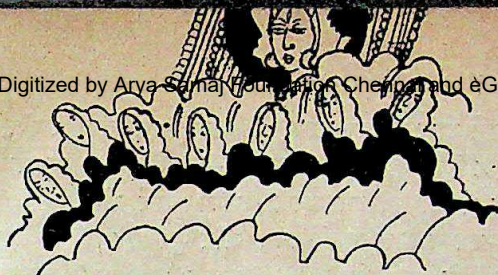
सूर्य के लिए अर्यमन का प्रयोग तो वेदों में प्रचुरता से हुआ है और विभिन्न वस्तुओं की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूप में का गया है। उदाहरणार्थ–'अथर्ववेद' (३।४।२०।२-३) में उनसे धन को प्रदान करने की कामना की गयी है। (६।१।४।२) में अदिति-पुत्र के रूप में अर्यमा से रक्षा करने को कहा गया है। सूर्य के रूप में विष्णु अपने तीन पैरों से त्रैलोक्य को नापते हैं। यथा–(ऋग्वेद–१।१५५।४-५)

इस प्रकार सूर्य, जो बारह आदित्यों के रूप में जाने जाते हैं, किसी न किसी रूप में अन्य देवताओं से साम्य रखते हैं। वेदों में सौर देवों में सूर्य सर्वाधिक स्थूल माने गये हैं। सविता प्रारंभ में सूर्य का एक विशेषण मात्र थे, लेकिन बाद में सूर्य से पृथक होकर सविता सूर्य की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म देवता बन गये। वे सूर्य की दिव्य शक्ति के मानवीय रूप माने गये। 'वैदिक देवशास्त्र' के रचयिता श्री सूर्यकान्त के मत में–'पूषन के चरित्र का आधार सूर्य की मूलांक शक्ति है, जो प्रधानतया ग्रामीण देवता के रूप में व्यक्त हुई है।' यास्क के अनुसार–'भग पूर्व मध्याह्न के देवता हैं।' विवस्वान् संभवतः उदय होते हुए सूर्य के प्रति रूप हैं। ग्रिस्वल्ड और मैकडॉनल के अनुसार–'सम्पूर्ण चर और अचर वस्तुओं के स्वामी सूर्य, सवितृ और पूषन हैं।' निरुक्त सवितृ को 'सर्वस्य प्रसविता' कहकर सर्वव्यापी कहता है।

वेदों में सूर्य के संबंध में और भी अनेक बातें कही गयी हैं। यथा–ऋग्वेद (१।११५।१) में वे अग्नि देव के परम सहायक हैं एवं इन्हें मित्र, वरुण तथा अग्नि का नेत्र कहा गया है– **'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुमित्रस्य वरुणस्याग्नेः'**। वेदों में कहीं पर वे सुनहले पंखों वाले सुन्दर पक्षी के रूप में चित्रित किये गये हैं, तो कहीं पर (ऋग्वेद–७।७७।३) वे श्वेत चमकते हुए अश्व के रूप में स्वीकार किये गये हैं, जो उषा द्वारा लाया गया है। कहीं-कहीं वे रथारूढ़ भी हैं और वे कहीं पर एतश नामक अश्व के द्वारा (ऋ०–७।६३।२), कहीं पर (ऋग्वेद–५।४५।९, ७।६०।३) सात अश्वों द्वारा, कहीं पर (ऋ०–१।११५।३) अगणित अश्वों द्वारा और वे भी सुनहले

घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर आरूढ़ रहते हैं। परवर्ती साहित्य एवं चित्र और मूर्तिकला में वर्णित अथवा प्रदर्शित उनके रथ में एक, चार, पांच व सात अश्वों का प्रचलन संभवतः यहीं से प्रारंभ हुआ है। 'ऋग्वेद' में कहीं पर उनकी उत्पत्ति पुरुष नामक दैत्य के नेत्र से बताई है, तो कहीं वे अदिति के पुत्र हैं और तभी वे आदित्य कहे गये हैं। 'महाभारत (सभापर्व–५०।१६) में 'भातिदिविदेवेश्वर' कहकर उन्हें देवेश्वर कहा गया है।

सूर्य के परिवार के संबंध में वेदों में तो अधिक नहीं मिलता, पर पुराणों में अवश्य ही कुछ निर्देश देखने को मिलते हैं। 'ऋग्वेद' (१।१६४) में इनका विवाह त्वष्टा की पुत्री सरण्यु के साथ बताया गया है। पर 'विष्णु पुराण (३।२।७-९) के अनुसार इनका विवाह विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से हुआ। वहां आगे यह भी एक मनोरंजक आख्यान है कि सूर्य के प्रचण्ड तेज को जब संज्ञा सह न सकी, तब वह अपनी छाया को अपने स्थान पर छोड़कर हिमालय प्रदेश के अंचल में चली गयी और वहीं पर जाकर घोड़ी का रूप रखकर तपस्या करने लगी। विश्वकर्मा ने भी सूर्य के तेज को कम करने का प्रयत्न किया। संज्ञा को न पाकर सूर्य ने तब पीछा किया और संज्ञा के उसी घोड़ी रूप से सूर्य के अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए, जिनका उल्लेख ऋग्वेद में पर्याप्त रूप में हुआ है। इस प्रकार वेदों के आधार पर उनकी पत्नी सरण्यु व पुराणों के अनुसार संज्ञा हैं, पर 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' (६।७ २–३) में सूर्य-प्रतिमा के निर्माण के समय उनकी चार पत्नियों–राज्ञी, निष्प्रभा, छाया और सुवर्चसा का उल्लेख हुआ है और ये क्रमशः पृथ्वी, आकाश छाया और प्रकाश अथवा प्रभास्वरूपा हैं। इन चार पत्नियों के अतिरिक्त उनके चार पुत्र रेवन्त, यम, मनु व द्वितय भी बताये गये हैं।

सूर्य-उपासना की परंपरा

सम्पूर्ण भारत में सूर्य की उपासना मुख्यतः दो रूपों में प्रचलित थी। एक तो नवग्रह में सूर्य रूप में, और दूसरे द्वादश आदित्यों में आदित्य रूप सूर्य में। सूर्योपासना का प्रारंभ वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गया था, जैसा कि वेदों में उनकी स्तुति में कही गयी अनेक ऋचाओं से ज्ञात होता है। वेदोत्तर काल में तो इसका और भी अधिक विकास हुआ। दोनों महाकाव्य (रामायण व महाभारत) तो सूर्य-सन्दर्भ से भरे पड़े हैं। भगवान राम स्वयं सूर्यवंशी थे। महाभारत में कुन्ती ने सूर्यमंत्र की स्तुति की थी, जिसके द्वारा स्वयं सूर्यदेव प्रगट हुए थे और उनसे कुन्ती की कौमार्यावस्था में ही कर्ण का जन्म हुआ था। महाभारत में उन्हें 'देवेश्वर' तक कहा गया है। गुप्तकालीन व परवर्ती संस्कृत साहित्य में तथा पुराणों में सूर्य के संबंध में पर्याप्त सामग्री है और आगे चलकर सूर्य-उपासना का प्रचार इतना अधिक हो गया कि सूर्य उपासकों का वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदाय की भांति एक नया सौर सम्प्रदाय ही ब

गया तथा इस सम्प्रदाय के अनुयायी उत्तर तथा दक्षिण भारत में समान रूप से थे। उनका विश्वास था कि सूर्य परमात्मा और जगतकर्त्ता हैं और इसकी पुष्टि वे संभवतः 'ऋग्वेद' (१।११५।१) के **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** के आधार पर करते थे।

भंडारकर के अनुसार–'ये सूर्य-उपासक, लाल चन्दन का तिलक लगाते, लाल पुष्पों की माला पहिनते और सूर्य-गायत्री मंत्र का जाप करते थे।' **'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्'** प्रसिद्ध गायत्री मंत्र, जो सर्व प्रकार का सुखदायक, रोग नाशक एवं विघ्नहर्त्ता है, वस्तुतः सूर्य मंत्र ही है। पूर्व मध्यकालीन कवि मयूरभट्ट ने अपनी कुष्ठव्याधि से मुक्ति सूर्यशतक नामक सौ श्लोकों की रचना द्वारा की थी।

सूर्य पूजा के विकास में प्रारम्भ में किसी प्रकार का कोई विदेशी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। वह प्रारम्भ में प्रतीक रूप में कई वृत्तों की आवृत्ति द्वारा ही प्रदर्शित होती थी। यह वृत्त उनके उस प्रकाश के द्योतक स्वरूप रहे, जो सम्पूर्ण विश्व में दिखाई देता है। वृत्ताकार सूर्य की यह प्रतीक उपासना बालाजी (सूर्य) के नाम से मध्यकाल में और आधुनिक काल में बहुधा यत्र-तत्र देखने को मिलती है। मध्यप्रदेश में स्थित उनाव बालाजी का यही रूप है और यहां की पहूज नदी का जल एवं बालाजी का यह रूप कुष्ठरोगियों के लिए वरदान स्वरूप है। पर साकार रूप में प्रतिमा उपासना का प्रारंभ शुंग काल में एवं प्रथम शताब्दी के विदेशी कुषाण वंशीय प्रसिद्ध शासक कनिष्क द्वारा प्रचलित गांधार शैली में माना जाता है। गांधार शैली में महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का तो इस शैली में प्रारंभ माना ही जाता है, पर कनिष्क, जो कि बौद्ध धर्म का प्रमुख अनुयायी होने के साथ-साथ अन्य धर्मों के प्रति भी धर्म-सहिष्णु था, की मुद्राओं पर नंदि व शिव की प्रतिमा के अंकन के साथ-साथ उस मिरो (मिहिर) नाम की एक आकृति भी मिलती है, जो सूर्य की ही पर्याय समझी जाती है। संभवतः मिहिर शब्द ऋग्वेद के मित्र का ही एक रूप है।

मिहिर (मिथ्र) सम्प्रदाय का जन्म ईरान में सूर्य-उपासना के रूप में हुआ था और इसका विस्तार कनिष्क के समय में एशिया माइनर, रोम से होते-होते भारत तक आ पहुंचा था।

ऐसा माना जाता है भारत में सूर्य-उपासना का प्रसार ईरान के सूर्य-उपासक मगों द्वारा किया गया था। गुप्तकालीन प्रसिद्ध ज्योतिषज्ञ वाराहमिहिर ने अपनी पुस्तक 'वृहत्संहिता' (अ. ६०।१९) में इस संबंध में कहा गया है–**'विष्णोर्भागवतान मगांश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजान्'** (अर्थात् विष्णु की प्रतिष्ठा भागवत या वैष्णव, सविता या सूर्य की मग एवं शम्भु या शिव की प्रतिष्ठा भस्म लगाने वाले ब्राह्मण करें)। कुषाणकालीन कनिष्क के समय की सूर्य-प्रतिमाओं पर ईरानी

प्रभाव स्पष्ट झलकता है । यथा–चोगा, कुरता, सलवार, पगड़ी या घुटने तक ऊंचे बूट पहिने एक हाथ में खंजर धारण किये हैं। इस प्रकार की सूर्य की यह पहली प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है और इस प्रकार सूर्य की प्रतिमा कनिष्क के पूर्व कभी भी और कहीं भी नहीं मिली। शुंग काल में बोधि गया के वेदिका-स्तंभ पर ४ घोड़ों के रथ पर आरूढ़ जो सूर्य प्रदर्शित हैं, वे धोती व उत्तरीय धारण किये हुए हैं, जो कुषाणकालीन उपरोक्त प्रतिमा से बिल्कुल ही भिन्न है ।

अतः स्पष्ट है कि ईरान में मिहिर या मिथ्र (डा. वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार) की पूजा का अत्यधिक प्रचार था। इसके अतिरिक्त शकों–पल्हवों में भी सूर्य-उपासना का प्रचुर रूप में प्रचलन था। एवं शकों व कुषाणों ने ही सर्व प्रथम सूर्य की पूजा का प्रचलन इस भारत में प्रचलित किया और अपने विदेशी परिधान से उसकी प्रतिमा को सजाया। यह सत्य है कि शुंग काल में भले ही बौद्ध कला के अंतर्गत बोधि गया आदि स्थानों में सूर्य का प्रदर्शन हुआ है, पर वहां वे उपास्य देव के रूप में सामने नहीं आये। ईरान में मगों द्वारा ही सूर्य-उपासना का प्रचलन था। इस संबंध में 'भविष्य पुराण' (अ.–१३९) में भी इसकी पुष्टि में एक आख्यान इस प्रकार से है– 'जाम्बवती से उत्पन्न कृष्ण-पुत्र शाम्ब ने जब चन्द्रभागा (वर्तमान चिनाब नदी) नदी के किनारे अपने कुष्ठ रोग के निवारण हो॰ पर सूर्य-मंदिर का निर्माण कराया, तब किसी भी स्थानीय ब्राह्मण ने इस मंदि॰ के पुरोहित का पद स्वीकार नहीं किया इस पर शाम्ब ने महाराज उग्रसेन (कं॰ के पिता) के पुरोहित गौरमुख से इ॰ सम्बन्ध में विचार विमर्श किया, त॰ गौरमुख ने शाम्ब से शकद्वीप से उन मगों को बुलाने के लिए कहा, जो सूर्य के विशेष उपासक थे। तब शाम्ब अप॰ पिता कृष्ण रूपधारी विष्णु के वाह॰ गरुड पर सवार होकर शकद्वीप ग॰ और वहां से कुछ मग अपने साथ ला॰ तथा उन्होंने उस नवनिर्मित मंदिर के पुरोहित पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। डा. भगवतशरण उपाध्याय ने यह शक द्वीप सिंध प्रदेश बताया है, जहां सी॰ नदी के उत्तरी कांठे में बसने वाली श॰ जाति चीनी युएह्ची नामक जाति से बुरी तरह पराजित होकर आकर बसी थी। (भारतीय कला व संस्कृति की भूमिका–पृ. २१०) ।

प्रसिद्ध अलबरूनी ने भी अपने ग्रं॰ 'अलबरूनीज़ इंडिया' में एक स्थल प॰ लिखा है, 'प्राचीन ईरानी पुरोहित भार॰ आये और वे यहां मग नाम से जाने गये। अतः स्पष्ट है कि सूर्य पूजा की साका॰ उपासना की परम्परा ईरानी-मगों द्वार॰ ही भारत में प्रचलित हुई। इसके पश्चा॰ से उत्तर भारत में सूर्य-मंदिरों के निर्मा॰ की परम्परा ऐसी चली कि मध्यका॰

एवं आधुनिक कालतक सम्पूर्ण भारत में अनेक सूर्य-मंदिरों का निर्माण हुआ, जिनमें से कुछ तो निःसंदेह स्थापत्यकला की दृष्टि से अद्वितीय कृति ही कहे जा सकते हैं और कुछ मंदिर तो काल द्वारा ग्रसित हो जाने के कारण केवल इतिहास के पृष्ठों तक ही सीमित होकर रह गये हैं।

इसी प्रकार स्कंदगुप्त के इन्दौर ताम्रपत्र अभिलेख द्वारा ज्ञात होता है कि इन्द्रपुर (उ. प्र. में स्थित बुलन्दशहर जिले का इन्दौर का प्राचीन नाम—खजुराहो की देव प्रतिमाएं—डा. रामाश्रय अवस्थी पृ. १६४) में एक सूर्य मंदिर था। मिहिरकुल हूण (छठवीं शताब्दी) के ग्वालियर अभिलेख में गोपाद्रि (ग्वालियर) पहाड़ी पर मातृचेट द्वारा निर्मित एक सूर्य मंदिर का उल्लेख मिलता है। यह मातृचेट संभवतः उस मिहिरकुल का प्रांतीय प्रतिनिधि रहा होगा, जिसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी भारतयात्रा में कन्नौज के हर्षकालीन, एक सूर्य मंदिर का उल्लेख किया है।

हर्षवर्धन की मृत्यु (६४७ ई.) के पश्चात् और मुस्लिम अधिकार के पूर्व के मध्ययुग इतिहास प्रसिद्ध राजपूत काल तो स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला की श्रेष्ठता व कला सौष्ठव की दृष्टि से सर्व श्रेष्ठ काल कहा जाता है। इस काल में समस्त भारत में शैव, वैष्णव संप्रदायों के अंतर्गत तो असंख्य, मंदिरों का निर्माण हुआ ही, पर साथ में अनेक श्रेष्ठ सूर्य-मंदिरों का भी समय-समय पर निर्माण हुआ।

इन मंदिरों में कश्मीर का प्रसिद्ध साहित्य व कला प्रेमी शासक ललितादित्य के समय का मार्तण्ड-मंदिर भले ही खंडितावस्था में है, पर उसकी स्थापत्य कला उसके अतीत के कला-गौरव को प्रदर्शित करने में पूर्ण सक्षम है। इसी प्रकार अन्य सूर्य मंदिरों में मोढ़ेरा का सूर्य मंदिर (गुजरात), कोणार्क (उड़ीसा) का सूर्य मंदिर, चंदेलकालीन प्रसिद्ध कलातीर्थ खजुराहो का चित्रगुप्त (सूर्य) मंदिर, दक्षिण भारत का तिरुपति बालाजी का मंदिर, प्रतिहारकालीन मड़खेरा (टीकमगढ़) का सूर्य मंदिर स्थापत्य कला की श्रेष्ठता की चरमसीमा हैं।

सूर्य मंदिरों के निर्माण के साथ मध्ययुग में सूर्य की भी विशाल व भव्य प्रतिमाओं का निर्माण प्रतिमा-विज्ञान विषयक ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमा-निर्माण-निर्देशानुसार प्रचुरता से हुआ है। कहीं पर वे एक अश्व, कहीं पर सात अश्वों के रथ पर सवार बताये गये हैं और कहीं पर स्थानक मुद्रा में एकाकी रूप में व कभी परिवार के एवं अपने दो अनुचरों दंडी व पिंगल के साथ दिखाये गये हैं और कहीं पर वे नवग्रह में आदित्य रूप सूर्य में दिखाये गये हैं, इसी प्रकार कहीं पर वे हरिहर-हिरण्यगर्भ के रूप में दिखाये गये हैं।

—९७, गंधीगर, झांसी—२

□

सुप्रसिद्ध चीनी कथाकार लूशुन का आत्मकथ्य

□

मैं कहानियां कैसे लिखने लगा ?

मैं कहानियां कैसे लिखने लगा ? मैंने इसका कारण 'ललकार' की भूमिका में बता दिया है। यहां मैं इतना और जोड़ देना चाहूंगा कि जब मैंने साहित्य में रुचि लेनी शुरू की थी वह समय बदल गया है। तब चीन में कथा को साहित्य नहीं माना जाता था इसके लेखकों को लेखक का दर्जा नहीं मिलता था। तब कोई भी इस दिशा में अपना नाम जोड़ने की न सोचता। और मेरा विचार भी कहानियों को साहित्य तक खींच ले जाने का नहीं था। मैं सामान्यत: समाज को सुधारने के लिए उनका प्रयोग करना चाहता था।

मैं लिखने के लिए प्रतिबद्ध नहीं हुआ; तब मेरा झुकाव अनुवादों की ओर अधिक था और उन कहानियों के अनुवाद की ओर विशेष ध्यान दिया करता था जिनके लेखक दलित एवं शोषित वर्ग के होते थे। क्योंकि उन दिनों मांचुओं को निकाल बाहर करने की बहुत-सी बड़ी-बड़ी बातें हुआ करती थीं, तथा कुछ युवकों को इन दलित एवं नगण्य लेखकों की सहायता प्राप्त हुआ करती थी। यद्यपि मैंने कथा-साहित्य के लेखन के बारे में कोई पुस्तक नहीं पढ़ी थी। मैं जो भी कहानियां पढ़ा करता था, केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि लोगों से उनका परिचय करवाने के लिए पढ़ा करता था। मैंने साहित्य और साहित्यिक आलोचना का इतिहास भी पढ़ा, ताकि विभिन्न प्रकार के लेखकों के बारे में जान सकूं। वह भी इसलिये ताकि विचारों का परिचय देना अनुकूल रहेगा अथवा नहीं। इसके बारे में तब विद्वता-पूर्ण कुछ भी नहीं था।

क्योंकि मैं इन नगण्य एवं राजद्रोही कार्यों की तलाश में रहता था अत: नि:संदेह मेरा झुकाव पूर्वी यूरोप की ओर हो गया तथा मैंने रूसी, पोलैंड और बल्कन राज्यों के लेखकों की पुस्तकों को पढ़ा। एक समय में मैं अधीरतापूर्वक भारतीय तथा मिस्र की कहानियों की तलाश करने लगा। लेकिन कोई लाभ न हुआ। मुझे याद है कि उस समय मेरे प्रिय लेखक रूस के गोगोल तथा पोलैंड के सियेन्क्विज थे। इनके अलावा दो जापानी लेखक—नात्सुमी सोसेकी और मोरी ओगाई भी मेरे प्रिय लेखक थे।

चीन वापस आने के बाद मैंने एक स्कूल में पढ़ाना शुरू किया तथा पांच-छ: साल तक कोई कहानी पढ़ने का समय न मिला। मैं पुन: शुरू करने का कोई कारण तलाशने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता क्योंकि कारण मैं पहले ही 'लल-

कार' की भूमिका में बता चुका हूं । मैंने कहानियां इसलिये नहीं लिखनी शुरू कीं कि मैं विचार करता था या मुझमें कोई विशेष प्रतिभा थी, बल्कि कारण यह था कि मैं पेइचिंग (पीकिंग) छात्रावास में रह रहा था तथा मेरे पास शोधकार्य के लिए कोई संदर्भ-पुस्तक नहीं थी, न ही अनुवाद के लिए मूल पुस्तकें थीं । तब मुझे स्वयं ही 'कहानियों जैसी रचनाएं' लिखनी पड़ीं जो कि 'पागल की डायरी' थी । मुझे सौ या उससे भी अधिक विदेशी कहानियों पर निर्भर रहना पड़ता था जो कि मैंने पढ़ी थीं तथा थोड़े से मेडिकल (उपचार संबंधी) ज्ञान पर भी निर्भर रहना पड़ता था । मेरी और कोई दूसरी तैयारी न थी ।

लेकिन 'नया नौजवान' के संपादक बार-बार मेरे पास आकर मुझे लिखने को विवश करते और अंततः मैंने एक कहानी लिख ही दी ।

निःसंदेह जो आदमी कहानियां लिखता है वह अपने विचारों को उन कहानियों में व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता । जहां तक मेरा सवाल है कि मैं क्यों लिखता था, मेरा अब भी वही खयाल है जो कुछ दशक पहले था कि मैं लोगों को जागृत करने और मानवता की भलाई करने की आशा में लिखूं । मैंने 'शुद्ध मनोरंजन' के भाव से लिखी जाने वाली कहानियों का पुराना विचार त्याग दिया तथा मैं 'कला कला के लिए' के विचार को केवल समय

लूशुन

गुजारने का साधन मानता था । अतः मेरी कहानियों की विषय वस्तु लगभग इस असामान्य समाज के भाग्यहीन लोग ही होते । मेरा उद्देश्य सामाजिक भयानक रोगों की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए उनका पर्दाफाश करना था ताकि उसका उचित उपचार किया जा सके । मैंने लफ्फाजी से बचने की पूरी कोशिश की । जब मैं अनुभव करता कि मेरा विचार पूर्णतः स्पष्ट है तो मैं खुशी से फूला न समाता । पुरातन चीनी नाटचघरों में

पर्दे न होते थे तथा नये साल में बच्चों को बेची जाने वाली तस्वीरों में बहुत ही कम मुख्य आकृतियां होती थीं (यद्यपि उनमें से अधिकांश में पार्श्वभूमि भी चित्रित है) । यह सोचकर कि ऐसी शैली मेरे अभिप्राय से मेल खाती है, मैंने कभी भी फालतू विवरण देने की कोशिश नहीं की तथा संवादों को संक्षिप्त ही रखा ।

कुछ भी खत्म करने से पहले मैं उसे दो बार ध्यान से पढ़ता, जहां भी कुछ मुझे असंगत लगता वहां उचित काट-छांट कर देता ताकि पढ़ने में सुविधा हो । जब उचित देशीय भाव मुझे न मिल पाते तो मैं क्लासिकल भावों का प्रयोग करता । और यह आशा करते हुए कि कुछ पाठक तो अवश्य ही इसे समझ लेंगे । तथा कई बार मैं अपने ही दिमाग से उपजे, ऐसे मुहावरों का प्रयोग किया करता जिन्हें केवल मैं या कई बार मैं भी न समझ पाता । केवल आलोचक में से कोई एक इस पर टिप्पणी कर देता तथा वह मुझे शैलीवादी कहा करता था ।

जो कुछ भी घटनाएं मैं वर्णित करता वे मेरी देखी या सुनी हुई ही होती थीं। लेकिन मैं कभी पूरी तरह से तथ्यों पर निर्भर नहीं रहा । मैं केवल कोई घटना उठाया करता था तथा उसे तब तक परिष्कृत या विस्तृत करता जब तक कि वे विचार व्यक्त न हो जाते जो मेरे दिमाग में होते थे । यही बात चरित्रों को गढ़ने पर भी लागू होती थी। मैं कभी भी विशेष व्यक्तियों पर स्थिर नहीं रहा । मेरे पात्र अधिकतर चचियांग वाले मुख, पेइचिंग (पीकिंग) जैसे चेहरे तथा शानशी जैसे कपड़ों के मिश्रण होते थे । जो लोग यह कहते हैं कि फलां-फलां कहानी फलां-फलां उद्देश्य पर टिकी हुई है बकवास करते हैं ।

फिर भी, इस प्रकार के लेखन में एक कठिनाई यह है कि लेखन कार्य बीच में नहीं रोका जा सकता । अगर आप किसी कहानी को एक बैठक में ही लिख डालते हैं तो कहानी के पात्र धीरे-धीरे सजीव होकर उभरते हैं और अपनी भूमिकाएं निभाते चले जाते हैं परंतु यदि किसी कारण से आपका ध्यान कहीं और चला जाता है और आप काफी समय के बाद कहानी पर कार्य पुन: शुरू करते हैं तो संभव है कि आपकी कल्पना में पात्रों का चरित्र बदल चुका हो और कहानी वह न रह जाय जैसा आपने इसे पहले सोचा था । उदाहरण के लिए जब मैंने 'पूचऊ पर्वत' को शुरू किया तब मैं कामेच्छा की जागृति, इसके सृजन तथा इसके पतन का वर्णन करना चाहता था । लेकिन इसी दौरान मैंने एक लेख पढ़ा जो एक नैतिकतावादी ने प्रेम कविताओं पर चोट करते हुए लिखा था और जिससे मैं बिल्कुल असहमत था । अत: मैंने अपनी कहानी में ऐसा दृश्य डाल दिया जिसमें नुआ (एक पात्र) की टांगों के बीच से एक छोटा कीड़ा दौड़ जाता है । यह न केवल अनावश्यक था

अपितु इसने मेरे कथावस्तु के प्रयोजन को खत्म कर कर दिया, फिर भी संभवतः अन्य कोई इन कमज़ोरियों को नहीं पकड़ सकता। इतना ही नहीं बल्कि प्रसिद्ध आलोचक श्री छंगफांगऊ ने इसे मेरी सबसे अच्छी कहानी बताया है।

अगर आप किसी पात्र को किसी विशेष व्यक्ति पर आधारित कर लें तो मेरा खयाल है आप इस कठिनाई से बच जायेंगे लेकिन मैंने कभी इसकी कोशिश नहीं की।

मुझे याद नहीं यह किसने कहा था कि किसी व्यक्ति का चरित्र-चित्रण कम से कम रेखाओं में करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसकी आंखों को चित्रित किया जाय। यह एकदम सही है। अगर तुम उसके सिर के सारे बाल भी चित्रित कर दो, चाहे वह कितना भी सही क्यों न हो तो भी यह बहुत ज्यादा उपयोगी न होगा।

मैं निरंतर इस ढंग को सीखने की कोशिश करता रहा, पर दुर्भाग्यवश इस पर अधिकार प्राप्त न कर सका।

मैंने कभी किसी बनावटी वर्णन का प्रयोग नहीं किया और न ही मैंने तब अपने आपको लिखने पर मजबूर किया जब मैं महसूस करता कि मैं लिख नहीं सकता। लेकिन यह इसीलिये कि तब मेरी आय का साधन कुछ और था तथा लेखन ही मेरी जीविका नहीं था। लेकिन ऐसा बहुत कम लेखकों के साथ होता है।

पुनः जब मैं लिखता तो किसी प्रकार की आलोचना की तरफ ज़रा भी ध्यान नहीं देता था। क्योंकि अगर चीन के लेखक उन दिनों बचकाना लेखन करते थे तो चीन के आलोचक उनसे कम न थे। अगर वे आपको आसमान पर नहीं चढ़ा सकते तो वे आपकी बुरी तरह निंदा करेंगे। और अगर आप उनकी बातों को गंभीरता से लेंगे तब या तो आपको स्वयं को प्रतिभा संपन्न व्यक्ति के रूप में समझना होगा या अपने अपराधों के प्रायश्चित के लिए आत्महत्या करनी पड़ेगी। आलोचना लेखकों के लिए तभी लाभदायक हो सकती है जब यह बुरे की निंदा करे तथा अच्छे की सराहना।

मैं अक्सर विदेशी आलोचनात्मक निबंध पढ़ता हूं क्योंकि वे आलोचक न मेरे पक्ष-पाती थे न विपक्षी और यद्यपि उन्होंने दूसरे लेखकों के बारे में लिखा, उनके ऐसे बहुत से मूल्यांकन हैं जो मुझ पर भी लागू होते हैं।

लेकिन वास्तविकता तो यह है कि निःसंदेह मैं उनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता को भी समझ सकता हूं।

यह सब दस वर्ष पहले की बात है तब से न तो मैंने लिखा, न ही आगे बढ़ा। जब संपादक ने इस विषय पर मुझे निबंध लिखने को कहा तो मैं क्या लिखता?

जो कुछ मैं प्रस्तुत कर सकता हूं वह है यही खिचड़ी!

(मूल चीनी से अनुवाद : सत्य प्रकाश)

□

प्रेम की प्रांजल प्रतिमा : राधा

□

चन्द्रशेखर शुक्ल

राधा सौंदर्य-संकुल किसी नारी-प्रतिमा का नाम नहीं है। वह अनामिका है। सनातन नारी के शील, सौंदर्य एवं समर्पण-भाव मणि-कांचन संयोग की वह रम्यस्थली है। हमें तो लगता है कि राधा ज्ञान-चिंतन की नहीं, समग्र सृष्टि के प्रणय-भाव की, धवल निर्मिति है। शाश्वत साहित्य की वह सृष्टि है। स्वर्गिक सुषमा का सवाक प्रसून है। वास्तव में, राधा का सृजन साहित्य संसार की अनूठी, अप्रतिम वस्तु है। निर्विकल्प कल्पनामय कलाकार की अतुलनीय तूलिका द्वारा चित्रित वह अकूत सौंदर्यशालिनी प्रतिमा है। राधा प्रणय की पावनता का अभिधान है। वह विमल प्रेम की प्रतिनिधि देवी है। निर्मल दर्पण है, जिसमें प्रतिबिंबित अपने रूप को देखकर ही 'नंद-किशोर' अपने सौंदर्य को समझने में समर्थ होते हैं।

शरीर प्रेम की जन्मभूमि है। जैसे सभी लोग अपनी जन्मभूमि को प्यार करते हैं, वैसे ही प्रेम को भी अपनी जन्मभूमि अन्य भूमियों की अपेक्षा अधिक प्यारी होती है। राधा-भाव का तात्पर्य है–प्रियतम के प्यार में जीना। वह प्यार प्रिया को कभी चैन से रहने नहीं देता। प्यार का आधार शोभा है। शोभा का अनुप्रेरक धर्म यौवन है–नित नवीन यौवन, किशोरावस्था। राधा गोरी है –शत-शत शरतचंद्र ज्योत्सना सी। वह गोराई बनफेंटी मलाई-सी है। उसमें सहज उजास है। पर्त-दर-पर्त उसमें स्वाद का रहस्य लिपटा है। वह नीले रंग की साड़ी पहने हुई है। तप्त सोने के समान उसका शरीर प्रदीप्त है। मुख का आधा भाग साड़ी के आंचल से ढका हुआ है। उसके सुंदर, पीत, उन्नत वक्षःस्थल पर मोतियों का हार लहरा रहा है। स्थूल नितंब पर करधनी शोभित है। कटि-प्रदेश नितांत क्षीण है। अंगों पर नवयौवन की मधुरिमा विलस रही है।

वह प्रेम की प्रांजल प्रतिमा, माधुर्य का सार, आनंद का उत्स बनकर कृष्ण के हृदय को बाधित करती है। राधा कहती है, 'हे कृष्ण ! मैं तुम्हारी हूं।' यह प्रियतम के प्रति प्रिया का आत्मसमर्पण भाव है। राधा की दृष्टि का जहां तक प्रसार होता है, वह सभी परिवेश कृष्णमय है : 'जहं देखी तहं स्याममयी है'।

कृष्ण बहुबल्लभ हैं। यह भावस्थिति सनातन पुरुष की नियति होती है। उनके मनुहार के लिए शत-शत गोपियां हैं। गोपी-भाव परम भाव है। इन गोपियों में आठ गोपियों का भाव उत्कृष्टतर है, क्योंकि वे प्रियतम के नित्यक्रिया के विहार की साझीदार हैं। उनके संयोग से वे संयुक्त हैं, उनके वियोग से वियुक्त। इन सबमें उत्कृष्टम है, राधा-भाव। यह भाव कृष्ण का अन्यतम स्वाद है। कृष्ण के द्वारा जो आराधित है, वही राधा है तथा कृष्ण की जो आराधना करती रहती है, वही है, राधिका। राधा शब्द के साथ प्रेम-प्रचुरता का, भक्ति-कमनीयता का भाव जुट जाता है। प्रेम और काम एक ही भाव-तत्त्व के परस्पर विरोधी तंतु हैं। प्रेम में त्याग की भावना प्रबल होती है, काम में स्वार्थ-भावना। प्रेमी अपने प्रेम-भाव के लिए अपने सुख और सौख्य को भी मिटा देता है। प्रेम-संकुल राधा-चित्त का नित्य कृष्णमय विवर्त होता रहता है। राधा-चित्त के कृष्णाकार होने के कारण कृष्ण भी उसी प्रकार राधा के लिए व्याकुल होते हैं, जैसे राधा कृष्ण के लिए। राधा-चित्त कृष्ण-चित्त से उन्मंथित होता रहता है। ये दो संसार-प्रणय-सागर के एक आवर्त के दो प्रकार बनकर रहते हैं, प्रेम-बगिया के माली-मालिन के रूप में संज्ञायित होते हैं :

'प्रेम अयनि श्री राधिका प्रेम बरन नंद-नंद
प्रेम बाटिका के दोऊ, माली मालिनि द्वंद'

कृष्ण के सहवास में विलास करने वाली आठों गोपियों—ललिता, श्यामला, धन्या, हरिप्रिया, बिशाखा, शैव्या, पद्मा और चंद्रावती—में एकमात्र राधा ही विभक्त होकर रहती हैं। ये हाड़-मांस की बनी

गोपियां नहीं हैं, अपितु सृष्टि की उद्भाविका शक्ति हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। धरती पर विचरण करती राधा इतनी सुंदरी हैं कि स्वर्ग की अप्सराएं उनकी आंगिक छवि को संवद्धित करती हैं। राधा के नयन 'मदालसा' हैं। जघन 'रम्भा' हैं। वदन 'इन्दुमती' है। रमणीय रंजक रूप 'मनोरमा' है। संकेत की प्रक्रिया 'चित्रलेखा' है।

कृष्ण कहते हैं, जिस किसी के मुंह से 'रा' सुन लेता हूं, आनंदातिरेक में अपनी प्रेम-भक्ति उसे दे देता हूं। परंतु सोचता हूं कि मैंने उसे उचित पुरस्कार नहीं दिया। तत्काल, जब 'धा' सुनता हूं तो मैं उसके पीछे-पीछे चल पड़ता हूं, राधा नाम श्रवण की आकांक्षा से। 'राधा' स्वयं कृष्ण है, कृष्ण स्वयं राधा।

सोलह सहस्र गोपियों को प्यार पीड़ा की संज्ञा है—राधा : 'सोलह सहस्र पीरतन एकै राधा कहिएं सोय'। कृष्ण के सम्मुख प्रत्यक्ष रहने पर भी राधा के हृदय में तड़पन है : 'राधहि मिलहु प्रतीति न आवति'। यह इसलिए होता है कि समर्पण भाव का प्रेम परस्पर मिलन की 'समाधि-अवस्था' है। इसके मिलन में सुख नहीं मिलता, क्योंकि इससे मन परितोषित होता ही नहीं। और समाधि-अवस्था का वह प्रणय-सिक्त प्रकाश पुंज (फोकस) द्रष्टा की दर्शन-शक्ति विमूच्छित कर देता है। वह अनुराग-रस में आकंठ डूब जाता है। इस दशा को 'प्रेम वैचित्र्य' कहते हैं। 'मिले ही रहत मनो कबहूं मिले ना'। राधा का कृष्ण के प्रति प्रेम अद्भुत और अनू[illegible] है। चकई और सारसी के प्रणय विधा[illegible] यह भिन्न है। चकई का प्रेम विरह-प्रधा[illegible] होता है। सारसी का प्रेम मिलन-प्रधा[illegible] होता है। ये दोनों प्रेम की स्थितियां एकां[illegible] हैं। प्रेम का सच्चा धरातल है—मिलन [illegible] भी विरह की सत्ता का अनुभावन। कवि[illegible] देव की उक्ति है :

'राधिका कान्ह को ध्यान करें,
तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावैं।
त्यों अंसुआ बरसे बरसाने की,
पाती लिखे लिखि राधे को ध्यावैं।
राधे ह्वै जात धरीक में 'देव',
सप्रेम को पाती लै छाती लगावैं।
आपने आपही में उरझे, सुरझे,
बिरुझे समझें समुझावैं।'

राधा का रोम-रोम, तंतु-तंतु कृष्ण के उपभोग में आ जाय, यही उनकी कामना है। विरहिणी राधा ललिता से कहती है 'मेरे न रहने पर, मेरे शरीर का जलीय अंश मेरे प्यारे की बावली में आ मिले, जिससे वह उनके नहाने के उपयोग में आ जाये। शरीर का तेज प्रियतम के दर्पण में जा मिले, जिससे वह मेरी ज्योति में ही अपना मुंह देख सकें। आकाश उनके घर के आंगन के आकाश में मिल जाये। भूमि का अंश उनके रास्ते की भूमि में मिल जाये। मेरे शरीर का वायु उनके व्यंजन में जा मिले।

सुनते हैं कि कुरुक्षेत्र में अपनी पट[illegible] रानियों के साथ कृष्ण ने गोपियों से भेंट

की। रुक्मिणी कृष्ण से पूछती है कि इन गोपियों में 'राधा' नामक आपकी बचपन की सहेली कौन है, जो अल्पवयस की होने पर भी चतुर रही, जिसने आपको बुद्धि, बल और कला की सीख दी, जिसकी गौरव गाथा आप निरंतर जपते रहे। कृष्ण मुस्कराते हैं, चुप रहते हैं पुनः कहते हैं—'वह लखि युवति बृंद में ठाढ़ी, नील बसन तन गोरी'। रुक्मिणी क्षण भर भी रुक नहीं पाई। दौड़कर राधा से भेंट की :

रुक्मिनी राधा ऐसे भेंटी, जैसे बहुत दिना
को बिछुरी एक बाप की बेटी।
एक सुभाव एक बय दोऊ,
दोऊ हरि को प्यारी
एक प्रानपन एक दुहनि की,
तन करि दीसति न्यारी
निज मंदिर ले गयी रुक्मिनी,
पहुनाई विविध ठानी
'सूरदास' प्रभु तहं पगुधारे,
जहं दोऊ ठकुरानी।

राजमहल में राधिका रुक्मिणी का अतिथेय सहर्ष स्वीकार करती है। विभिन्न प्रकार के सुस्वादु भोग्य सामग्री रुक्मिणी राधा को परोसती है। राधा सप्रेम उसे ग्रहण करती है। भोजनोपरांत रुक्मिणी उन्हें गर्म दूध भी पिला देती है। राधा विदा होती है। कृष्ण उससे अकेले मिलते हैं। कैसी 'भावनुप्रेषित' स्थिति है, इन युग्म प्रेमियों की।

राधा माधव भेंट भई,
राधा माधव, माधव राधा
कीट भृंग गति ह्वै जु गई
माधव राधा के संग राचें,
राधा माधव रंग गई
माधव राधा प्रीति निरंतर,
रसना करि सो कहिन गई।

कृष्ण रुक्मिणी की शैया पर सोने जाते हैं। रुक्मिणी उनके पैर दबाने लगती है। किंतु, स्पर्शमात्र से ही कृष्ण कराहने लगते हैं। रुक्मिणी देखती है, उनके पैरों में छाले पड़े हुए हैं, जल (स्नेह) भरे पपोले। रुक्मिणी के कारण पूछने पर कृष्ण कहते हैं, 'रात में तूने राधा को गर्म-गर्म दूध पिलाया। मेरे पग उसके मर्मस्थल (हृदय) में सदा निवास करते हैं। इन पर छाले पड़ने का यही कारण है।' रुक्मिणी राधा के प्रति कृष्ण के ऐसे अन्यतम प्रेम की भाव स्थिति को जानकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। कृष्ण उसे होश में लाते हैं और कहते हैं : 'लोग मुझे कृष्ण के नाम से पुकारते हैं। किंतु, कृष्ण नाम तो मुझे तभी प्राप्त होता है, जब मैं 'राधा' के साथ संयुक्त रहता हूं।'

सुनते हैं, तब से कुरुक्षेत्र में संवत्सर के एक दिन राधा-माधव मिलन होता है। किंतु, राधा की आंखें उस स्थल पर इतनी सजल, ऐसी गीली बन जाती हैं कि वह कृष्ण को देख नहीं पातीं। फिर निरंतर विरह की ही [illegible] बनी रहती है।

—मंडल लेखा कार्यालय, [illegible] रेलवे,
वाराणसी, [illegible] प्र.

संगीत का ज्ञान और चिकित्सा-विज्ञान

□ रामकुमार

संगीत देव-वाणी है। यह एक पावन और प्राचीन कला है। सामवेद के सूक्तों में संगीत की विधि है और कुरान की किसी भी आयत का बेसुरा पाठ नहीं किया जा सकता है। डेविड के भजन-संग्रह (साम्स) श्रोता को परमानंद की अनुभूति देते हैं। वास्तव में, संगीत में व्यक्ति के संपूर्ण अस्तित्व को उद्वेलित कर देने की शक्ति है।

अनादिकाल से कवियों ने संगीत के आकर्षण के गीत गाये हैं। लांगफेलो के अनुसार–'संगीत देवदूत की कला है, परमेश्वर प्रदत्त भेंट है–यह सबमें उत्कृष्ट है।' अंग्रेजी के कवि बायरन की अनुभूति है–'हमारी सांसों में संगीत है, एक झरने के बहाव में संगीत है, आदमी के पास यदि कान हैं, तो सर्वत्र संगीत है, अपनी धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी भी प्रतिध्वनि मात्र है।' संगीत की उन्नायक और सर्व-व्यापक शक्ति का उल्लेख करते हुए कांग्रीव ने कहा है–'संगीत में हृदय को प्रशमित करने का आकर्षण है, यह चट्टानों को कोमल या एक गठीले ओक वृक्ष को भी झुका सकता है।' गांधीजी भी संगीत के प्रशंसक और कायल थे। उनके शब्दों में 'जो व्यक्ति संगीत से रिक्त है–वह या तो संत है या फिर पशु। हम संत होने से बहुत दूर हैं–और जितनी मात्रा में हम संगीत से रिक्त हैं–हम पशुओं के अधिक समीप हैं। संगीत की पहचान का अर्थ है उसे जीवन में उतार लेना।'

गांधीजी संगीत के रोगहर और शांति-प्रद प्रभावों से परिचित थे। उन्हीं के शब्दों में–'संगीत से मुझे शांति मिली है। मुझे अब भी वे अवसर याद हैं जब मैं किसी बात पर बहुत उत्तेजित था और संगीत ने तुरंत मेरे मस्तिष्क को शांत कर दिया। संगीत ने मुझे क्रोध पर संयम करने में सहायता दी है।' उन्होंने एक उदाहरण भी दिया है–'१९०७ में मैं जब दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल स्थान पर था तो मुझ पर कातिलाना हमला हुआ। शरीर पर कई घाव और इससे पीड़ा का एहसास था। जब ओलाईव ने मुझे यह कोमल गीत सुनाया 'लीड काइंडली लाइट' (मार्ग दर्शा दो हे करुणाकर प्रकाश) तो मेरी पीड़ा शांत हुई।'

इस संदर्भ में संगीत एक ऐसा विषय हो जाता है कि चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में इसका अध्ययन करके इसका उपयोग किया जाये, क्योंकि संगीत के प्रभाव से क्रिया-प्रतिक्रिया होती है और उसके परिणाम सम्मुख आते हैं। यदि संगीत का किसी रोगी के इलाज में उपयोग किया जाये तो

चिकित्सा के रूप में संगीत का महत्व सिद्ध होगा।

वी. फिजीन का कथन है कि कोई भी जीवित वस्तु संगीत के प्रति उदासीन नहीं होती। एक आकस्मिक ध्वनि पौधे को जगा देगी। किसी ऊंचे स्वर की ध्वनि रोग उत्पन्न कर देती है। किसी जीव के विविध अंगों या शरीर अवयवों की क्रिया में ताल-बद्ध ध्वनियां परिवर्तन करने में समर्थ हैं।

यदि किसी ताल-घड़ी में एक मिनट में ६५ से लेकर १६० तक धड़कनें उत्पन्न की जायें तो उसे सुन लेने पर तुरंत ही एक गिलहरी साथ-साथ उछलने लगेगी। संगीत से दरअसल, नाड़ी सुस्थिर होती है, दृश्य-अनुभूति बढ़ जाती है, काम में लगे लोगों की एकाग्रता तथा सजगता बेहतर हो जाती है और बाह्य प्रभावों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया का समय घट जाता है। प्राचीन ग्रीसवासियों ने अपने कला-संरक्षक अपोलो और उसके पुत्र औषधि-संरक्षक एस्कुलेपियस ने संगीत तथा चिकित्सा का घनिष्ठ संपर्क स्थापित किया था। महान ग्रीस चिकित्सक हिपोक्रेटीज़ ने संगीत को उपचार पद्धति में शामिल किया था।

मशीन की तरह घंटों काम करने से उत्पन्न तनाव और ऊब की संगीत से रोक-थाम की जा सकती है। प्राचीन मिस्रवासी इस तथ्य से परिचित थे और वे नारियों के प्रसवकाल में संगीत-प्रयोग से उन्हें सहायता पहुंचाते थे और मानसिक-स्वास्थ्य बनाये रखने के प्रयास करते थे।

एक रूसी मनोचिकित्सक के अनुसार—'संगीत मात्र उदार बनाने वाला या शिक्षा-परक तत्त्व नहीं है, उससे स्वास्थ्य में भी सुधार होता है।' उसने यह भी सिद्ध किया कि संगीत के प्रयोग से नाड़ी या स्नायु मंडल से संबंधित कई रोगों का निदान करना संभव है। सांस-प्रक्रिया और रक्त-संचार पर संगीत का गहरा प्रभाव पड़ता है। यह जीव में चेतना को घटाने या बढ़ाने की शक्ति रखता है।

एक संगीत-विद्वान का कथन है कि—'नृत्य और संगीत की मधुरता का एहसास करें—संगीत के स्वर सुनें क्योंकि उनका हृदय की धड़कनों से साम्य है।' तात्पर्य यह है कि लय या ताल हृदय को शांत कर सकते हैं और आनंदजनक भावनाओं को उत्पन्न करने में समर्थ हैं। ध्वनि के भिन्न-भिन्न स्वर या सुर हृदय तथा नाड़ी-मंडल को कई तरह से प्रभावित करते हैं। इससे हृदय-स्पंदन घट-बढ़ जाता है और नाड़ी की गति बदल जाती है।

एक चिकित्सक ए. डुगेल ने सिद्ध किया है—'नपी-तुली आवाज़ जिससे निश्चित आवृत के ध्वनि प्रदोलन उत्पन्न होते हैं अन्य प्राकृतिक शोरों की तरह स्पंदन को बढ़ा या घटा सकते हैं और नाड़ी की गति को व्यवस्थित कर सकते हैं। प्रदोलनों की निश्चित आवृति से उत्पन्न ध्वनि के प्रभाव के परिणामस्वरूप क्षतिग्रस्त नाड़ियों में विलंबित पेशी-संकुचन होकर रक्त-स्राव रुक सकता है।'

संगीत का आंतरिक ग्रंथियों की क्रिया और रेखित पेशियों की ताल पर भी प्रभाव पड़ता है। पेशी-शक्ति याने 'डायनमो मीटर' तथा 'आटोग्राफ' पर तालबद्ध, तरणशील तथा मुख्य-स्वर कंपनों को मांस-पेशियों की गति बढ़ाते देखा जा सकता है। इस प्रकार ये कुछ तथ्य चिकित्सा क्षेत्र में संगीत का उपयोग करने की संभावना के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

बी. फीगिन का कथन है कि अधिकांश तथा प्रकृति द्वारा उत्पन्न किया गया संगीत ही मानव शरीरावयवों को लाभकारी होता है–'जिस संगीत का सुर बहुत ऊंचा या बहुत ही नीचा होता है उससे नाड़ी मंडल पर उत्तेजना या अति उत्तेजना जैसे हानि-कारक प्रभाव पड़ सकते हैं। गंभीर रोगियों के साथ प्रायः ऐसा नहीं होता। ऐसे उदा-हरणों में अत्यंत तीव्र ध्वनि वाला संगीत हानिकारक होता है। कारण स्पष्ट है कि उच्च प्रदोलन जो पराध्वनि के समीप होते हैं विश्रांति की सी अनुभूति उत्पन्न कर देते हैं जबकि नीचे प्रदोलन जो अपध्वनि के समीप होते हैं–भय और आशंका उत्पन्न कर देते हैं।'

अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि रोग निदान और चिकित्सा या उपचार में सहायक साधनों के रूप में संगीत का भावी उपयोग व्यापक होगा।

वर्तमान में भी दंत-चिकित्सा, प्रसव, मनोचिकित्सा, सर्जरी आदि में संगीत का

उपयोग बढ़ने लगा है।

दांतों की शल्य-क्रिया या प्रसव में संगीत का उपयोग पीड़ानाशक के रूप में किया जाता है। इसमें औडिपक नामक एक यंत्र जिसमें टेपरिकार्डर लगा होता है, को हैडफोन द्वारा रोगी से संबद्ध कर दिया जाता है। रोगी को हैडफोन द्वारा कानों में पहुंचता हुआ संगीत शमनकारी प्रभाव पहुंचाता है।

टेप पर रिकार्ड किया हुआ झरने का संगीत दांत के दर्द को हल्का कर देता है।

यदि दर्द बना रहता है तो ऐसा टेप चलाया जाता है जिसमें अन्य ध्वनियों के पीछे मंद राग सुना जा सके। दोनों ध्वनियों में अंतर करने का प्रयत्न करता हुआ पीड़ा से ग्रस्त रोगी दंतचिकित्सक या डाक्टर की क्रिया के प्रति कम ध्यान देने लगता है।

यह समस्त क्रिया कल्पना नहीं बल्कि एक सत्य है और संगीत इस प्रकार जीवन में कोरे मनोरंजन से भी हटकर एक और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहा है।
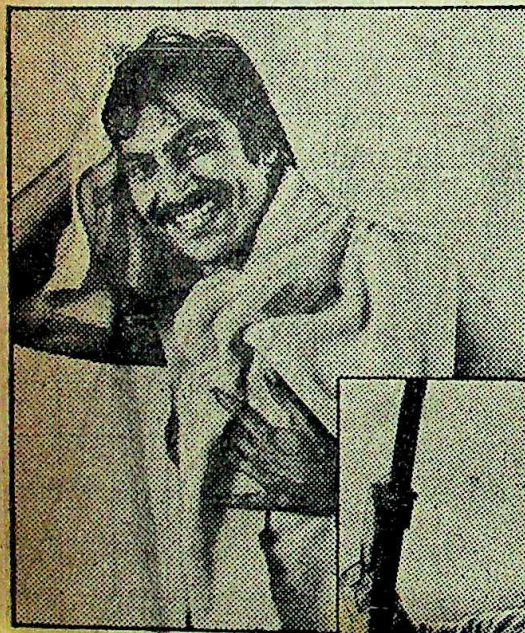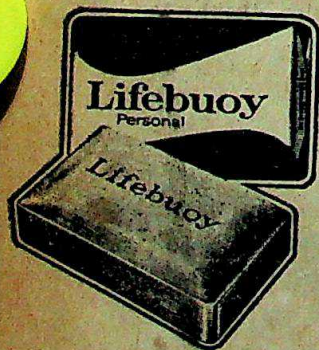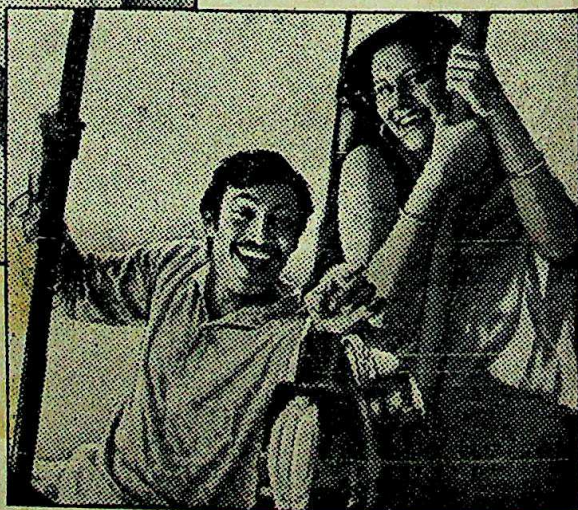
□

पिरामिड के अंधेरे में

सत्य की पहली किरण का प्रकाश

□

डॉ. पॉल ब्रंटन

०००

पिरामिड का अबूझ आमंत्रण पाकर सत्यान्वेषी ब्रंटन ने जीवन के अज्ञात, अदृश्य रहस्यों की खोज में एक रात वहां अकेले रहकर बितायी। और सुबह जब वे पिरामिड से बाहर आये, तो उनकी आंखों में एक झलक थी, उनके चेहरे की रूपरेखा में इस खोज के आश्चर्यजनक परिणामों की खबर थी।

०००

रात ढलनी आरंभ हो गयी थी, वह विचित्र रात जिसे मैंने पिरामिड के अंदर सारी रात जागकर बिताने का निश्चय किया था।

रात ढलनी आरंभ हो गयी थी, और मैं विशाल पिरामिड के शाही कक्ष में, पृथ्वी के सबसे अजीबोगरीब छत्र की छाया में बैठा था। शायद मैं पहला आदमी था, जो अकेला इस कक्ष में पूरी रात गुजार रहा था। इससे पूर्व, न किसी को ऐसा अवसर मिला था, न किसी ने ऐसा दुःसाहस किया था। मैं पहला आदमी था, जिसे यह दुःसाहस करने की सूझी थी।

और यह अवसर मुझे मिला नहीं था, लड़-झगड़ कर छीना था मैंने। जब मैंने पुरातत्त्व विभाग से पिरामिड के अंदर पूरी रात बिताने की इजाज़त मांगी थी, तब संबंधित अधिकारी काफ़ी देर तक मुझे घूरता रहा था; शायद वह यह अनुमान लगाने की कोशिश कर रहा था कि मैं पागल हूं या नहीं, और हूं तो कितना?

कई दिनों तक पुलिस और पुरातत्व विभागों का चक्कर काटने के बाद, मैं आख़िर दोनों विभागों से विशाल पिरामिड के शाही कक्ष में अकेले एक रात बिताने का आदेश-पत्र लेने में सफल हो ही गया।

'चलिये, आप पिरामिड में अकेले रात तो बिता सकते हैं, लेकिन आपको उसमें सारी रात बंद रहना होगा। वैसे भी हम रात को पिरामिड को बाहर से बंद कर देते हैं,' मिस्री पुलिस अधिकारी ने मुझसे विदा लेते हुए कहा था। 'उम्मीद है, आपकी योजना पिरामिड को उड़ाने की नहीं है।' कहते हुए वह मुस्करा रहा था।

'आप निश्चित रहिये। मैं न पिरामिड को उड़ाऊंगा न उसे लेकर कहीं उड़

जाऊंगा। और, आप लोगों की मेहरबानी से आज की रात शायद मेरे जीवन की सबसे अधिक अविस्मरणीय रात होगी।'

०००

कब्र की तरह शांत पिरामिड में, मैंने उस छेद में से कुछ प्रवेश किया, जिसका निर्माण खलीफ-अल-मांमू ने करवाया था। इस छेद में से कुछ दूर आगे चलकर मैं पिरामिड के उस मुख्य द्वार पर पहुंचा, जो प्राय: बंद ही रहता था, और पर्यटकों के लिए ही खोला जाता था।

आगे का अंधेरा मार्ग तय करने के लिए मुझे अपना सर अपने घुटनों तक लाना पड़ा, और हाथ में टॉर्च लेनी पड़ी। यह मार्ग शाही कक्ष तक नहीं जाता था। लेकिन मैं शाही कक्ष में जाने से पूर्व, पिरामिड के उस अंतर्भाग भाग को देख लेना चाहता था, जिसमें लोग दम घुट जाने के भय से नहीं जाते। यहां पहुंचकर, मुझे उस गुप्त द्वार का पता चला, जो पिरामिड के निर्माताओं ने पिरामिड का निर्माण पूरा करके, और इसे 'सील' करके बाहर जाने के लिए बनाया था। यह मार्ग जमीन के काफ़ी नीचे, और एक कुंए में से होकर है।

पिरामिड के अनेक उपकक्षों को पार कर जिनमें महारानी का उपकक्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, मैं अंत में पिरामिड के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कक्ष, शाही कक्ष में पहुंचा। यहां आकर मैं एक कब्रनुमा पत्थर पर बैठ गया, और टार्च बंद करके
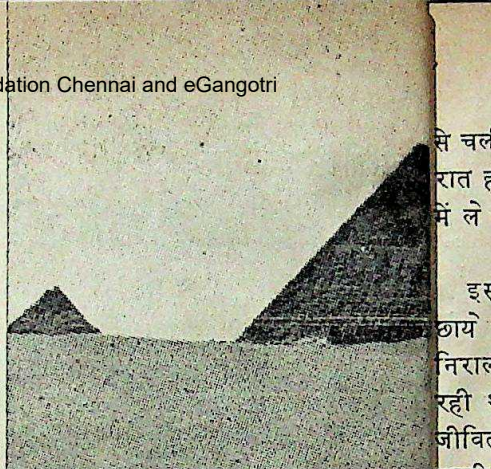
घुप अंधेरे में यह प्रतीक्षा करने लगा कि देखें अब क्या होता है।

जैसे-जैसे समय गुज़रता गया, यह अनुभूति प्रबल होने लगी कि इस कक्ष का वातावरण पिरामिड के अन्य कक्षों से भिन्न है, और उसे अतीन्द्रिय कहा जा सकता है। मैंने जानबूझकर अपने मन को निश्चेष्ट और ग्रहणशील बना लिया था, ताकि वह हर प्रभाव को, बिना किसी प्रतिरोध के आसानी से सोख सके। शून्य मन द्वारा ही मैं अतिभौतिक को ग्रहण कर सकता था।

धीरे-धीरे, मैं शांत ..... और अधिक शांत होता चला गया। शोरगुल और भीड़भाड़ वाली दुनिया इतनी दूर चली गयी थी कि उसका जैसे कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया था, मेरे लिए। मेरे चारों ओर छाये तम की भांति प्रगाढ़ और निस्तब्ध थी यह शांति! मुझे लगा कि शांति का देवता ही पिरामिड के साम्राज्य का चक्रवर्ती राजा है। प्रागैतिहासिक-काल

से चली आ रही यह संपूर्ण शांति आज भी रात होते ही, पिरामिड को अपने आग़ोश में ले लेती है।

०००

इस संपूर्ण शांति और चारों ओर छाये घटाटोप अंधकार के बावजूद, एक निराली जीवंतता की अनुभूति भी हो रही थी मुझे। मृत अतीत जैसे सहसा जीवित हो गया हो! किंतु, जो था वह काफ़ी अस्पष्ट, अनिश्चित और धुंधला था। भौतिक नहीं, अभौतिक जीवन से संबंधित!

अपनी संवेदनशीलता को बढ़ाने के उद्देश्य से, मैंने पिरामिड में आने से पूर्व तीन दिनों का उपवास किया था। वायु-संचार के लिए बने निकासों से आकर ठंडी हवा, उपवास से सर्द मेरे शरीर को और सर्द करने लगी। मुझे गर्म जैकेट पहनने को मजबूर होना पड़ा।

प्रत्येक क्षण—अदृश्य जीवन की अनुभूति से पूर्ण—अब मुझे बहुत धीरे-धीरे सरकता लग रहा था। पृथ्वी से प्रायः दो सौ फुट की ऊंचाई पर स्थित एक अंधेरे और नीरव कक्ष में बैठे-बैठे मुझे लगने लगा, जैसे जल्दी ही काल थम जायेगा, और एक छलांग-सी लगाकर, कालातीत हो जाऊंगा। लेकिन, जब तक ऐसा क्षण नहीं आता, तब तक मुझे उन अदृश्य किंतु सजीव प्रेतात्माओं के साथ समय व्यतीत करना था, जिन्होंने किंवदंतियों के अनुसार, न जाने कब से विशाल पिरामिड को अपना अड्डा बना रखा था।

सहसा, मुझे चारों ओर से घेरने वाले अंधकार का भारी भार अपने सर पर महसूस होने लगा। एक अनजाना डर चारों ओर से आकर मेरे अंदर समाने लगा। मैंने इस डर को भगाने की कोशिश की, मगर वह नाकाम रही। इस डर को भगाने के लिए मैं एकाग्र-चित्त होकर उस शांतिदायक शून्यता पर अपना सारा ध्यान केंद्रित करने लगा। जिसकी अनुभूति मुझे हो चुकी थी।

यह प्रयास करते-करते मुझे लगा कि कुछ विद्वेषी शक्तियां कहीं से शाही कक्ष में घुस आयी हैं, और वातावरण को डरावना बना रही हैं। कई स्पष्ट और कई अस्पष्ट प्रतिच्छायाएं मुझे अपने चारों ओर नाचती सी लगने लगीं। शवपेटिकाओं में से उठकर शव नाच रहे हों, ऐसा लग रहा था मुझे। एक अरब तरुण की चेतावनी बिजली की तरह मन में कौंध गयी: 'रात को पिरामिड से दूर ही रहना, मेरे दोस्त! पिरामिड के इंच-इंच में भूत-प्रेतों का वास है। यह कहानी नहीं, हक़ीक़त है, हमारा भोगा हुआ यथार्थ!'

०००

अंत में चरमोत्कर्ष का क्षण भी आ पहुंचा। उस विकर्षी क्षण को मैं कभी नहीं भुला पाऊंगा।

इस क्षण में मैंने उन सब डरावनी प्रतिच्छायाओं को अपने पास सिमटते और

एक शैतानी अट्टहास के साथ अपने अंदर विलीन होते अनुभव किया। उस दिल दहलाकर रख देने वाले क्षण में मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि जीवन में दुबारा पिरामिड जैसे स्थान में अकेले रात नहीं बिताऊंगा। मुझे याद नहीं कि मैं कब तक इस हौलनाक़ नज़ारे से आतंकित रहा।

और जब यह ख़ौफनाक क्षण गुज़रे तब मैंने अपने सामने एक कृपालु आत्मा की उपस्थिति की अनुभूति की। मैंने महसूस किया कि वह दयालु आत्मा एक और अदृश्य आत्मा के साथ मेरे निकट आ रही है। पास आकर, उसने जैसे मुझसे पूछा—'क्या तू गुह्य शक्तियों की खोज में यहां आया है? क्या तू सचमुच उन्हें पाना चाहता है?'

'हां,' मैंने दृढ़ स्वर में कहा।

'अपने इस निश्चय के ख़तरों से वाक़िफ है?'

'नहीं! मगर कोई भी ख़तरा मुझे मेरे निश्चय से नहीं डिगा सकता। मैं उसे जानना चाहता हूं जो चित्त या शरीर से नहीं जाना जा सकता।'

'तथास्तु! तेरे प्राण आतुर लगते हैं, अज्ञात को जानने के लिए, उसे देखने के लिए जिसे आंखें नहीं देख सकतीं। तेरी यह आतुरता तेरे बोध का द्वार बनेगी', कहकर वह अदृश्य आत्मा अंतर्धान हो गयी। जाते समय उसने कहा, 'जा इस कब्र के पत्थर पर चुपचाप लेट जा, फिर देख क्या होता है?'

उस पत्थर पर लेटते ही, न जाने अचान[क] क्या हुआ, मैंने अपनी देह को अकड़ा हु[आ] पाया। एक सर्द लहर मेरे शरीर [को] संज्ञाशून्य करती जा रही थी ... औ[र] मुझे लगा, मैं मर गया हूं। काश, मे[रे] पथराये हुए होंठ बोल सकते तो कह[ते] 'कल जब पिरामिड खुलेगा, तो लोग मु[झे] मृत पायेंगे। और सबने मुझे यही चेताव[नी] दी थी कि मैं पिरामिड में से जीवित बाह[र] नहीं आ सकूंगा।'

मगर इधर मैं अपने प्राणों के दी[प] को बुझते देख रहा था और उधर अप[ने] अंदर एक और दीप को प्रज्वलित हो[ते] भी देख रहा था। मृत्यु के भय का दीप[क] बुझ गया था, और निर्विचार चेतना [में] 'मैं अमर हूं' इस बोध का प्रकटीकरण ए[क] लौ के रूप में हो रहा था।

पत्थर पर पड़े अपने शव को देखते[-] देखते मैं अब उसे देख रहा था, जो आंख[ों] का विषय है ही नहीं। जीवन की खोज[के] पार जाकर, मैं अपने को महामृत्यु [को] अंगीकार करते देख रहा था।

जीने का रस देखा था, अब महामृ[त्यु] के रस को देख रहा था, जो जीने के र[स] से कहीं ज्यादा मीठा था।

और मैंने पाया कि यह जानते ही [कि] मौत क्या है, मैं मौत के डर से मुक्त ह[ो] गया हूं। परिपूर्ण अर्थों में मुक्त हो गया हूं।

भौतिक शरीर से धीरे-धीरे पी[छे] हटते-हटते, मुक्ति का यह क्षण आया [था] और मुझे लग रहा था कि अब परमात्[मा]

नवनीत का दीपावली - विशेषांक

(नवंबर - १९८३)

प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी आगामी ज्योति-पर्व पर हमारा नवंबर-८३ का अंक दीपावली-विशेषांक होगा। यह अंक अपनी अनूठी साज-सज्जा, विचारोत्तेजक लेखों, भाव पूर्ण कविताओं और उत्कृष्ट कथा-साहित्य से भरपूर होगा।

दिनोंदिन गिरते जा रहे जीवन-मूल्यों से सारा समाज संतप्त हो उठा है। हर व्यक्ति अशान्त और परेशान नज़र आ रहा है। ऐसे समय में सही दिशा-सूचक साहित्य की नितान्त आवश्यकता है। **नवनीत** के इस दीपावली-विशेषांक में उसी नवोत्थान का एक विनम्र दिया जलाने का प्रयत्न हम भी कर रहे हैं।

२४० पृष्ठों के इस विशेषांक का मूल्य होगा केवल ५ रुपये।

कृपया अपनी प्रति स्थानीय एजेंट से सुरक्षित कराना न भूलें।

— व्यवस्थापक, 'नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट'

भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुंशी मार्ग, बंबई-७

की हवाएं जो, सदा से मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं, मुझे अनंत में ले जाने को तैयार थीं और मेरी नाव को सत्य के असीम सागर में ले जा रही हैं!

वे सब जंजीरें, जिनसे मैं अब तक बंधा था, खुल गयी थीं और अब मैं मुक्त था, इस मुक्ति की खुशी में नाच रहा था। तट, बंधन सब छूट गये थे और अब मैं

कहीं भी जाने, किसी में भी, कहीं भी प्रवेश करने को स्वतंत्र था। विचित्र अनुभूति थी। मैं स्थिर भी था, और अस्थिर भी। चल भी, अचल भी। शांत भी, अशांत भी।

०००

मेरा अनुभव किस उच्च स्तर तक पहुंच गया था, इसका अनुमान इसी बात से चल सकता है कि 'मैं' अलग खड़ा हुआ स्वयं अपने मृत शरीर को देख रहा था। उस शरीर को, जिससे पृथक होकर मैं उसके दर्शन कर रहा था। मिस्र की चित्र-लिपि में पक्षी को मनुष्य की आत्मा का प्रतीक माना गया है। मुझे वह प्रतीक अब एकदम सच्चा और सही लग रहा था, क्योंकि आत्मा-स्वरूप होकर मैं अब एक मुक्त पक्षी की भांति अनुभव कर रहा था। अपने शव को आत्मा की आंखों से देखकर मुझे लग रहा था कि मैंने मौत के दर्शन कर लिये हैं, और मौत सिर्फ़ शरीर को समाप्त करती है, आत्मा को नहीं, क्योंकि आत्मा अमर है। इस सत्य को सिद्ध करने के लिए मुझे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मैं मर कर भी जीवित था।

और मैं सुन रहा था किसी अदृश्य धर्म-गुरु का स्वर : 'पिरामिड जो आधे संसार की मौत को देखकर भी आज जीवित है इस बात का जीता-जागता प्रमाण है कि मानवात्मा अजेय, अमर है।' मेरी छाती में, मांस की काया में, वह रहस्य आज भी छिपा है, जिसे पिरामिड ने उस रात मु[illegible] पर प्रकट किया था। मैं जानता हूं, [illegible] वह स्थान हूं, जहां असंख्य मृत प्रेतात्मा[illegible] स्थित हैं। मैं भी उतना ही पवित्र [illegible] जितना पिरामिड, जो रहस्यात्मक [illegible] से उस महान सत्य को उद्घाटित कर र[illegible] है। बड़े पिरामिड ने जिन सत्यों [illegible] मेरे तईं प्रकट किया, उन सबका अस्ति[illegible] मेरे अंदर ही है। इतना कोई जान ले [illegible] समझो उसे आत्मज्ञान हो गया। पिरामि[illegible] परम ज्ञान की उस अद्वैत अवस्था की अ[illegible] संकेत करता है, जहां आत्मा और संपू[illegible] सत्ता मिलकर एक हो जाते हैं, तथा जिस[illegible] अलावा, और किसी का अस्तित्व न[illegible] रहता। मोहाविष्ट लोगों को पिरामि[illegible] मृत दिखायी पड़ता है, किंतु वास्तव [illegible] वह सदा जीवित है।

पिरामिड की एक ही सीख है, सा[illegible] मानव-जाति के लिए और वह यह [illegible] विश्व के रहस्यों की, जिनमें पिरामिड [illegible] रहस्य भी सम्मिलित है, खोज में निकल[illegible] के लिए आदमी को अंतर्यात्रा करनी होगी[illegible] और यह अंतर्यात्रा, पिरामिड के भीतर [illegible] यात्रा के समान अज्ञात के जगत की या[illegible] है, जहां जो दिखायी पड़ता है, उस[illegible] अलावा भी कुछ है; दृश्य की तो छो[illegible] सीमा है, अदृश्य का बड़ा विस्तार है[illegible] न दिखायी पड़ने वाला अदृश्य अछोर [illegible] उसे हमारी आंख पकड़ ही नहीं सक[illegible] क्योंकि हमारी आंख बहुत छोटा ही प[illegible] सकती है। **(रूपांतर : हरिमोहन शर्मा)**

□

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

मनुष्य के नवोत्त्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्नि प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ।।

मनुष्य जैसे अपने लिए गुण-कर्म-स्वभाव और सुख की इच्छा करें, वैसे दूसरों के लिए भी । जैसे अपनी उन्नति के लिए प्रार्थना करें वैसे परमेश्वर और विद्वानों से दूसरों की उन्नति के लिए प्रार्थना करें । न केवल प्रार्थना ही करें, अपितु सत्य आचरण भी करें ।

यजु. ३२.१५

आत्मा : परम और अनंत

□

एन. ए. पालखीवाला

परम-ज्ञान से जगमग, भारतीय दर्शन, भौतिक पदार्थ को, जो आत्मा की एक अभिव्यक्ति मात्र है, महत्त्वहीन मानता है ।

सारे मौलिक सिद्धांतों में सर्वाधिक मौलिक सिद्धांत यह है कि एक परम, अनंत तथा अपरिवर्तनशील आत्मा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है, और यह पार्थिव जगत वस्तुतः उसी आत्मा की ही एक अभिव्यक्ति है । आज से तीन हज़ार वर्ष से पूर्व, भारतीयों को इस सिद्धांत की स्पष्टतर प्रतीति हो गयी थी और उन्होंने उसके लक्ष्यार्थ को आज के सर्वाधिक सभ्य राष्ट्रों की अपेक्षा बेहतर ढंग से समझा था । आप इसे सिद्धांत या, विकास या चेतना या भगवान कुछ भी कह सकते हैं । प्रत्येक अपनी भाषा में उसकी व्याख्या करेगा ।

'अग्नि की धूमिका, और एक नक्षत्र-कक्ष,
एक क्रिस्टल और एक कोशिका —
एक जेलीफ़िश, और एक सरीसृप,
और गुफाएं, जिनमें गुहावासी निवास करते हैं;
और नियम तथा सौंदर्य का एक भाव,
और मिट्टी को पीठ दिखाता, एक चेहरा
कुछ उसे विकास कहते हैं,
और कुछ भगवान ।'

चूंकि आत्मा ही चिरस्थायी अस्तित्व है, अतएव, पार्थिव जगत के अनंत रहस्यों को स्थूल भाषा में बोधगम्य नहीं कराया जा सकता । लॉरेन आइस्ले के शब्दों में, 'मेरे अस्तित्व को ४५ वर्ष पूरे हो चुके हैं, और इस अवधि में, मेरी संरचना में लगा प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक अणु अपनी स्थिति बदल चुका है, नृत्य करता हुआ, मुझसे पृथक हो गया है, और अब अन्य वस्तुओं का भाग बन चुका है । घास और पशुओं की देहों के अणु नये अणुओं के रूप में, कुछ समय तक मेरा अंश बने रहे. . . .तो भी मेरी स्मृति अक्षुण्ण है, और बीस वर्ष पूर्व का एक प्यारा चेहरा, आज भी मेरी आंखों के सामने मौजूद है ।'

प्रत्येक वयस्क, व्यक्ति के शरीर में हज़ारों अरबों कोशिकाएं होती हैं । प्रत्येक कोशिका अंधी होती है; उसमें कोई भाव नहीं होता । प्रत्येक कोशिका अंधेरे में काम करती हुई भी, संपूर्ण के हित में अन्य कोशिकाओं से सहयोग करती है । अग्रगण्य भौतिकशास्त्री सर चार्ल्स शेरिंगटन का कहना है, 'ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसी सर्वव्यापी और अतंर्भूत सिद्धांत

से अभिप्रेरित होकर, प्रत्येक कोशिका, किसी एक पूर्व-निर्धारित आकल्पन को साकार करने में लगी है।' सर आर्थर एडिंगटन ने इसी विचार को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है, 'भौतिक विज्ञान ने अपना लक्ष्य और प्रसार इस ढंग से सीमित किया है कि उसकी पृष्ठभूमि में एक ऐसी शून्यता व्याप्त हो गयी है, जिसे हम आध्यात्मिक प्रवृत्ति की यथार्थता से भरने को स्वतंत्र हैं, और जिसे इस यथार्थता से भरने के लिए हम आमंत्रित भी हैं! आधुनिक वैज्ञानिकों में सर्वाधिक विज्ञ इस वैज्ञानिक के निष्कर्ष के आधारभूत सिद्धांत हैं, जिनकी सीख भारतीय संस्कृति ने अपने चरमोत्कर्ष काल में विश्व को दी थी।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय।'

मुझे अवास्तविकता से वास्तविकता की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।

—उपनिषद

उपनिषदों की एक सीख यह है कि यह सारा ब्रह्मांड इसके सर्जक के मन में जन्मी एक कल्पना ही है, और इस कारण भौतिक सर्जन पर की जाने वाली तमाम सारी बहसें व्यर्थ और अर्थहीन हो जाती हैं।

उपनिषद हमें यह भी सिखाते हैं कि कि दिक्काल अनंत और असीम है। आधुनिक विज्ञान, इस सीख से पूरी तरह सहमत है। यदि भारत के विशालतम कण भी हों, तो उनमें धूल का अंश, अंतरिक्ष में नक्षत्रों के अंश से कहीं अधिक होगा। अपनी आंखों से हाथ भर दूरी पर एक नया पैसे का सिक्का रखकर, आप ३५०,०००,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित हज़ारों आकाश गंगाओं को नज़र से ओझल कर देते हैं।
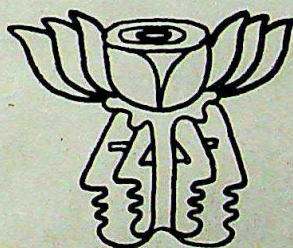
वेदों ने भी घोषणा की है कि आदमी का 'सूक्ष्म शरीर' आधुनिक शब्दावली में आत्मा का ही दूसरा नाम है, और यह 'सूक्ष्म शरीर' अनंत और असीम है, इसलिए वह देहातीत है। भारत का परम ज्ञान से जगमग दर्शन भौतिक पदार्थ को महत्त्वहीन मानता है।

उपनिषदों के इस कथन की तुलना इस सदी के महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन के निम्नलिखित कथन से कीजिये :

'अतएव, हम ऐसा मान सकते हैं कि पदार्थ की रचना गहन क्षेत्र के स्थानों की संकीर्णता के फलस्वरूप होती है।...

इस नयी भौतिकी में क्षेत्र और पदार्थ दोनों के लिए एक साथ स्थान संभव नहीं है, क्योंकि कारण क्षेत्र ही एकमात्र वास्तविकता है।'

शक्ति-पूजा की परम्परा : विजयादशमी

□

नारायण भक्त

प्राचीन काल से भारत में शक्ति की पूजा होती रही है। राम द्वारा शक्ति की पूजा सुविदित है। दुर्गापूजा भी पूजा का एक स्वरूप ही है। मोहन-जोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाइयों में कुछ मिट्टी की मूर्तियां प्राप्त हुईं; जिनमें मातृदेवी के चित्र अंकित हैं। कतिपय पुरातत्वविदों का ऐसा मत है कि ये मूर्तियां पृथ्वी माता की हैं। मेसोपोटामिया, स्याम, नील नदी की घाटी, ईरान एवं एशिया माइनर में भी इसी प्रकार की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सर जॉन मार्शल का कथन है कि शक्तिवाद का जो स्वरूप हमें सिंधु घाटी में मिलता है, वही उक्त देश में भी किसी-न-किसी रूप में प्रचलित था। उनका यह भी कहना है कि पहले-पहल मिस्र के निवासी—'इसिस देवी', बेबिलोन के लोग 'इस्तर देवी', और पश्चिमी एशिया के लोग 'अस्तारते' की पूजा किया करते थे। मेसोपोटामिया की जनता भी एक ऐसी देवी की पूजा करती थी, जिसका नाम पार्वती से मिलता-जुलता है। जापान के निवासी 'क्वानन' देवी की पूजा-अर्चना करते थे, जो देश की माता मानी जाती थीं। मोहन-जोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई से जो मूर्तियां मिली हैं, उनसे यह पता चलता है कि अनार्यों में भी शक्ति की पूजा प्रचलित थी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ 'मध्य एशिया का इतिहास' में लिखा है—किसी समय भारत से लेकर भूमध्य सागर तक के विस्तृत भू-भाग में शक्ति की पूजा का प्रचलन था। मातृदेवी की पूजा करना अनार्यों का धर्म था। वैदिक काल में आर्यों ने भी उन्हीं से मातृदेवी की आराधना करना सीखा। बेबिलोन की कुछ मुहरों पर अनाज की बालियों के डंठल के साथ भी मातृदेवी की आकृति मिलती है। इस प्रकार हम पाते हैं कि शक्तिपूजा का प्रारंभिक रूप प्रागैतिहासिक काल में भी मातृ-पूजा के रूप में मौजूद था। वैदिक काल के आर्य खेती-बारी करते थे, जिस कारण वे अनार्यों अथवा भारत के आदि निवासियों की मातृपूजा करने की प्रणाली पर मुग्ध हो गये और उसे उन्होंने भी अपना लिया। उस समय पृथ्वी माता की उपज की देवी के रूप में आराधना की जाती थी। यों भी पृथ्वी अन्नप्रसवा मानी जाती है। अन्न प्राणरक्षक है, अतः पृथ्वी को माता का स्थान देना कुछ असंगत नहीं

प्रतीत होता ।

ज्योतिर्विज्ञान से संबंध

सिंधु सभ्यता के बाद भी भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में हुई खुदाइयों से पता चलता है कि उक्त स्थानों पर शक्ति पूजा, का कोई-न-कोई रूप प्रचलित था । मध्य भारत की उदयगिरि पहाड़ी की एक गुफा में महिषमर्दिनी की एक अष्टभुजी मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसका समय चौथी शताब्दी लगाया गया है । उसी गुफा की दीवार पर चामुंडा, ब्राह्मणी, कौमारी, माहेश्वरी, वाराही, नरसिंही और वैष्णवी नामक सात देवियों की प्रतिमाएं बनी हुई हैं । भूमरा के मंदिर में भी इस समय की छह भुजावाली महिषमर्दिनी की एक दूसरी मूर्ति मिली है । इनके अतिरिक्त एलोरा और मामल्लपुर आदि स्थानों पर देवी और महिषासुर के युद्ध-चित्रण की मूर्तियां मिलती हैं । दक्षिण भारत में देवियों की कांसे की मूर्तियां बहुतायत से मिलती हैं ।

इसके अलावा खुदाई से कुशाणकाल गुगकाल तथा मौर्यकाल की भी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, जिनसे पता चलता है कि उस समय भी शक्तिपूजा प्रचलित थी । मथुरा और कौशाम्बी में खुदाई से प्राप्त सामग्रियों से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है । उस समय की प्राप्त मूर्तियां मिट्टी की हैं, जो आग में पकायी गई हैं । मौर्यकाल से अब तक दुर्गा-पूजा का कोई-न-कोई रूप भारत के प्रायः सभी हिस्सों में चला आ रहा है । दक्षिण भारत में विजयादशमी
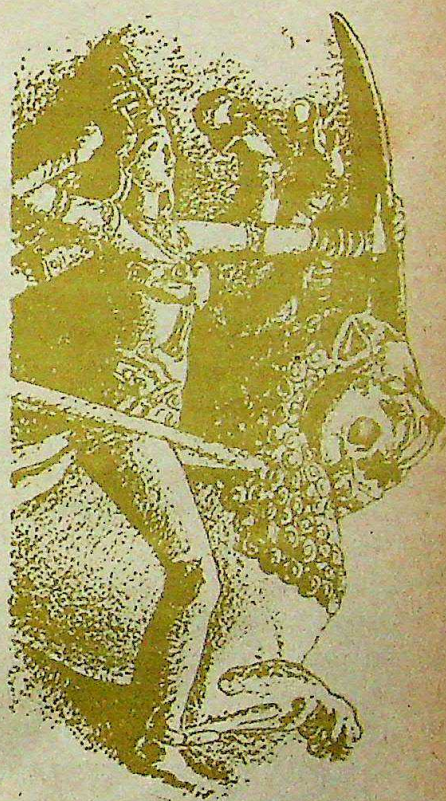
अथवा दुर्गा-पूजा को 'दुसेरा' भी कहते है । वहां पर दुर्गा-देवी की मूर्ति किसी पवित्र नदी अथवा झील या तालाब में प्रवाहित की जाती है, जैसा कि बंगाल या विहार में किया जाता है ।

पौराणिक कथाएं

दुर्गापूजा महोत्सव के प्रारंभिक रूप के संदर्भ में हमारे प्राचीन ग्रंथों में कई पौराणिक कथाएं प्रचलित हैं । पूजा का कार्य

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से दशमी तक चलता रहता है। इस पर्व की पृष्ठभूमि में शुंभ तथा निशुंभ की एक अत्यंत रोमांचकारी कथा प्रचलित है। एक समय शुंभ-निशुंभ दैत्यों ने जनता में आतंक फैला रखा था। इनके अत्याचारों से सभी देवता दुःखी थे। सूर्य, चंद्र तक उनका लोहा मानते थे। देवताओं ने दुखित होकर हिमालय पर जाकर पार्वती की पूजा-अर्चना की। पार्वती के रूप में शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने देवताओं की रक्षा करने का वचन दिया। शक्ति ने सुंदरी का वेश धारण कर शुंभ-निशुंभ का वध कर उनके रुधिर का पान किया। इस तरह देवगणों की रक्षा हुई।

एक अन्य कथा में देवताओं ने महिषासुर दैत्य से पीड़ित होकर शक्ति की पूजा की। विष्णु ने चक्र, शिव ने त्रिशूल, ब्रह्मा ने कमंडलु, इंद्र ने वज्र, यम ने यमपाश, लक्ष्मी ने श्रृंगार तथा हिमालय ने सिंह देकर देवी को शक्ति के रूप में रणक्षेत्र में उतरने को तैयार किया। इस तरह महिषासुर का दलन हुआ

कुछ लोग विजयादशमी का संबंध राम-रावण की कथा से जोड़ते हैं, जिसमें रामचंद्रजी ने विजयादशमी के दिन रावण पर विजय प्राप्त की। इसी विजय की खुशी में लोग यह त्योहार मनाते हैं। और, इस दिन रावण, कुंभकरण आदि के पुतले जलाये जाते हैं। कहीं-कहीं रामलीलाएं भी होती हैं। इस संदर्भ में काशी नरेश द्वारा आयोजित काशी की रामली[ला] लोक प्रसिद्ध है।

दुर्गापूजा के संबंध में इसी प्रकार अनेक रोमांचकारी एवं वीरतापूर्ण कथ[ाएं] हैं। सूर्यवंशी राजा सुरक ने इन कथा[ओं] को सुनकर स्वयं दुर्गापूजा की। बता[या] जाता है कि उसने संपूर्ण राज्य में इस पू[जा] को करने का आदेश जारी किया। पुरा[णों] तथा इतिहास के अनेकशः ग्रंथों में अनेक स्थानों पर ऐसे प्रसंग आये हैं, जि[नमें] शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए दु[र्गा]पूजा या काली की उपासना-आराधना [की] कई आध्यात्मिक कथाएं हैं। महाभा[रत] युद्ध के पहले भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन [से] दुर्गा की पूजा करवाई। मराठे और राज[पूत] भी युद्ध में विजय पाने के लिए युद्धभूमि [में] जाने के पहले देवी की उपासना कर[ते] थे। महाराणा प्रताप तथा वीर शिवा[जी] देवी के परम उपासक थे और कुछ मूर्ति[यों] में देवी इनको खड्ग देती हुई चित्रित [की] गयी है।

ज्योतिर्विज्ञान से संबंध

इस पूजा का ज्योतिष-शास्त्र से [भी] एक विशेष संबंध है। दुर्गा का जन्म, वि[वाह] और मृत्यु हिंदू ज्योतिर्विज्ञान में स[मय-] समय पर होने वाले परिवर्तनों के प्रतीक [हैं।] ज्योतिर्विज्ञान का धर्म से निकट का स[ंबंध] है। हिंदुओं को पंचांग ठीक करने के [लिए] समय-समय पर बड़ी कठिनाइयां उ[ठानी] पड़ीं। एक बार चंद्रमा की गति उ[सका] आधार बनी, तो दूसरी बार सूर्य [की]

इस तरह सूर्य और चंद्रमास बने । इसके बाद परिवर्तन हुए और चंद्र-सूर्य वर्ष मनाया गया । वर्ष-तिथियों में विभाजित किये गये और इस तरह बारह महीने बने । ग्यारहवीं ईस्वी पूर्व आश्विन, कृतिका, भरणी आदि सूर्य की पत्नियों के रूप में मानी जाने लगीं । इस समय आश्विन से वर्ष का प्रारंभ धूमधाम से मनाया गया । प्रकृति की देवी दुर्गा वर्ष की प्रतीक है । ग्यारहवीं ईस्वी पूर्व की एक तिथि को प्रथम बार आश्विन चंद्र या केतु के दिन के साथ पड़ा । उस दिन दुर्गा-पूजा भी मनाई गयी । परंतु जब चंद्रमा छठे दिन के साथ आश्विन आया, तो उस दिन भी दुर्गा-पूजा मनायी गयी और तभी से आज तक वह उसी रूप में मनायी जा रही है ।

विजयादशमी बुराई पर भलाई की, पाप पर पुण्य की, असत् पर सत् की विजय के रूप में भारतीय जन-जीवन का एक प्रेरणादायी पर्व है । इसे मनाये जाने के मूल में विश्व-कल्याण, जन-कल्याण तथा सर्वत्र शांति की विश्वव्यापी भावना निहित है ।

—गली हरिमंदिर, पटना सिटी, बिहार

□

क्षुधा-व्याधि

पद-यात्रा के क्रम में भगवान बुद्ध अव्वाली गांव में पधारे । उनके दर्शन एवं श्रीमुख निःसृत उपदेश सुनने के लिए हज़ारों की संख्या में ग्रामीण उपस्थित हुए । उस गांव का एक दरिद्र, परन्तु कर्मठ किसान भी वहां से गुज़रा । तथागत का उपदेशामृत पान करने की उसकी भी इच्छा थी । किन्तु, दुर्भाग्यवश उसका एक बैल खो गया था । वह दुविधा में पड़ गया कि सत्संग करे अथवा बैल को ढूंढ़े ।

अंततः पहले बैल को खोज निकालने का निश्चय कर वह चला गया । दिन भर वह खोये हुए बैल को तलाशता रहा । शाम को बैल मिल गया । भूख-प्यास से वह बुरी तरह परेशान था । फिर भी, चुपचाप जाकर भगवान तथागत का उपदेश सुनने बैठ गया । बुद्ध ने कुछ क्षण उसके थके-हारे चेहरे को निहारा। फिर भिक्षुओं से बोले—'इसे भोजन कराओ !'

क्षुधा शान्त होने पर किसान ने ध्यान से बुद्ध का उपदेश सुना ।

अव्वाली से लौटते समय मार्ग में भिक्षुओं ने बुद्ध के इस व्यवहार की आलोचना करना आरम्भ किया। बुद्ध शांत स्वर में बोले—'भिक्षुगण, मैं तीस योजन का गहन वन पार कर केवल उसी किसान को उपदेश देने आया था । वह अपने लोकधर्म के पालन के निमित्त दिन भर भटका और क्षुधा पीड़ित होते हुए भी मेरा उपदेश सुनने चला आया । यदि मैं उस क्षुधित-आत्मा को उपदेश देने लगता, तो वह उसे ग्रहण न कर पाती । क्षुधा के समान कोई सांसारिक व्याधि नहीं है ।

— प्रवासी विनयकृष्ण

□

राय कृष्णदास का कला-विवेचनात्मक लेख

□

सचित्र नीति-कथाओं का प्रेमी : अकबर

०००

अजंता की गुफाओं और सांची, भरहुत, और अमरावती के स्तूपों पर अंकित पशु-पक्षियों की चित्र-कथाएं इस बात का प्रमाण हैं कि ऐसी चित्र-कथाओं का अंकन भारतीय कलाकारों का प्रिय विषय था।

अकबर भी ऐसी चित्र-कथाओं का शौक़ीन था, और उसके इस शौक के कारण मुगल चित्र-कला को परिपक्व होने में बड़ी सहायता मिली।

०००
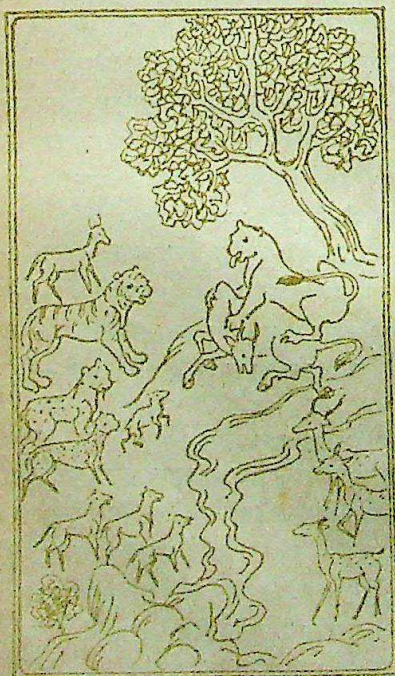
अंजता की दसवीं गुफ़ा में दूसरी सदी के काल का एक भित्ति-चित्र छ गजदंतों वाले एक ऐसे गजराज से सम्बन्धित है, जो बनारस की रानी को करु का पाठ पढ़ाता है। सत्रहवीं गुफ़ा में ए ऐसे विवेकी बन्दर की कथा अंकित है जो अपने प्राणों की बलि देकर अप रिश्तेदारों की जान बचाता है।

सांची, भरहुत और अमरावती- अनेक स्तूपों पर भी पशु-पक्षियों से सं धित अनेक जातक-कथाएं अंकित हैं।

जहां जातक-कथाएं धर्मपरायणता सीख देती हैं, वहां पंचतंत्र की कहानि जिनका चित्रांकन मध्ययुगीन भारत कलाकारों को जातक-कथाओं के चित्रां के समान ही प्रिय था, राज-शासन अ शासन-कला से संबंधित हैं। इन कथा का, जिनके पात्र पशु-पक्षी हैं, और जि

विष्णु शर्मा ने राजा अमर शक्ति के जड़-मति राजकुमारों को राज्यतंत्र के सिद्धांतों से अवगत कराने के उद्देश्य से लिखा था, छठी सदी में पहलवी (मध्य फारसी) में अनुवाद हुआ।

दुनियावी अक्लमंदी की सीख देनेवाली पंचतंत्र की कथाएं अरब देशों के अलावा, यूरोपीय देशों में भी बहुत लोकप्रिय हुई। इस्लामी काल के प्रारंभ में, अरबी भाषा में पंचतंत्र का अनुवाद 'कालीला-व-दामना' के (पंचतंत्र के दो गीदड़-पात्रों कर्टक और दमनक के नाम पर) नाम से हुआ।

पंचतंत्र की कथाओं पर आधारित चित्र भारत में मध्य-युग से बनते आये हैं। ११६५ में ललितपुर के निकट मदनपुर के मदनेश्वर मंदिर के गुम्बद पर पंचतंत्र के अनेक भित्ति-चित्र अंकित हैं। काठमांडू के सिंह दरबार पुस्तकालय में पंचतंत्र के संक्षिप्त संस्करण 'हितोपदेश' की एक सचित्र प्रति मिली है। पश्चिम भारत में भी एक ऐसी सचित्र प्रति प्राप्त हो चुकी है।

नीति-कथाओं के प्रेम

अकबर कला का संरक्षक होने के अलावा, भारतीय नीति-कथाओं का भी प्रेमी था। उसकी शिल्पशाला में सौ से अधिक चित्रकार काम करते थे। उन्होंने भारतीय भित्ति-चित्रकला की पारंपरिक विशेषताओं और ईरानी चित्र-शैली की कुछ विशेषताओं को समन्वित कर अपनी विशिष्ट चित्र-शैली को विकसित किया था।
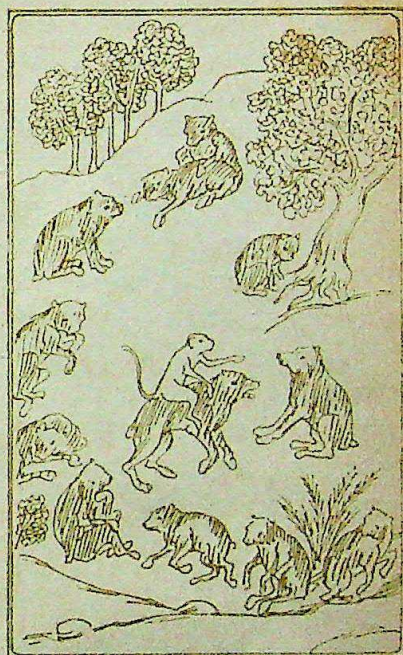
अकबर को न केवल नीति-कथाओं को सुनने—बल्कि अपनी रानियों को सुनाने का भी शौक़ था। जब वह गद्दी पर बैठा ही था, तब 'हमज़ानामा' नाम से नीति-कथाओं का एक संग्रह विशेष रूप से उसके लिए तैयार किया गया था। इसकी कहानियों में वृक्ष आदमियों की भांति बोलते हैं, और परियां और जिन्न जब-तब आते रहते हैं।

अकबर के पुस्तकालय में २४,००० से अधिक पुस्तकें थीं, जिनमें से अधिकांश नष्ट हो गयीं। इनमें से अधिकांश सचित्र

रही होंगी, क्योंकि ऐसा अनुमान है कि शिल्पशाला में काम करनेवाले सौ चित्रकारों ने कम से कम २०,००० चित्र बनाये थे। आज इनमें से दस प्रतिशत भी उपलब्ध नहीं हैं। पुस्तकों में नीतिकथाओं के संग्रहों के अतिरिक्त, अरबी भाषा में लिखी गयी 'अजायब-उल-मख्लूकात' (सृष्टि के आश्चर्य) जैसी ज्ञान-विज्ञान से संबंधित पुस्तकें भी थीं।

पंद्रहवी सदी के अंत में हुसैन वाइध-ए-काशिफ़ ने पंचतंत्र का अनुवाद ईरानी भाषा में किया, 'अनवर-ए-सुइहाइली' के नाम से। अकबर के पुस्तकालय में इस पुस्तक की कई प्रतियां मौजूद थीं। एक प्रति लंदन की 'द स्कूल ऑफ अफ्रीकन एण्ड एशियन स्टडीज़' में सुरक्षित है, और दूसरी भारत कला भवन में।

इस पुस्तक के अनुवाद की अलंकृत शैली से असंतुष्ट अकबर ने मूल अरबी से इसका सरल अनुवाद अबुल फज़ल द्वारा कराया, जिसका नाम 'इयार-ए-दानिश' रखा गया। यह सन १५८८ में पूरा हुआ। इस अनुवाद की एक सचित्र प्रति चेस्टर वियेट्टी के डबलिन-स्थित संग्रहालय में सुरक्षित है।

खुशनवीसियों की फौज

इतनी सारी पुस्तकों को हाथ से लिखने के लिए खुशनवीसियों की एक पूरी फ़ौज की ज़रूरत पड़ी। इन खुशनवीसियों को अच्छा वेतन और सन्मान मिलता था। ये लोग पंद्रहवी सदी में

विकसित फारसी वर्णों और अंकों क नश्तालिक़ शैली में लिखते थे। यह न शैली दो परम्परागत शैलियों 'नश्‍ औ 'तालिक' के मेल से विकसित हुई थी ललित सौंदर्य और लयात्मक प्रवाह दृष्टियों से यह शैली दोनों पुरानी शैलि से कही बेहतर थी।

सन १५८५ तक मुग़ल-कला-शै परिपक्व हो चुकी थी। यद्यपि इसमें क यूरोपीय कला-शैलियों के प्रभाव देखे सकते हैं, तथापि मूलत: यह एक विशु भारतीय चित्र-शैली है।

अकबर १४ वर्षों तक लाहौर में रहा

और इस अवधि में ही उसके पुस्तकालयों के लिए सचित्र पुस्तकें तैयार हुईं। इन सचित्र हस्तलिखित पुस्तकों में से कुछ सौभाग्य से, आज भी उपलब्ध हैं, भले ही खण्डों में सही। ये हैं—बाबर-नामा (३ प्रतियां), जामी कृत खामसा-ए-निज़ामी (१ प्रति)। और नफ़अत-उल-उस (१ प्रति) बहर-अल-हयात (१ प्रति), दराबनामा (१ प्रति), तारीख-ए-अल्फी (१ प्रति), तारीखे-रशीदी (१ प्रति) और ज़फरनामा (१ प्रति)। 'अनवर-ए-सुइहाइली' की प्रतियों का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

इन हस्तलिखित पुस्तकों के मुख्य चित्रकार थे—बसावन, लाल, मुकुंद, केशो, फारुख-त्रेला जगन्नाथ, धर्मदास, मिस्कीन, चंद ग्वालियरी, सनवाला, शंकर, लछमन, माधो और अनंत।

इनमें से अधिकांश चित्रकारों की चित्र-शैली पारंपरिक चित्र-शैलियों के निकट थी, और वे पूरी तरह अपनी उस प्रशंसा के अधिकारी थे, जो अबुल फ़ज़ल ने 'आईने-अकबरी' में की थी। उसने कहा था: 'वस्तुओं की हमारी जो धारणा है, उसे भी पार कर जाते हैं ये भारतीय चित्रकार। दुनिया के बहुत कम चित्रकार उनकी बराबरी कर पायेंगे।' उसने इन चित्रकारों की रंग लगाने की सुधरी हुई शैली—रंगमेजी—की भी बहुत प्रशंसा की है। सचमुच जैसा, कि, 'अनवर-ए-सुइहाइली' के चित्रों को देखकर ज्ञात हो जाता है, उनमें एक अभूतपूर्व ताज़गी के दर्शन होते हैं। पात्रों का चित्रण संवेदनशील और सशक्त है।

पशु-पक्षियों के सजीव चित्रांकन

इन चित्रकारों ने शाही दरबार के दृश्यों का ही चित्रांकन नहीं किया है, समकालीन समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक दृश्यों को भी चित्रांकित किया है। कुछ चित्रों में पृष्ठभूमि में कुछ यूरोपियन पात्र भी दिखायी देते हैं।

चित्रों में पशु-पक्षियों का सजीव चित्रांकन हुआ है। चित्र बहुत जानदार हैं। जहां चित्रकारों ने स्वैरकल्पना का सहारा लिया है, वहां उन्होंने जिस पटुता से कल्पना को साकार किया है, उसकी दाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता। चित्रकारों के साथ-साथ खुशनवीसियों (सुलेखकों) की भी जितनी प्रशंसा की जाये, उतना ही कम है।

('टाइम्स ऑफ इंडिया एनुअल' से साभार उद्धृत)

□

दो विवाहित स्त्रियों की बातचीत – 'मेरा तो चार-पांच दिन में एक बार इनसे (पति से) झगड़ा हो ही जाता है। तुम्हारा?'

'मेरा ऐसा भाग्य कहां, बहन? इन्हें तो दफ्तर से महीने में एक ही बार तनख्वाह मिलती है!'

□

डॉ. शिवानन्द नौटियाल का शोधपरक लेख

क्या महाकवि कालिदास गढ़वाली थे?

डा. जगदीशकुमार के लेख 'क्या कालिदास का जन्म स्थान सिरसा है?' (हिंदुस्तान नयी दिल्ली ७ मार्च, १९८२) ने कालिदास के जन्मस्थान के विषय को पुनः चर्चा का विषय बना दिया है। डा. जगदीशकुमार ने लिखा है:

'कालिदास का जन्म विवाद का विषय है। उनकी रचनाओं में भारत के अनेक स्थानों का वर्णन है। विद्वान उनमें से किसी एक को उनका जन्मस्थान मानते रहे हैं। हिमालय और उज्जैन इस दृष्टि से प्रमुख रहे हैं। हमारा विचार है कि आंतरिक साक्ष्य के आधार पर कालिदास का जन्मस्थान सरस्वती नगर (सिरसा) को ही माना जाना चाहिये।

'परंपरा कालिदास को सारस्वत मानती है। भारत के सारस्वतों का मूल केंद्र सरस्वती नगर है। कालिदास का मन कुरुक्षेत्र की सरस्वती में आद्यंत रमा रहा है। 'मेघदूत' में उन्होंने बताया है कि सरस्वती नदी के जल में नहाकर वह अंतःशुद्ध हो जायेगा। कालिदास ने सरस्वती के अतिरिक्त किसी अन्य नदी को ऐसे पावन रूप में चित्रित नहीं किया है। गंगा और यमुना के बिंब भी शृंगार के विषय हो गये हैं।'

डा. जगदीशकुमार ने कालिदास के जन्मस्थान को सिद्ध करने के लिए प्रामाणिक तथ्य उपस्थित न कर केवल हठधर्मिता का खुला प्रयोग किया है। क्या ही अच्छा होता कि वे कालिदास के काव्यों के आधार पर महाकवि के जन्मस्थान को ढूंढ़ते परंतु उन्होंने केवल सरस्वती नदी के एक उद्धरण से ही सिरसा को कालिदास की जन्मभूमि मान लिया।

डा. जगदीशकुमार ने अपने लेख में कोई भी ऐसा तथ्य उद्‌घाटित नहीं किया जिससे नये ढंग से सोचने पर विवश होना पड़े। उनके लेख से इतिहास की भी कोई विशिष्ट जानकारी नहीं होती। मालवों के सिक्कों को लेकर अयोध्या की स्थिति बताते-बताते वह बाण का उल्लेख करते-करते मानों कहीं खो गये हैं। अंत में लिखते हैं–'कालिदास सरस्वती के निवासी होने के कारण सारस्वत हैं। उन्हें विक्रमपुर के विक्रमादित्य ने आश्रय दिया होगा। कालिदास और बाण के बीच का समय इस प्रदेश का अंधकार-युग है। सिरसा, ओढा, शरांवली, नहरांवली, बीकानेर, आदि स्थानों की पुरातात्विक छानबीन की जाय

तो इस युग का इतिहास उघड़ सकता है।

समझ में नहीं आता कि डा. जगदीश कुमार ने कालिदास को सरस्वती के निवासी के रूप में किस आधार पर मान लिया। यह सही है कि कालिदास ने सरस्वती नदी का उल्लेख एक बार 'मेघदूत' में और दूसरी बार 'रघुवंश' में किया है। केवल श्रद्धा से स्मरण करना जन्मस्थान होने का प्रमाण नहीं होता। डा. जगदीश कुमार ने प्रारम्भ में कहा कि जितनी श्रद्धा और पावनता का उल्लेख कालिदास ने सरस्वती के प्रति दिखाया है उतना अन्य नदी के लिए नहीं। हम मान गये, परंतु जितना ममत्व और लगाव कवि का मालिनी और मंदाकिनी के प्रति है वह क्या अन्य कहीं दिखायी देता है? सारस्वत होने का प्रमाण भी यह नहीं होता कि वह सरस्वती नदी के किनारे सिरसा में ही पैदा हुआ हो। यदि इसे भी मान लें तो भी तथ्यों से डा. जगदीशकुमार ने कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया।

एक जगह पर विषयांतर करते हुए डा. जगदीशकुमार लिखते हैं कि 'कुमार संभव' का देवासुर-संग्राम कुरुक्षेत्र में हुआ और मयूर कार्तिकेय का वाहन था।' और फिर डाक्टर साहब विषय से हटकर कहीं काले हरिणों में खो गये। 'कुमार संभव' की एक घटना को डा. जगदीश कुमार ने कालिदास के जन्मस्थल से जोड़ने का जो विलक्षण उदाहरण प्रस्तुत किया वह भी अपने आप में एक जोड़-तोड़ की प्रक्रिया से अधिक कुछ नहीं माना जायेगा। क्योंकि डा. जगदीश कुमार को एक घटना तो दिखायी दी, परंतु जिस गढ़वाल की 'मंदाकिनी घाटी में संपूर्ण 'कुमार संभव' काव्य समाया हुआ है, वह उन्हें नहीं दिखाई दिया।

डा. जगदीशकुमार के इस लेख से न कोई नयी दिशा मिलती है और नहीं अन्वेषण का कोई नया तथ्य ही सामने आता है। हां, इस लेख से यह बात सोचने योग्य हो गयी है कि अब कालिदास के जन्मस्थान के विषय में अंतिम निर्णय हो जाना चाहिये। अन्यथा जिस किसी को कालिदास के किसी भी काव्य में कोई पंक्ति या स्थान आकर्षित करेगा, वह उसी स्थान को कालिदास का जन्मस्थान सिद्ध करने पर तुल जायेगा।

यह स्वाभाविक भी है कि विश्वप्रसिद्ध

चित्र : टी. ए. राणा

कवि शिरोमणि कालिदास को भारत का प्रत्येक क्षेत्र अपना समझता है। क्योंकि कालिदास ही एक ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने संपूर्ण भारत के भूगोल का भी अपने साहित्य में पर्याप्त समावेश किया है। अतः जिस क्षेत्र का भी कोई साहित्यकार उनके काव्य में कुछ अपनत्व पाता है, वह उसी क्षेत्र को उनका जन्मस्थान मानने लगता है और एक और दृष्टि कालिदास के जन्म-स्थान के विषय में जुड़ जाती है। विशाल और राष्ट्रीय दृष्टिकोण की दृष्टि से ऐसी भावनाओं का जहां अपना विशिष्ट महत्व है—वहां यह निश्चित होना ही चाहिये कि वास्तव में कालिदास का जन्म स्थान कहां है? कठिनाई आ सकती है परंतु उनके साहित्य का मंथन करने के बाद एक निश्चित धारणा बनाई जा सकती है और भारतीय वाङ्मय के मर्मज्ञ विद्वान चाहें तो इस विषय पर एक राय बनाकर इस प्रति-दिन उठने वाले प्रश्न का हल निकाल सकते हैं।

अभी कुछ दिन पहले उज्जैन में महा-कवि कालिदास के संबंध में एक विशेष आयोजन किया गया था। यों तो उज्जैन के विद्वान और कालिदास अकादमी के पदाधिकारी प्रतिवर्ष कालिदास के संबंध में विशेष प्रकार के आयोजन करते रहते हैं, परंतु वर्ष १९८२ में तो यह आयोजन बड़े भव्य रूप में संपन्न किया गया। इस आयोजन में भारत के जाने-माने कई विद्वानों ने कालिदास के जन्मस्थान के विषय में फिर से नये तरीके से निबंध पढ़े हैं। प्रोफेसर श्रीमती कमला रत्नम् ने अपने लेख में महाकवि कालिदास का शैशवकाल ग वाल में माना है। इस निबंध की चर्चा विशेष रूप से हुई है। इसी तरह अन्य विद्वानों ने भी कालिदास के संबंध में अपनी-अपनी स्थापनाएं स्थापित करने की चेष्टा की है, परंतु अंतिम रूप से उज्जैन में भी इस विषय का कोई हल नहीं निकाला गया। मेरी समझ से अब इस महत्त्वपूर्ण विषय पर अवश्य कोई न कोई निर्णय हो जाना आवश्यक है।

अब तक कालिदास के जन्मस्थल को लेकर जो चर्चा रही है उन पर भी विहंगम दृष्टि डालना उचित होगा।

काशीवासी कदापि नहीं

कालिदास पहले महामूर्ख थे—इस अनु-श्रुति के अनुसार कुछ विद्वान महाकवि का जन्मस्थान काशी बताते हैं। राजा भोज की पुत्री विद्योतमा से इनका विवाह होना बताया जाता है। अंग्रेज विद्वान वाल्टर रूबन ने इसी कथा के आधार पर कालि-दास को काशी का निवासी बताया है। कुछ विद्वानों का स्पष्ट मत है कि कालि-दास ने स्वयं शकारि विक्रमादित्य की कन्या से विवाह किया था। इसी आधार पर एक उपन्यास भी लिखा जा चुका है। 'विश्वकवि कालिदास' में इसी प्रकार के विचार पं. सूर्यनारायण व्यास ने भी व्यक्त किये हैं, परंतु वास्तविकता यह है कि महाकवि के साहित्य में काशी का वर्णन दो

पदों के अतिरिक्त कहीं नहीं हुआ है। जन्मस्थान वाली भावना के तो कहीं दर्शन ही नहीं होते।

बंगाली होने में दम नहीं

बंगाल के कुछ विद्वानों का कथन है कि कालिदास के नाम के पीछे 'दास' शब्द है और काली के दास नाम से वे विख्यात हैं। काली भक्त हैं, और बंगाल में काली देवी है। डा. जगदीशकुमार की भांति उन विद्वानों का इस पक्ष में एक अंतःसाक्ष्य प्रस्तुत करना भी महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना है कि कालिदास ने मेघदूत में 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' लिखा है जो बंगाली पद्धति का द्योतक है। उनका कहना है कि यदि वे बंगाली न होते तो 'आषाढ़स्य प्रतिपदितिथौ' लिखते। परंतु सत्यता यह है कि महाकवि के रघुवंश काव्य (४।३६-३७) में ो पदों को छोड़ कर बंगाल का विशेष वर्णन नहीं है। रहा 'दास' शब्द का प्रयोग। यह प्रयोग भारत के आधकांश भागों में सामान्यतः लोगों के द्वारा प्रयुक्त होता है। कालिदास के काली भक्त होने का भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता – वास्तव में वे तो शिवभक्त थे। अतः इस तरह की भावना में भी कोई दम नज़र नहीं आता।

विदिशावासी होने की बात

श्री हरिप्रसाद शास्त्री, और प्रो. परांजपे के विचार से कालिदास का जन्मस्थान विदिशा था। उनका इसके पक्ष में कहना है कि 'मेघदूत' में कवि ने जो विदिशा का विशद वर्णन किया है वह उनके जन्मस्थान का सूचक है। उस वर्णन से वे मूलतः विदिशा के ही निवासी सिद्ध होते हैं। इस तर्क में भी कोई अधिक बल नहीं है, क्योंकि कवि ने 'मेघदूत' में विदिशा के वर्णन से भी अधिक हृदयग्राही और सजीव वर्णन अन्य स्थानों का किया है।

तो क्या विदर्भवासी ?

डा. पोटर्सन और डा. चंद्रबली पांडे के मतानुसार कालिदास का जन्मस्थान विदर्भ था। उनका कथन है कि 'रघुवंश' महाकाव्य में 'अवध प्रदेश' को उन्होंने 'उत्तर कौशल' कहा है। यह भी कोई सटीक प्रमाण नहीं है। कालिदास प्रख्यात कवि ही नहीं प्रसिद्ध भौगोलिक भी थे। अतः उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों का जो वर्णन किया, वह उनके पांडित्य का प्रमाण है। अतः यह तर्क भी उचित नहीं लगता कि केवल इतने अंश के लिए उनका जन्मस्थान माना जाय।

अयोध्यावासी होना अनर्गल

कुछ विद्वानों का कहना है कि 'रघुवंश' में क ि ने अयोध्या के प्रति जो आंसू बहाये हैं उससे उनका इस स्थान से अत्यधिक मोह झलकता है। अतः यही उनका जन्मस्थान हो सकता है। इस तर्क के पीछे भी विद्वानों के मोह के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता, क्योंकि 'रघुवंश' महाकाव्य में कवि ने ऐसी स्थितियों और काव्यगत प्रसंगों का हृदयस्पर्शी वर्णन यत्र-तत्र भी किया है।

बिहारवासी हो नहीं सकते

मई १९५९ में स्वर्गीय डा. आदित्य नाथ झा ने दरभंगा के बेनीपट्टी के उच्चैठ (उच्च पीठ) गांव में एक अभिलेख प्राप्त किया जिसमें 'कालिदास की चौपड़ी' अंकित था। उन्होंने स्पष्ट किया कि यहां कालिदास पढ़े थे। अत: यहीं उनका जन्म हुआ होगा। इस तर्क को कई विद्वानों ने माना ही नहीं। 'कालिदास की चौपड़ी' के विषय में विद्वानों का कहना है कि उच्च शिक्षा पीठों का नाम कालिदास के नाम से शुरू करने की परंपरा प्रायः समस्त भारतवर्ष में फैल चुकी थी। कालिदास के ग्रंथों में भी बिहार का वर्णन दो-एक स्थलों के अलावा नहीं मिलता।

कश्मीर निवासी होना संभव नहीं

प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला ने अपने ग्रंथ 'कालिदास का जन्मस्थान' में यह सिद्ध किया है कि कालिदास का जन्म कश्मीर में हुआ था। प्रो. कल्ला की तर्कनाओं का सार इस प्रकार है : कवि के ग्रंथों में, विशेषतः 'कुमारसंभव' में, हिमालय का अत्यंत सूक्ष्म वर्णन हुआ है। 'मेघदूत' में यक्ष की जन्मभूमि अलका हिमालय में ही अवस्थित थी। 'विक्रमोर्वशीयम्' में पुरूरवा और उर्वशी तथा 'कुमारसंभव' में शिव और पार्वती—दोनों युग्मों की प्रणय-लीला गंधमादन पर्वत पर हुई थी। वशिष्ठ, कण्व तथा मारीच, सभी ऋषियों के आश्रम हिमालय पर्वत पर ही बसे हैं। इन सभी उल्लेखों से कवि के हिमालय प्रेम की प्रभूत व्यंजना होती है और ये सभी स्थल कश्मीर में सिंधु नदी की घाटी में स्थित हैं। . . . इसी तर्क की 'महाकवि कालिदास' (चौखंभा प्रकाशन) के रचयिता डा. रमाशंकर तिवारी ने भी स्वीकार कर कश्मीर को कालिदास की जन्मभूमि और मालवा को उनकी कर्मभूमि माना है। डा. भगवतशरण उपाध्याय ने भी पहले कश्मीर को ही कवि की जन्मभूमि माना था परंतु अब वे कश्मीर से कवि का कोई संबंध नहीं मानते।

डा. कल्ला के तर्क को सबसे अधिक चुनौती डा. वासुदेव विष्णु मिरासी ने अपनी पुस्तक 'कालिदास' में दी और स्पष्ट कहा कि प्रो. कल्ला का कथन पूर्णतः गलत है। उन्होंने कहा कि सत्य यह है कि महाकवि ने सबसे अधिक साहित्य हिमालय पर लिखा है परंतु वे स्थल कश्मीर में नहीं हैं। बल्कि वे स्थल मध्य हिमालय के बदरी-केदार क्षेत्र में हैं। डा. मिरासी ने यहां तक लिखा है कि कालिदास को वास्तव में कश्मीर का विस्तृत ज्ञान ही नहीं था। 'रघुवंश' (५।६७।६८) के इन पदों के अलावा कश्मीर के विषय में कालिदास ने कुछ लिखा ही नहीं। अत: कालिदास का जन्मस्थान कश्मीर तो हो ही नहीं सकता।

उज्जयिनी वासी होने पर विचार

उज्जयिनी के पक्ष में अधिकांश विद्वानों का मत है कि कालिदास का जन्मस्थान उज्जयिनी था। ऐसे मत रखने वाले प्रमुख विद्वानों में प्रो. डा. वासुदेव विष्णु मिरासी,

प्रो. झाला, योगिराज अरविंद, डा. शिवप्रसाद, भारद्वाज आदि हैं। इन विद्वानों का कथन है कि कालिदास ने यद्यपि अनेक नगरों का वर्णन किया है, परंतु उनकी वृत्ति जैसी उज्जयिनी में रमी है—उतनी कहीं नहीं। मालव, अवंति और उज्जयिनी आदि स्थलों में ही कवि की कल्पना विचरण करती रही। अतः उज्जयिनी के अलावा कवि का जन्मस्थान कोई दूसरा हो ही नहीं सकता।

इस मत के विपरीत एक मान्यता रखने वाले कई विद्वान हैं, जिनका कहना है कि कालिदास यदि उज्जयिनी के होते तो वहां की नारियों के चंचल कटाक्षों के साथ मेघ को खेलने के लिए कभी न कहते। कवि यदि उज्जयिनी का होता तो उज्जयिनी का हर समय ध्यान रखता। मेघ जब विदिशा पहुंच गया तब कवि को अपनी भूल का स्मरण हुआ और उन्होंने, मेघ को वापस बुलाकर उज्जयिनी के दर्शन करवाये। यही नहीं उज्जयिनी के विषय में कवि ने मेघदूत में केवल १३ श्लोक मात्र लिखे हैं। अतः इन विद्वानों का कहना है कि कालिदास की कर्मभूमि उज्जयिनी भले ही हो परंतु जन्मभूमि तो कदापि नहीं हो सकती।

गढ़वाल-निवासी होने के प्रमाण

कालिदास के साहित्य के आधार पर गढ़वाल को उनकी जन्मभूमि मानने वाले विद्वानों की भी कमी नहीं है। ऐसे विद्वानों में स्वर्गीय डा. संपूर्णानंद, मालिनी के वनों

चित्र : टी. ए. राणा

के यशस्वी लेखक श्रीनिधि सिद्धांतालंकार, सदानंद जखमोला, भजनसिंह 'सिंह', भैरवदत्त धूलिया, बालकृष्ण शास्त्री, डा. बी. आर. शर्मा और देवदत्त शास्त्री आदि कई विद्वान हैं। इन विद्वानों का कथन है कि समूचा 'कुमारसंभव', 'मेघदूत' का उत्तरार्ध, 'शाकुंतलम्', 'विक्रमोर्वशीयम्' का गंधमादन प्रसंग और 'रघुवंश' के अनेक स्थल केवल गढ़वाल को ही लेकर कवि ने रचे हैं। इन विद्वानों का कहना है कि मालवा में प्रायः समूचा जीवन बिताकर भी कवि को हिमालय के इस क्षेत्र के प्रति जो ममत्व तथा उत्कंठा है और जो भी आंखों देखा साहित्य उन्होंने केवल इसी क्षेत्र को आधार बनाकर रचा है—वह उन्हें 'गढ़वाली' होने से रोक नहीं पाता।

कालिदास साहित्य के विख्यात व्याख्याता डा. भगवतशरण उपाध्याय ने भी अपने उपन्यास 'कालिदास' (साहित्य, सदन, देहरादून १९७८) के आवश्यकीय के

पांचवें पैरे में स्वीकार किया—'कालिदास का जन्म अलका में ही हुआ होगा । वह अलका कहां है ? इसका अनुसंधान तो सहज नहीं परंतु कवि ने कैलाश के नीचे की भूमि में ही कहीं रखा है, जहां से गंगारूपी उसकी साड़ी का सरक जाना कुछ असंभव नहीं । इस दृष्टि से गंगा के उपरले छोर पर अलकनंदा और मंदाकिनी के बीच 'फूलों की घाटी' में उसे रखना संभवतः सर्वथा काल्पनिक न होगा । मालवा में कालिदास का अधिकतर जीवन बीता, इस संबंध में दो मत नहीं हैं । वहां की बड़ी-छोटी जलधाराओं का विवरण, प्राकृतिक निर्देश और ऋतुसंहार के मध्यप्रदेशवर्ती बदलती ऋतुओं का वर्णन मानों कवि के निवास को प्राणवान कर देते हैं । कवि का हिमालय (गढ़वाल) में जन्म लेकर मालवा को अपना कार्यक्षेत्र बनाना स्वाभाविक लगता है ।'

डा. भगवतशरण उपाध्याय की इस मान्यता में इसलिए भी अधिक ग्राह्यता है कि उन्होंने जीवन भर कालिदास साहित्य पर ही अपनी विशिष्ट रुचि व लेखनी केंद्रित की है । कालिदास के जन्म संबंधी कई स्थापनाओं को करने के बाद यह उनकी अंतिम और उन्हीं के शब्दों में सही मान्यता है ।

पं. सदानंद जखमोला 'संतत' ने अपने 'महाकवि कालिदास' (कालेश्वर प्रेस कोटद्वार, गढ़वाल, १९७६) नामक पुस्तक में कालिदास को गढ़वाल की मंदाकिनी घाटी स्थित कविठा नामक ग्राम का मू निवासी बताया है । पं. जखमोला क कहना है कि कालिदास ने अपने विषय विस्तार से अपने काव्यों में स्पष्ट क दिया है । उनका कहना है कि कालिदा ने जिन श्लोकों को 'अथ' तथा 'तस्मिन् शब्दों से प्रारंभ किया है—निश्चित रू से उनमें पंचाग दिया गया है और उस अनुसार उनके जीवन की सारी झलक मि जाती है ।

'रघुवंश' के प्रथम श्लोक में जह उन्होंने पंचाग दिया है वहां पितृपक्ष के दि अपने पिता परमेश्वरानंद और मा पार्वतीदेवी का भी स्मरण किया है ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से भी पं. जख मोल ने कालिदास के काव्य का मंथ किया तथा उनकी जीवनी लिख डाली और जन्मकुंडली भी बना ली है । यही नह इन्होंने गढ़वाली लोकनृत्य, गढ़वाली जन जीवन की झलक और गढ़वाली बारा तथा उसमें गाये जाने वाले गीतों की स्प झलक महाकवि के काव्यों में ढूंढ़कर स्प किया है कि महाकवि कालिदास गढ़वाल थे । इसी प्रकार के विचार पं. बालकृष्ण भट्ट शास्त्री के भी हैं । उन्होंने भी अपनी पुस्तक 'कालिदास' में कवि के साहित्य आधार पर गढ़वाल की मंदाकिनी में उ सभी स्थलों को ढूंढ़ लिया है जिसका वर्णन कवि ने 'मेघदूत और 'कुमारसंभव' किया है ।

श्रीनिधि सिद्धांतालंकार ने अपने

स्तक 'मालिनी के वंश में (आत्माराम ड संस, नयी दिल्ली) 'कण्वाश्रम' को ढ़कर महाकवि कालिदास को गढ़वाली ल का सिद्ध किया है। गढ़वाल में १९५६ निरंतर 'कण्वाश्रम्' चौकीघाटा (कोट-र के समीप) में बसंत पंचमी को मेला गता है। स्वर्गीय डा. संपूर्णानंद तत्कालीन ख्यमंत्री ने कण्वाश्रम की स्थिति को मझकर कण्वाश्रम मंदिर की आधार शिला खी थी। हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार बना-सीदास चतुर्वेदी इस स्थान को देखने बार-र जाते रहे हैं।

हमारा भी अपना निश्चित मत है कि कालिदास का जन्म गढ़वाल के मंदाकिनी घाटी के रमणीय क्षेत्र गुप्तकाशी और ऊखीमठ के मध्य हुआ। 'मेघदूत' में जिस नकता शैल को क्रीड़ा शैल कहा गया है, उसी कीले शैल पर सुरभिकंदरा है। इसीलिए स पर्वत को सुरभिकंदर भी कहते हैं। जन गुफाओं का वर्णन कवि ने 'मेघदूत' किया है वे सभी गुफाएं गंधमादन पर्वत शृंखलाओं में आज भी उसी तरह लती हैं। केदारनाथ जाने वाले यात्री दि 'कुमारसंभव' के पात्रों के स्थानों का ाज भी प्रत्यक्ष अवलोकन करना चाहते तो रुद्रप्रयाग से केदारनाथ तक उन्हें सभी स्थल उसी रूप में मिल जायेंगे स रूप में कवि ने उनका वर्णन सैकड़ों र्ष पहले किया था। इसी तरह 'विक्रमो-र्शीयम्' और 'मेघदूत' के स्थल भी प्रत्यक्ष खे जा सकते हैं। कण्व ऋषि की वह तपस्थली आज भी हरिद्वार के अति निकट कोटद्वार गढ़वाल के पास अपनी स्थिति को प्रकटतः उजागर कर रही है। नीर-क्षीर विवेक से यदि कोई अध्ययन करे तो कालिंदास द्वारा वर्णित सभी स्थल गढ़-वाल में आज भी मूर्तिवत खड़े हैं।

पं. सूर्यनारायण व्यास ने यह सिद्ध किया है कि अलका वास्तव में जोधपुर के पास जालौर में है। व्यासजी का कहना है कि अलका हिमालय में हो ही नहीं सकती; क्योंकि कवि ने अलका में छः ऋतुओं का होना बताया है। हिमालय में सदा बर्फ पड़ी रहती है—अतः वहां वनस्पति का उगना ही कठिन है। अतः स्वर्णभूमि वाली पर्वत शृंखला जोधपुर के समीप जालौर है और वही कालिदास की अलका है। अतः कालिदास जोधपुर के समीप जालौर के रहने वाले थे।

हम पं. व्यासजी की विद्वता को चुनौती तो नहीं दे सकते, परंतु कालिदास ने जो सहज और यथार्थ भौगोलिक वर्णन किया है, उसके विषय में चुनौती के साथ कह सकते हैं कि कनखल से गंधमादन व अलका तक का भूगोल और 'कुमारसंभव' के सभी स्थल आज भी गढ़वाल हिमालय में प्रत्य-क्षतः देखे जा सकते हैं और आज भी छः ऋतुओं का अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य मंदा-किनी घाटी का सौंदर्य बढ़ाता है। यहां अनेकों फूलों की घाटियां हैं।

हम डा. जगदीश कुमार की तरह केवल

(शेषांश पृष्ठ १३६ पर)

चन्द्रकान्ता कक्कड़ की हिन्दी कहानी

□

डायमंड की दुनिया

'चाची ! खाना लगा दिया है, जल्दी आओ। दादी अम्मी कहती हैं सब ठंडा हो जायेगा।'

न चाहते हुए भी उसे उठना पड़ा। कॉलेज से लौटकर बस पर्स ही तो रखा था टेबल पर कि विचारों ने उसे जकड़ लिया था। जब तब वह अतीत की गिरफ्त में आ जाती है। छः वर्ष हो गये हैं उसकी शादी को। अभी तक बच्चा-वच्चा कोई है नहीं। बस बड़ी दीदी (जेठानी) के बच्चों को जी-जान से प्यार करती है। उसकी बात तो रखनी ही पड़ेगी, सो झट से बोली, 'आयी, टिंकू बेटे।' साड़ी खोल गाउन पहन लिया और खाने की मेज़ पर जा बैठी।

नाना व्यंजनों से सजी मेज देखकर मुस्करायी। वह सोच रही थी कि एक तरफ भूख, दूसरी तरफ पैसा। सुख वहां भी नहीं था, यहां भी नहीं है। वहां स्ट्रगल थी यहां बोरियत है। भरे-पूरे परिवार में रहकर भी निहायत अकेला महसूस करती है। बिज़नेसमैन का घर है। फैक्टरी चलती है। बेशुमार धन बिखरा पड़ा है, लेकिन वह आनंद नहीं, जो वह चाहती है।

'क्या बात है, अंजलि। कालेज कोई पार्टी-वार्टी थी क्या ? आज तुम खा ही नहीं रही हो ?'

वह मुस्करा भर दी। लेकिन गले में अटक-अटक जाता था। परि में सबसे अधिक वही पढ़ी-लिखी है। दसवें में फेल रहीं। ननद रानी मैं में रॉयल डिवीज़न हैं। जेठ नवें दर्ज बाद ही बिज़नेस सम्हालने लगे थे। बी.ए. कर गये किसी क़दर। हां, उ पति अनिल जरूर एम. कॉम तक है। तभी तो उसने उसके साथ मैं कर ली थी। उसने सोचा था अ नौकरी कर लेगा, लेकिन परिवार उसकी चलती कहां है। सास-ससुर आगे कई बार इसी बात को लेकर चख हो चुकी है। 'भई, वे कहते हैं, पढ़ा लि है बिज़नेस अच्छी तरह सम्भालेगा, अब अनपढ़ों का ज़माना तो गया। बिज़ में खासा दिमाग चाहिये।'

उसने फिर जुबान खोलना ठीक समझा था। बात भी ठीक है, अ उसकी औक़ात भी क्या है ? यही न सिर्फ एम. ए. है। बाकी तो कुछ न

निहायत गरीब बाप की बेटी। तीन कपड़ों से आ गयी अनिल के घर! लव मैरिज समझो एक तरह से!

देवांगना-सी सुंदर! ऊंची-लंबी कद-काठी! गुलाब-सा गौर वर्ण! भरी-भरी, मांसल, सुघड़ देहयष्टि। अजंता-एलोरा की कोई कला-कृति हो जैसे। जो कोई देखता है, देखता ही रह जाता है।

जैसे-तैसे दो-चार कौर निगल उठ खड़ी हुई। टिंकू, शिंकू हमेशा की तरह उसके साथ लग लिये, 'चाची, देखो, डैडी मेरे लिए हेलीकाप्टर लाये हैं। मैं इसमें बैठ कर उड़ूंगा।'

'और मेरे लिए कैरम बोर्ड आया है, चाची, हमारे साथ खेलो।'

उसने जैसे कुछ नहीं सुना, 'देखो, राजा बेटे! आज कॉलेज में बहुत बोलना पड़ा। सिर में बहुत तेज़ दर्द है, मैं तो अब सोऊंगी। शाम को खेल जमायेंगे।'

'मैं आपका सिर दबा दूं, चाची?'

अब और वह बच्चों को नहीं रोक पायी थी। बोली, 'अच्छा, चलो तुम लोग सो रहना यहां।' कुछ देर बच्चे उछल-कूद और धमाचौकड़ी मचाकर कमरे से निकल गये। वह कहीं दूर डूबी रही।'

०००

हायर सेकंडरी करते ही पिता ने कहा था–'तू अब कहीं नौकरी कर ले, बेटी।' उसने हताश मन अपनी फ्रेंड से कहा था–'मीतू! देख डैडी कहते हैं कि मैं कोई नौकरी करूं।'

'तुम्हारी पढ़ाई?'

'पढ़ाई खत्म।'

'पगली! ऐसा हरगिज़ न करना। चुपचाप बी. ए. कर ले।' जैसे-तैसे मम्मी से कह-सुन कर उसने बी.ए. में प्रवेश

लिया था। हां, घर की आर्थिक दुर्दशा देखते हुए उसने तीन-चार ट्यूशन ले लिये थे।

किसी कदर बी. ए. हुई तो फिर पैसे का प्रश्न सामने था। पिता रिटायर हो चुके थे। पेंशन के दो सौ रुपल्ली से खाली अनाज भी न जुटता था। घर में सबसे बड़ी वही थी। दो छोटी बहनें और एक सबसे छोटा भाई। अब तो नौकरी बिना चारा नहीं था। लेकिन मीतू फिर भी कहां मानी थी।

'देख, गीता! गये दिन फिर लौटकर नहीं आते–तू एम. ए. कर लेगी तो कहीं अच्छी नौकरी मिल सकेगी, वरना सौ रुपल्ली की फटीचर बनकर रह जायेगी। सोच ले।'

'सवाल पैसे का है, मीतू। मां बीमार क्या हुई, रोटी के लाले पड़ गये हैं।'

अचानक वह उठकर भीतर चली गयी। पलटकर बोली, 'देख भई, तू मेरी बचपन की सहेली है, सहेली के नाते मेरा भी तेरे प्रति फर्ज़ बनता है। ले, यह रुपये, फीस आज ही जाकर भर दे, वरना डेट खत्म। मेरी ज़रूरत पड़े तो संकोच मत करना। एम. ए. कर ले किसी तरह। हिम्मत मत हारना, मेरी अच्छी सखी।'

अभी घर में कदम ही रखा था कि पिताजी ने आवाज़ दी – 'गीतू बेटे। तुम्हारी नौकरी की बात पक्की कर आया हूं–डेढ़ सौ रुपये महीना मिलेगा। कभी हिम्मत बने तो ट्रेनिंग कर लेना, बेटी। फिलहाल निर्वाह करना है किसी कदर।'

उसे काटो तो खून नहीं। कैसे कहे गीतांजलि कि 'डैडी, मैं तो एम.ए. की फीस भर चुकी।'

'ओह। मेरी प्यारी मीता!' देर रात तक वह सो न सकी थी। फिर यही निर्णय लिया था कि किसी कदर दो-ढाई सौ कमाकर पिता के हाथ पर हर महीने रखा करेगी। परंतु सब कुछ मां की बीमारी पर उठ जाता था। पिता शरीर से कमजोर थे। घर की हालत देखी नहीं जाती थी। खुद उसके तन के कपड़े फट चुके थे। खूब याद पड़ता है उसे कि मीता के दिये सलवार-कुर्ते से उसने पूरा साल निकाला था। पंद्रह रुपये की एक मैक्सी वह घर में पहने रहती। सलवार, कमीज रोज़ रात धोकर प्रेस कर रखती अगली सुबह के लिए।

एम. ए. हो जाने के बाद उसे एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी मिली थी। दो सौ रुपये महीने की टीचरशिप। ट्यूशन के मिलाकर चार सौ रुपये बन जाते थे। जिस दिन उसे दिल्ली कॉलेज में नौकरी मिली उसकी खुशी का ठिकाना न था। अब तो धन उसकी तरफ खिंचा चला आ रहा था। घर में खुशहाली छा गयी थी। बदनसीबी खुशनसीबी में बदल गयी थी।

दिल्ली कॉलेज में उसका खूब मन लगा था। स्टूडेंट्स बहुत कदर करते थे। हर कोई उसकी पर्सनेलिटी और खूबसूरती के साथ-साथ पढ़ाने के गुणों से प्रभावित था।

तभी एक दिन! आज से ठीक एक वर्ष पहले! अनिल भारत एम्पोरियम में उससे टकरा गया था। 'मिस! ये मेरे अंकिल हैं।' परिचय करानेवाला उसका स्टूडेंट अमित था।

दूसरे दिन अमित ने कहा था, 'मिस! मेरे अंकल आपसे मिलना चाहते हैं।'

'ओह! हां उनसे कहना वे मुझे मेरे होस्टल में मिल सकते हैं।'

'थैंक्यू, मैडम, वे आज शाम सात बजे आपसे मिलेंगे। उन्होंने कहा था कि मैडम चाहें तो उनका एड्रेस ले आना, शाम को यही टाइम कह देना।'

'ओ. के।' उसके मन में फिर कुछ कौंधा, पर ऊपर से संयत बनी क्लास लेती रही थी।

ठीक सात बजे चमचमाती गाड़ी आकर उसके रूम के आगे रुकी। 'आइये', उसने उठकर अभिवादन किया। अंदर ले आयी।

'मुझे अनिल कहते हैं। कल आपको पहली बार क्या देखा, लगा कि अपनी तलाश पूरी हो गयी।'

वह मुस्करा भर दी।

'चलिये, ज़रा मौर्य होटल तक घूम आया जाय।'

'मौर्य होटल। नहीं—नहीं।' इस मामले में तो वह पूरी फकीर है। प्रकट में बोली—'आप नहीं जानते, अनिल साहब, मेरी वार्डन एकदम लाल मिर्च हैं, इस मामले में।'

'परमिशन मैं लेता हूं आपके लिए, यू डोंट वरी।' बस फिर तो उसकी ट्यूशन का पत्ता गोल हो गया—रोज़ का रूटीन। दिल दे बैठी याकि यौवन का तकाज़ा भी यही था। उसके सामने उसके परिवार के भरण-पोषण का सवाल था। अनिल धनी बाप का बेटा था। बहुत बड़ी शू कंपनी का मालिक। बेशुमार दौलत का धनी। शामें अक्सर ऐसे ही बीततीं। अब वह ड्राइवर की जगह कार भी खुद ड्राइव करने लगा था।

'गीतांजलि, होस्टल छोड़ दो तुम अब। ऐसा करो ग्रीन पार्क में ही मेरे विला के सामने एक कमरा ले लो, जिससे मेरे मम्मी, डैडी तुम्हें देख सकें।'

तब तो मेरा कल्याण हो गया समझो। आधा वेतन उस कमरे की भेंट चढ़ा दूं। बाकी क्या खुद खाऊं, क्या परिवार को खिलाऊं? प्रकट में बोली, 'ऊंहूं, यह तो हरगिज़ नहीं होगा। वहां से मालूम है मेरा कॉलेज कित्ती दूर पड़ेगा।'

अमीरी-गरीबी की गहरी खाई दोनों के अधबीच यहां भी खड़ी थी। वह सुदामा-सी और वह देवराज इंद्र-सा। भला मेल हुआ कहीं। ऐसा? तब साफ़-साफ़ क्यों नहीं सब बता देती गीतांजलि अनिल से। ठीक है आज वह उससे साफ़ शब्दों में कह देगी। झंझावात से मुक्त होने का यही तरीका है अब।

दूसरे दिन सब कुछ सुनकर अनिल ने ज़ोर देकर कह दिया था, 'मुझे सिर्फ तुमसे

मतलब है, तुमसे।'

'मेरे डैडी सिवाय मेरे, कुछ नहीं दे सकेंगे दहेज के नाम।'

'फिर वही मूर्खता भरी बातें।'

'लेकिन अपने पैरेंट्स से तो पूछ लो? फिर सोचो, डियर। मेरी नौकरी से मेरा परिवार चलता है। भाई को जब तक पैरों पर खड़ा नहीं कर लेती तब तक कैसे शादी कर सकती हूं?'

'ओह। आखिर तुम समझती क्यों नहीं, तुम्हारा वेतन बाकायदा उन्हें पहुंचता रहेगा। हमारे घर इतना पैसा तो नौकरों पर खर्च हो जाता है।'

अनिल के माता-पिता और भाई-भाभी गीतांजलि को देखकर खिल उठे थे, 'भई लड़की है कि कोई रत्न जड़ा-हीरा। गजब की खूबसूती और यह इम्प्रेसिव पर्सनेलिटी।' वे सब भी उस पर लट्टू हो गये थे। अनिल के उदारवादी विचारवाले डैडी को पता नहीं क्या सूझी थी या कि उसका अपना भाग्य ही प्रबल हो उठा था, वे उसी शाम उसे अपने घर साथ लिवा ले गये थे।

अमित विला देख वह तो चौंधिया ही गयी थी। 'अच्छा, नमस्ते अंकल, अब मैं चलूंगी—देर हो जाने पर हमारी वार्डन खफा होती है।' उसकी आवाज़ सहमी हुई थी। जितनी जल्दी हो यहां से निकल जाना चाहती थी। उसका मन लटकते झाड़-फानूस और झलमलाती मेहराबों के नीचे घुट रहा था। वह खुली हवा में सांस लेना चाहती थी।

'तुम्हारा सामान अब यहीं आ चुका, बेटी! किशनसिंह ले आया है—वार्डन से हिसाब चुकता हो गया है। श्रीराम, बिटिया को ऊपर वाले कमरे में ले जाओ—और हां सुनो, कल से ठीक टाइम पर इन्हें कॉलेज ले जाना और—और लाना, यह ड्यूटी तुम्हारी है, समझे।'

'जो हुक्म, साहब।'

इस 'सरप्राइज़' से वह भौचक्की रह गयी। भाग्य उसके साथ क्या करना चाहता है! कमरे में अनिल पहले से ही मौजूद था। उसके भय और दहशत की सीमा न थी। वह कहां आ फंसी। वह एक मामूली शिक्षिका। ये पूंजीपति लोग। एकदम उसके लिए बेताब और उदार कैसे हो गये? कहीं इनके इरादे नापाक तो नहीं? कहीं भाग्यचक्र उसके साथ खिलवाड़ तो नहीं कर रहा? उसने सोचा अनिल को किसी कदर दफा कर, वह वार्डन को फोन करके यहीं बुलवा लेगी और उसके साथ यहां से छूट भागेगी।

'आओ, गीता, कब से इंतज़ार में पगलाया जा रहा हूं।'

'आज तीन दिन का उपवासा हूं—यानी सत्याग्रह पर। पूरा अनशन।'

'क्या कहा? खाना नहीं खाया? अब यह लो शुरू करो।'

'अरे भई, अपने हाथों मुझे जूस पिलाओ तो अनशन टूटे। डैडी ने सब कुछ मान लिया है, रहीं मम्मी तो डैडी के

आगे उनकी एक नहीं चलती !'

'क्या मान लिया है डैडी ने ?'

'हम दोनों की शादी।'

'क्या मज़ाक है, अनिल। शादी पीछे, घर में पहले। मेरा सामान लाने से पहले कम से कम मुझसे पूछ तो लिया होता। अच्छा पहले तुम अनशन खोलो।'

'गीता तुम अब भी मुझे समझीं नहीं। मैं नंबरी ज़िद्दी हूं। डैडी को मेरी तमाम शर्तें माननी पड़ीं। अब एक पखवाड़े के भीतर शादी हुई समझो।'

वह और हैरान। भला पखवाड़े में कहीं शादी होती है—डैडी के पास इनकी खातिर करने तक को फूटी कौड़ी नहीं, और ये हज़रत पखवाड़े में शादी करेंगे, ओह !

००००

अनिल चला गया तो वह अकेली विचित्र भूलभुलैया में छटपटाने लगी। नयी अजानी जगह अनजाने लोग। लगा जैसे किसी पंछी के पर काट दिये गये हों ! करीब रात दस बजे द्वार धीरे से बजा। वह कांप गयी। इन अमीरों की नीयत का क्या भरोसा ! अब क्या करे ? खोले या नहीं दरवाज़ा !

कॉल-बेल फिर बजी। वह भय से थर-थर कांपने लगी, बदन पसीने से नहा उठा ! पत्ते की नाईं कांपते दरवाज़ा खोल दिया। भय से फक्क पड़ गयी वह ! डैडी तुम ? इतनी रात गये ! कैसे आये ? घर में सब ठीक तो है न ? मां-भाई-बहनें।' वह एक सांस में पूछ गयी।

'इतना हांफ और हकला क्यों रही है, बेटी ! तुम्हीं ने तो तार देकर बुलवाया है ! तड़के टेलीग्राम मिला और मैं चला। घर तो बेटी बहुत ही अच्छा है। कितना किराया है ?'

बात उसकी समझ में आ गयी। उसे संयत होने में समय लगा, 'बैठो न, डैडी, सब बतलाती हूं।' वह कुछ कहे कि सुदामा के आगे भगवान कृष्ण आ खड़े हुए साक्षात्। अनिल और उसके डैडी। फिर उसके कहने को कुछ नहीं था।

सब कुछ सुनकर डैडी ने कहा, 'लेकिन देने को मेरे पास यही सच्चा मोती है सिर्फ—गीता। और कुछ भी नहीं, निहायत दरिद्र आदमी हूं।'

बस पखवाड़े में सब कुछ तय हो गया। दोनों तरफ का प्रबंध अनिल की तरफ से हुआ। लाज ढांप ली गयी। गीतांजलि विधिवत् व्याहकर धूम-धाम और सम्मान के साथ डोली में बैठ विदा हो आयी।

००००

तब से अब—पूरे छः साल का समय ! गीता है समझदार। लाख मनाही के बावजूद नौकरी कर रही है। कुछ भी हो सर्विस वह कभी नहीं छोड़ेगी। अनिल की मम्मी के डर से आधा चेक मां को भेजती है, आधा मम्मी (सास) को दे देती है। मैका चलाती आ रही है, जब तक भाई पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता।

बंगले में सब तरफ धन ही धन बिखरा

पड़ा है। कोई गिनती नहीं। ब्लैक का पैसा जो आता है बेशुमार। बेटे-बेटियों की शादियों में इम्पाला तक दहेज में दी जाती है। रस्में नामी होटलों में संपन्न होती हैं। डायमंड-सेट ननदों तक को दिये जाते हैं। धन का मैजिक वह अभी तक समझ नहीं सकी। ससुर, जेठ, देवर साल में एक दो चक्कर विदेशों का ज़रूर लगाते हैं। घर में उत्सवों पर रेडियो आर्टिस्ट बुलाये जाते हैं। ब्याह-शादियों पर तो पूरी फिल्में ही तैयार की जाती हैं। कहां दरिद्रनारायण का वह जीवन! कहां यह महा ऐश्वर्य! वह हतप्रभ है। घर-परिवार में उसके बराबर एजूकेटेड कोई नहीं। लेकिन धन के आगे विद्वता की पूछ कितनी है!

छोटे देवर की शादी फाइव स्टार होटल में हुई। थाल भर चांदी-सोना और डायमंड के सेट आये। एक अंगूठी उसे भी मिली। रह-रहकर वह देखती रही, यह डायमंड है या व्हाइट मेटल। अरे इन अमीरों के चोंचलों का क्या कहना! ये डायमंड को नकली, नकली को असली डायमंड बतला दें—'समरथ को नहिं दोस गुसाईं'।'

वह तो इस माहौल में बेतरह ऊब गयी है। घर परिवार की बैठकों, गोष्ठियों में उसका मानस उखड़ा-उखड़ा रहता है। रह-रहकर उसके मन में कुछ अटक जाता है। इस तरह तो उसका कैरियर ही खत्म हो जायेगा!

वह जिस आसमान का परिंदा है उसके लिए पेड़ की ठंडी छाया ही काफ़ी है। घरों की छतों के नीचे कैद, बंद दीवारों पर खिचे पर्दों के भीतर पसरा अपरिमित वैभव—इसमें घुट गयी है वह। उसकी संवेदनाओं को मरने से बचाना होगा। संवेदनाओं की पराकाष्ठा तो उस दिन हो गयी थी।

'किशनसिह! यह चाय किसके लिए लिये जाते हो?' मम्मीजी ने सर्वेण्ट से सवाल किया।

'बिटिया की टीचर के लिए।'

'क्या रोज़-रोज़ चाय! खाली चाय पीते-पीते टीचर मरेगी नहीं क्या?'

'तो, मम्मी, नाश्ते में कुछ भेज दो न?' वह झट से बीच में बोल पड़ी।

मम्मी गुरु-गांभीर्य से उसे घूरने लगीं। रेणु को मम्मी से कहते उसने साफ सुना था, 'ममा! यह छोटी भाभी जाने समझती क्या हैं अपने को! पीहर से कानी-कौड़ी भी तो नहीं लायीं, किस बूत पर अकड़ी रहती हैं भला!'

यह सब कारस्तानी तेरे लाडले भाई अनिल की है। पूरा जन्म सीख देती रहूं तो भी भावुक ही रहेंगी रानीजी, भला ऐसे लोग क्या नौकरों से कभी डील कर सकते हैं? नौकरों से ऐसे पेश आती हैं महारानीजी, जैसे सगे भाई हों इसके। आखिर संस्कार कहां जायेंगे? कभी कुछ देखा हो तभी न? बाप के घर भुखमरी और महागरीबी झेली!'

उसके बारे में हर सदस्य की अलग प्रतिक्रिया थी। ससुर कहते, 'धन तो सभी ला रहे हैं, पर लड़की तो बहू रूप में पहली आयी है घर में! सुंदर, सुघड़, नेक और सुशील।'

'तभी तो अपने सामने किसी को समझती ही नहीं कुछ,' बड़ी ननद बोली थी।

'अरे भई, कुंठा ग्रस्त हैं,' रेणु कहने लगी।

'जाने पिताजी ने इसे इतना सिर क्यों चढ़ा रखा है?' जेठजी भी बड़बड़ाये थे।

सभी सेवक छोटी मेम साब का आदर-सम्मान करते थे, आपस में कहते, 'छोटी मेम साब कितना मीठा बोलती हैं, रे किशना! एक दम कोयलिया सी मीटी बोली है उनकी।'

'मुझे कभी डांटा नहीं उन्होंने बड़ी मेम साब की तरह।'

'अपनी छोटी मेम साब सिम्पल कितनी हैं न,' ड्राइवर एक दूसरे से बतियाते।

'किसी गरीब घर की हैं, सुना है।'

'चाहे जो हों, हमें तो उनसे बहन का-सा अपनापन मिलता है, रे रामसिंह। मेरा मन करता है बस छोटी मेम साब की टहल में ही लगा रहूं।'

'सचमुच दयालु मन वाली हैं, कल मांजी से उलझ पड़ीं—जरा सी देर श्रीराम सुस्ता रहा है तो कौन आफत है, मम्मी! लाओ चाय में बना लाती हूं, आखिर वे लोग भी इंसान हैं! थकान उन्हें भी होती है! कोई इस्पात के तो नहीं बने हैं।'

०००

छोटे देवर की शादी में उसे कितना बुरा लगा था उसके पूरे परिवार से दो बहन-भाई ही आये थे। मम्मी ने उन दोनों को हॉल के ही एक कोने में गोदरेज की अलमारी के पीछे सामान रखने को कह दिया था। वह खुद जब उन्हें अपने कमरे में ले जाने लगी थी, तभी मम्मी ने उसका दायां हाथ थाम लिया था, 'शीऽऽ जैसा मैं कहूं, तुम वही करोगी!' उनकी दमदार आवाज़ के सामने उसका व्यक्तित्व दब गया था। सुखद माहौल में उसे आंसू भी पीने पड़ गये थे। यही हालत रात को सोने के समय थी। बूढ़ी-बड़ी महिलाओं और आदमियों के बीच उसी बड़े हॉल में ही दोनों के लिए ज़मीन पर गद्दे-रज़ाई डाल दिये गये थे। तब वह सहन न कर सकी थी। उसने बलात् बहन को कमरे में हाथ पकड़कर खींच लिया था। अगले सवेरे (बहू के घर में आते ही) उसने उन्हें घर के लिए रवाना कर दिया था। लहू का घूंट पीकर रह गयी थी गीतांजलि!

उसकी रही-सही सहन शक्ति तब जवाब दे गयी थी जब मम्मी-पापा ने, कई लैटर लिख-लिखकर उसकी सास और उसके ससुर को अपने घर बुलाया था। बड़ी मुश्किल से ये लोग तैयार हुए थे जाने को। हुआ यह था कि उसके इकलौते भाई विश्वास को लेक्चररशिप मिल गयी थी। इस खुशी में पापा बुलवा

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)

भारतमाता मंदिर : एक सात्विक कल्पना

□ हंस

निवृत्त जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी सत्यमित्रानद गिरि के मन में कुछ समय पूर्व एक छोटी-सी सात्विक कल्पना ने जन्म लिया था। अब यही सात्विक और अभूतपूर्व कल्पना हरिद्वार में 'भारतमाता मंदिर' नाम के असाधारण मंदिर के रूप में साकार होने जा रही है।

मंदिरों की हमारे देश में कमी नहीं है। सैकड़ों की संख्या में विशाल मंदिर भी हैं, और भारी संख्या में छोटे मंदिर भी हैं, जो लाखों की संख्या में गांवों से लेकर नगरों तक में फैले हैं। किंतु, ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो यह कहते हैं कि इतने मंदिरों के रहते नये मंदिर की क्या आवश्यकता है? उनके इस एक तर्क में थोड़ा दम भी है कि सांप्रदायिक उपासना-पद्धतियों में आदमी अलग-अलग घेरों में बंधता जा रहा है।

ऐसी स्थिति में, निवृत्त जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के मन में, कुछ समय पूर्व, एक छोटी-सी सात्विक कल्पना ने जन्म लिया। कल्पना यह थी कि ऐसे समय में जब स्वयं अपने कुछ पथ-भ्रष्ट देशवासी देश के शत्रुओं के बहकावे में आकर, देश की एकता और अखंडता को भंग करने का प्रयास कर रहे हैं, क्यों न सर्व धर्म समभाव को ध्यान में रखकर, सब संप्रदायों के आचार्यों तथा संतों को एक ही मंच पर आने का सुअवसर देने, तथा 'हमारी माता भारतमाता है', और 'हम सब एक हैं?' इन सद्विचारों को मूर्त्त करने वाले 'भारतमाता मंदिर' का निर्माण किया जाये?

स्वामी सत्यमित्रानंदजी की मान्यता है कि धर्म और राष्ट्र एक दूसरे के पूरक हैं। जहां धर्म हमारे निजी संस्कारों को बनाता, तथा उनका परिमार्जन कर, राष्ट्रभक्ति हमें स्वधर्म की रक्षा के लिए होम हो जाने की प्रेरणा देती है। इस संबंध में महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद, पंडित मदनमोहन मालवीय, स्वामी रामतीर्थ, संत रामदास, संत तुलसीदास, महात्माओं का स्मरण हो आता है, जो धर्म-प्राण व्यक्ति होने के अलावा, कट्टर राष्ट्रप्रेमी भी थे।

'भारतमाता मंदिर' भारतमाता की महानता की झांकियां प्रस्तुत करने के साथ-साथ, दर्शकों के मन में राष्ट्रप्रेम की भावना जाग्रत करके, उन्हें इस बात की

णा भी देगा कि वे हर प्रश्न पर, राष्ट्र हित को ध्यान में रखकर ही सोचें। सा सोच उन्हें शक्तिशाली तथा दिव्यता पूर्ण भारत का निर्माण करने की निरंतर णा देता रहेगा। जिस पवित्र भारतमाता गोद में पलकर हम सब बड़े हुए हैं र जिसमें खेलकर हम स्वधर्म का पालन रते आ रहे हैं, उसके सम्मान में मंदिर निर्माण की यह कल्पना तनी अभिनव और अनूठी उतनी ही महान और रणादायी भी।

ारतमाता का समग्र दर्शन

हिमालय की तलहटी में, वालक की उपत्यकाओं के च, गंगा के पावन तट र, सप्त सरोवर, हरिद्वार में स अप्रतिम मंदिर का शिला-यास २६ नवंबर, १९७८ को त्कालीन केंद्रीय वाणिज्य, ागरिक आपूर्ति तथा सह-ारिता मंत्रालय के राज्यमंत्री ी कृष्णकुमार गोयल के हाथों पन्न हुआ था। एक एकड़ भूमि पर र्मित इस 'न भूतो, न भविष्यति' मंदिर ी अनोखी वास्तुविधि, गुजरात के ख्याति-ाप्त वास्तुविद् तथा स्वामीजी के परम-क्त, श्री नरेन्द्र पटेल ने तैयार की है। स विधि की परिकल्पना को एक अति भव्य था सुंदर भवन के रूप में साकार कर रहे , गुजरात के सेवा-निवृत्त अधीक्षक-अभियंता श्री वी. एन. अनंत रमैया। जब १९७८ में इसका निर्माण आरंभ हुआ था, तब इसके निर्माण की अनुमानित लागत दस लाख रुपये आंकी गयी थी, लेकिन आज के मूल्यों को ध्यान में रखते हुए, ऐसी संभावना है कि निर्माण-कार्य पूरा होने तक लागत-राशि साठ लाख तक पहुंच जायेगी।

'भारतमाता मंदिर' में सात तल हैं। सबसे नीचे के तल में भारतमाता की एक विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गयी है, जिसके दर्शन मंदिर में पहुंचते ही होते हैं। श्वेत और हरित क्रांति के प्रतीक के रूप में, भारतमाता के एक हाथ में दुग्धपात्र और दूसरे में धान की बाली को दिखाया गया है। प्रतिमा की पृष्ठभूमि में हिमालय का दृश्य-चित्र तथा उसके सामने पृथ्वीतल पर भारतमाता का संगमरमर में बना एक मान-चित्र उभरा हुआ अंकित किया गया है। इस मानचित्र में द्वादश ज्योतिर्लिंग, सप्त पुरियां और चारों धाम आदि सांस्कृतिक महत्त्व के दर्शनीय स्थलों को भी दिखाया गया है।

पहले तल पर 'संत मंदिर' है, जिसमें भारत के संतों, धर्माचार्यों तथा गौतम बुद्ध, महावीर, आद्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य,

वल्लभाचार्य, समर्थ गुरु रामदास, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, संत ज्ञानेश्वर, गुरु नानकदेव, संत कबीर, संत तुलसीदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु आदि मत-प्रवृतकों एवं महापुरुषों की प्रतिमाओं या चित्रों के दर्शन हो सकेंगे।

सती-मंदिर

मंदिर के दूसरे तल पर स्थित 'सती मंदिर' भारत की महिमामयी मातृशक्ति के दर्शन करायेगा। गार्गी, मैत्रेयी, सीता, सावित्री, उर्मिला, मदलसा आदि प्राचीन तथा लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई तथा दुर्गावती जैसी अपेक्षाकृत आधुनिक सतियों की प्रतिमाएं इस मंदिर में उनके प्रेरणाप्रद वाक्यों तथा प्रेरक जीवन-गाथाओं के साथ अंकित होंगी। आज हमारे देशवासी महिलाओं का सम्मान नहीं करते यह मंदिर उन्हें इस अमर वाक्य की याद दिलायेगा, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' जहां स्त्रियों का सम्मान सुरक्षित है, वहां स्वयं देवता निवास करते हैं।

शूर-मंदिर

तीसरे तल पर, 'शूर-मंदिर' में महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविंद सिंह, वीर हक़ीक़तराय, भगतसिंह, चन्द्रशेखर 'आज़ाद' तथा सुभाषचन्द्र बोस आदि शूरों की मूर्तियां प्रतिष्ठित रहेंगी। प्रत्येक मूर्ति के नीचे उनके प्रेरक कथनांश भी रहेंगे।

शक्ति-मंदिर

चौथे तल पर दर्शक 'शक्ति-मंदि[illegible] दर्शन कर सकेंगे। यहां भारत में [illegible] और पूज्य सभी शक्ति-स्वरूपों, नव-दुर्गाओं मीनाक्षी (दक्षिण), अं[illegible] (गुजरात), तथा गायत्री और सरस[illegible] आदि की मूर्तियां प्रतिष्ठित होंगी। [illegible] सप्तशती के प्रमुख श्लोकों का उत्[illegible] संगमरमर पर किया जायेगा। सीता[illegible] राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण आदि [illegible] भव्य प्रतिमा को भी उस शक्ति-मंदि[illegible] स्थान मिलेगा।

विष्णु के नाना रूप

पांचवें तल पर भगवान विष्णु के न[illegible] स्वरूपों की आकर्षक झांकियां प्रस्तुत [illegible] जायेंगी। उनके विभिन्न स्वरूपों में श्री[illegible] श्रीकृष्ण, अक्षर पुरुषोत्तम, वेंकटेश्वर [illegible] वैष्णव मत में प्रचलित तथा मान्य स्व[illegible] का समावेश रहेगा। श्रीनाथजी [illegible] श्री रणछोरजी के विष्णु-स्वरूपों [illegible] मूर्तियां भी अवस्थित होंगी।

अंतिम तल पर, मध्य में अशुतोष, प्रसन्न, महादेव की एक अति विशाल [illegible] अति भव्य प्रतिमा के अतिरिक्त, [illegible] नटराज तथा अर्धनारीश्वर स्वरूपों [illegible] साकार करने वाली प्रतिमाएं भी रहें[illegible]

अन्य देशों का सहयोग

दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से, [illegible] आज भी भारतीय संस्कृति का [illegible] प्रभाव दृष्टिगोचर, होता है, तथा [illegible] के कुछ देशों के मुसलमान भी राम [illegible]

(शेषांश पृष्ठ १३७ पर)

(पृष्ठ ५९ का शेषांश)

हे थे। इंस्टालमैंट्स पर फ्रिज, टी.वी. ी उन्होंने ले लिया था ताकि किसी कदर मधी को अच्छा रिगार्ड दे सकें। पिछले फ्ते भर से वे लोग बुरी तरह जुटे हुए । रात-दिन एक करके हाथों से घर को जाया था उन्होंने।

डैडी, मम्मी और रेणु (सास, ससुर, णु) और वह खुद, पांचवां ड्राइवर— ांच जने दो दिन के लिए गये थे, मां के ास। मम्मी-पापा और वह इनकी तीमार- ारी में जुटे रहे थे। इनकी भौतिकता आगे विद्वता बिछी ही जा रही थी। रंतु सासजी को जैसे वहां पल-पल ुश्किल और भारी पड़ रहा था। रह- हकर वह गाड़ी में जा बैठतीं। सास क्या फल्म एक्ट्रेस से कम थीं! सोलह ृंगार के प्रसाधनों से भरे बाक्स उनके ाथ रहते थे सदा। कहीं भी जाने से पहले हरे पर तगड़ी कूचियां फेरी जातीं और वदेशी पेंट किये जाते।

कभी पिकनिक, कभी पिक्चर। कभी स्टोरेंट, तो कभी पार्कों में वे उन्हें उन्हें घुमाते फिरे। अचानक पिक्चर से ौटने के कोई घंटे भर बाद रेणु बोली, मा, मेरा तो पर्स गायब हो गया!'

'पर्स!'

'हां, वही व्हाइट वाला जो ममा! ाप बाम्बे से लाई थीं!'

'हाय! लेकिन था क्या उसमें?'

'गॉगल्स, मेकअप का सामान, लिपस्टिक वगैरह-वगैरह। ममा! लेकिन उसमें तो मेरी सगाईवाले डायमंड के टॉप्स भी थे!'

'टॉप्स?'

'गीतांजलि! सुना, रेणु का पर्स कहीं उड़ गया! उसमें उसके किशोर के दिये हुए डायमंड के टॉप्स थे। यानी सगाई में जो लड़केवालों की तरफ से आये थे।'

सबके चेहरे फ़क पड़ गये। मां तो बुरी तरह कांप गयी, विश्वास के चेहरे पर आक्रोश तमतमा आया।

'कुछ भी हो गीता, विद्वता तो हमने तेरी खातिर होम दी, लेकिन हमारी ईमानदारी पर आंच नहीं आनी चाहिये। यही तो हम लोगों की महान दौलत है।'

'कुछ याद पड़ता है कहां छोड़ा, बेटी?' मां बेहद सहमी हुई थीं।

'यहीं लायी थी। पिक्चर चलते वक्त भी था, पर फिर मालूम नहीं . . .।'

भाई-बहनें सब घर छानने में लग गये— गोया गरीबों की तलाशी ली जा रही हो। जो गोपनीय था घर का वह भी सार्वजनिक हो गया। पर्स हो तो मिले!

गीतांजलि ने माथा पकड़ लिया, डायमंड, डायमंड सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गये। दूसरे दिन सवेरे एक गांठ मन में पालकर ये लोग गीता को लेकर चले आये। उधर मम्मी-पापा बेचैन, उधर गीतांजलि छटपटाने लगी! सोने की

दीवारों में उसका दम घुटने लगा। रात भर सो न सकी! सहन करने की भी कोई सीमा होती है! उसने सवेरा होते ही नाश्ते की मेज पर पूरे परिवार के सामने अपना विकल्प पेश कर दिया। मैं अब और यहां रहना नहीं चाहती। हमें आप जोर-बाग वाला मकान खाली करवा दो, पापा! यहां रहकर न तो मैं रिसर्च कर सकती हूं, न ही खुले दिमाग से कुछ सोच सकती हूं, हर वक्त एक तनाव मुझे खाये जाता है। यह सोना, चांदी, डायमंड की दुनिया तुम्हीं सम्हालो। मुझे तो राइज़ करना है। सच्चे डायमंड से सौदा करना है। अब मैं अपने उत्थान का एक दिन भी यहां और बलिदान नहीं कर सकती।'

उसने अनिल से भी साफ़ कह दिया था, 'आखिर मैं एक प्रोफ़ेसर हूं। मेरा भी अपना एम्बीशन है। फिर छः साल हो गये इस टैंशन की दुनिया में रहते! हमारे एक बच्चा अब तक नहीं हुआ। दुनिया में जीने के लिए सिर्फ पैसा ही सब कुछ नहीं होता! मैं अपने ढंग से जीना चाहती हूं। मुझे तुम्हारी डायमंड की दुनिया से कोई मोह नहीं। हम लोग वैसे बहुत निर्धन हैं पर बेईमान नहीं। तुम धनी दूसरी तरह के हो, हम दूसरी तरह के। सरस्वती लक्ष्मी एक साथ नहीं रह सकतीं—समझे मुझे खुला जीवन चाहिये! बोलो मंजूर, वर्ना में खुद जा रही हूं।'

ससुर साहब उदार विचारों के काफी हद तक। देखा जाय तो केवल उनकी स्नेहिल छत्रछाया ही उसे इ घर से जोड़े हुए थी। उन्होंने जोरबा वाला घर एक माह के भीतर टेनेंट खाली करवा दिया अपनी प्रोफ़ेसर बहू लिए।

जहां वह अनिल के साथ सुखी गृहस्थ बसाने में जुट गयी।

सेल्फ में बुक्स जमाते हुए वह मन 'डायमंड की दुनिया' शोध-विषय रूप रेखा तैयार करने लगी।

उद्योगपति . . . डायमंड. . . सोना . चांदी . . दो नंबर का पैसा . . . मार्केटिंग . . . कर चोरी . पैरिस सैर . . . होटलों का जीवन . . . गरीबों देने के लिए . . . कोरे उपदेश-भजन कीर्तन। गोपालकृष्ण-राधेकृष्ण!

—१५ तेजमंडी, अलवर-३०१०

□

नियम से मजबूर

बैंक में काउंटर पर बैठे बाबू को उसने एक फार्म भरकर दिया। बाबू ने फार्म दे और कहा, 'आपने यहां अल्पविराम नहीं लगाया है।'

उसने बाबू से कहा, 'अरे, उसे तो आप ही लगा दीजिये।'

'जी नहीं,' बाबू ने फार्म वापस करते हुए कहा, 'लिखाई एक ही होनी चाहि ऐसा नियम है।'

□

हिन्दी कहानी :

सहयात्री

ओमप्रकाश गंगोला

सामूहिक यात्रा करना अनेक रोचकताओं से भले ही भरा हो किंतु वहां जो साक्षात्कार होता है, वह भी कई अर्थों में सामूहिक ही होता है। सबकी तरह होने में अपनी तरह होना रह ही जाता है। अनिकेत ने अपने जीवन में यात्राएं ही यात्राएं की थीं किंतु अबकी बार वे अकेले ही निकल गये थे। विशेषकर हिमालय की यात्राओं में सामूहिक रूप से घूमते हुए उन्हें अनेक बार लगा था कि विभिन्न अभिरुचि के साथियों के कारण जहां-तहां देखना अधूरा और अतृप्तिकारी रहा था। इसीलिये वे अब की बार अवसर पाते ही अकेले निकल आये थे। उनकी हिमालय की संपूर्ण यात्राओं में केदारनाथ की स्मृति सबसे अभिभूतकारी थी। अतः डाक्टर अनिकेत ने विश्वविद्यालय की छुट्टियां होते ही सीधे ऋषिकेश का टिकट कटा लिया।

संयोग भी कुछ अजीब रहा कि ऋषिकेश से सोनप्रयाग की 'गढ़वाल मोटर ओनर्स लिमिटेड' की बस पकड़ते हुए उन्हें वह अमेरिकन साधु, जिसने अपने आप को शांतानंद कहा था, मिल गया था। अमेरिकन साधु की बगल में सीट पाकर डाक्टर अनिकेत को अच्छा ही लगा। भारतीय साधु होता तो डाक्टर साहब शायद यात्रा-भर उससे बोलते भी नहीं। हर पढ़े-लिखे आधुनिक व्यक्ति की तरह डा. अनिकेत साधुओं से दूर ही रहते, किंतु इस साधु के विदेशी होने ने उन्हें आकृष्ट भी किया। साधु की बगल में बैठते हुए डा. अनिकेत को यह भी अच्छा लगा था कि साधु उनके लिए स्थान बनाता हुआ थोड़ा सिमट गया था और उसने अपनी चमकती आंखों को तनिक फैलाते हुए उनका स्वागत किया था। लेकिन उन्हें गुमान भी नहीं था कि उनकी यात्रा को यह साधु इस तरह विराट् बना देगा। अपनी इस यात्रा को अनिकेत यात्राओं की शुरुआत और पूर्ण यात्रा मानते हैं।

ऋषिकेश से बस ज्योंही चली थी, पर्वतीय प्रदेश का भू-दृश्य शुरू हो गया था। अनेकानेक यात्राओं में अनिकेत पहाड़ी प्रदेशों के नित परिवर्तनीय रंगों, कोणों और आकृतियों के वैविध्य को जानते थे।

इस यात्रा में तो वे पिछली बार एक अच्छी खासी टीम के साथ आये थे और सब कुछ बहुत 'इन्जोयेबुल' रहा था। केवल केदारनाथ और आस-पास घूमते हुए उनके मन में पहली बार एक इच्छा हो उठी थी कि काश वे अकेले छोड़ दिये जाते, कि उनके चारों ओर सब कुछ कैमराबंद कर लिए जाने का, साथियों का चिहुंकता उत्साह न होता, कि वे सधी अंग्रेजी के सधे वाक्यों का उच्छ्वास भर न होता...तो वे घंटों चुपचाप, प्रकृति के विलास को देखते रहते और सबकुछ को 'सन-बाथ' सा लेते रहते। पर हर बार जब वे कम्पनी से थोड़ा अलग होते तो आवाजें सुनायी देने लगतीं। 'प्रोफेसर इज लॉस्ट', 'कमऑन, अनिकेत', 'आओ भी, यार—अभी वहां जाना है, वहां देखना है....।' ऐसा नहीं था कि अनिकेत नहीं जाते या जाना नहीं चाहते थे। पर कुछ फीकापन उनके मन में रह जाता और काफी देर तक छाया रहता। काफी क्षीण था यह अनुभव, पर कहीं अजानी मीठी चुभन-सी उनके जेहन में रह गयी थी।

इस कारण, विश्वविद्यालय से मुक्ति मिलते ही, वे अपनी मंडली की सारी योजनाओं में घेर दिये जाने के पूर्व ही, भाग आये थे। बस में बैठे-बैठे उन्हें यह सब याद आ रहा था। यह भी लग रहा था कि एक आवेग में यह निर्णय तो उन्होंने ले लिया, पर इतना निरापद अकेलापन उन्हें रास भी आयेगा या नहीं। बिन मित्रों के होटलों के अकेले कमरे, सार रास्ता.....! उन्हें कुछ बेचैनी-सी होने लगी। उन्होंने मुड़कर अमेरिकन साधु की ओर देखा। वह डूबा हुआ स अपने में खोया, ड्राइवर के सामने लगे विशाल पारदर्शी शीशे से निरंतर बाह देख रहा था। वे अपने अनुभव से जानते थे कि इन विदेशियों में अपने साथी विशेषकर भारतीय व्यक्ति से बातें करने की अकुलाहट प्रायः नहीं होती। ऐसा भाषा के अधिक गहरे साहचर्य के न मिलने की कल्पना से होता या उनकी मनःस्थिति के कारण वे नहीं समझ पाये थे। जबकि प्रायः हर भारतीय में विदेशी से बतियाने की छटपटाहट हमेशा मिलती, चाहे अंग्रेजी उसके लिए सहज अभिव्यक्ति हो या न हो। उन्हें लगा कि बातें प्रारंभ करने की कसमसाहट उन्हें भी हिला-डुला रही है। फिर भी वे अपने अंग्रेजीदां होने और आभिजात्य के संस्कार में अपने को रोके रहे।

पहाड़ी ड्राइवर अपनी निपुणता से पर्वतीय-मार्ग पर गाड़ी को काफी तेज लिये जा रहा था। उन्होंने अपनी स्मृति को टटोलना शुरू किया। पहले कौन-सा स्टेशन आयेगा? व्यासी, फिर देवप्रयाग श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, अगस्त्यमुनि, सोन प्रयाग और गौरीकुंड; उन्हें याद आत चला गया। उन्हें अपनी इस प्रतिभा प नाज़ था। उनकी मित्र मंडली उन्हें क

बार 'मप' की तरह 'यूज़' किया करती। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट खिल उठी। गंगा की जलधार की ओर वे काफी समय तक खोये से देखते रहे।

'कोई जगह लगती है।' अचानक उन्हें सहयात्री की आवाज़ सुनायी दी।

'ओ—यस—' अनिकेत जैसे सजग हुए। 'इसे व्यासी कहते हैं।' उन्होंने साधु की ओर मुड़कर कहा।

'वयाऽऽसी'. . .साधु ने शब्द को अपनी ध्वनि में समेटने की कोशिश की।

'हां, यह व्यास का स्थानीय भाषा अनुकरण है। क्या तुमने व्यास का नाम सुना है?' प्रोफेसर अनिकेत धारा प्रवाह कुछ बोलने-बतियाने के मूड में आ गये थे। 'ही वाज़. . . .।'

'हां, महाभारत के लेखक. . . है ना . . . .!' अमेरिकन साधु ने वाक्य बीच में ही पकड़ लिया।

'क्या आपने महाभारत पढ़ा है?'

'हां, कुछ हद तक। एक महान ग्रंथ है।' साधु कुछ आत्मलीन-सा हो गया था। अनिकेत ने पहली बार साधु की आंखों में गहराई से देखा। 'आपने पढ़ा है। दिस इज़ समथिंग।' उन्हें लगा सहयात्री कुछ विशिष्ट है। वह मनचला कोई सामान्य हिप्पी नहीं है। उन्होंने स्वयं यह ग्रंथ कभी पढ़ा न था। उसके कुछ प्रचलित प्रसंगों, पात्रों से सामान्य भारतीय की जितनी जानकारी होती है, उसके अतिरिक्त उन्हें महाभारत के बारे में कुछ पता न था। वे इस प्रश्न का उत्तर खोजने लगे थे कि क्या उन्होंने भी पढ़ा है? लेकिन वह प्रश्न नहीं पूछा गया। साधु ने जैसे बात बदल दी।

'यहां बस कुछ देर रुकेगी। क्या आप बाहर चलेंगे?' अनिकेत साधु के आगे-आगे बाहर निकल आये।

'एक कप चाय चलेगी।' अनिकेत ने साधु को निमंत्रण दिया।

'वैल. . . .' साधु की आंखें बहुत बोलती लगीं। अनिकेत ने साफ देखा कि उसे चाय की अधिक इच्छा नहीं थी पर अनिकेत की भावनाओं का ध्यान रखते हुए उसने थोड़ा रुककर हाथ बढ़ा दिया। 'वैल'। चाय की एक दो घूंट लेने के बाद साधु ने अनिकेत से धीरे पूछा, 'क्या केदारनाथ पहली बार जा रहे हैं?'

अनिकेत को लगा साधु ने उन्हें जैसे बतरस की निर्बाध धारा में डाल दिया हो। वे महाभारत की बातों का क्रम नहीं बना सकते थे, अतः कुछ असहज, अवरोधित-सा लग रहा था उन्हें। इस प्रश्न के साथ उन्हें लगा कि बहुत कुछ कहा जा सकता है। इस यात्रा के पीछे की चाह और नाटकीय प्रयत्न का सारा प्रसंग ही सामने था। उनकी दृष्टि सामने के दृश्यों को देखती हुई आकाश तक फैल गयी।

'ओह। माय दिस जर्नी. . . .हैज़ ए हिस्ट्री।' वे थोड़ा रुके और पिछले वर्ष देखी केदारनाथ की उपत्यका उनकी स्मृति में प्रसूत होने लगी। निरापद एकांत की

चाह ने भी उन्हें हलके से लपेट लिया। फिर तो उनके अंदर अंग्रेजी का प्रोफेसर जाग उठा। कई बातें कह गये वे। वे जैसे उस भाव को पकड़ने की चेष्टा करते रहे जो उन्हें अकेले इस यात्रा में खींच लाया। वर्षभर बाद भी वह अधूरी पढ़ी प्यारी रचना उनके मन में रीतेपन की प्यास-सी रह गयी थी। वे दस मिनट तक बोलते रहे होंगे। अवचेतन में केवल यह एहसास था कि अमेरिकन निकट खड़ा उन्हें एकाग्र सुन रहा है। दो-तीन बार उन्होंने साधु की आंखों में देखा भी होगा और सचमुच वहां एक श्रोता था स्थिर, शांत, ग्राह्यता के भाव में। उन्होंने केदारनाथ की प्राकृतिक स्थिति की अद्‌भुतता, दिव्यता, एकांत और चाक्षुषता को शब्द दिये। मंदिर के आधार से पृष्ठ भाग पर विराट् खड़ा वह हिमालय, चारों ओर की वह घसीली रश्मित-सी हरियाली, श्वेत ठंडे प्रकाश-सी दौड़ती नदियां, चारों ओर खड़ी पर्वतों की मौन विराट्‌ता अनिकेत को कुछ ऐसे पकड़ गयी थी कि वह अपने साथ के लोगों की तरह उसे 'सुंदर' 'वंडरफुल' जैसी शाब्दिक गेंदों की तरह उछाल नहीं देना चाहते थे। वे चुप हो जाना चाहते थे। मौन, एकदम मौन। बस कुछ देर उसी के लिए रहना चाहते थे। उन्हें दोस्तों का गरम चाय का प्याला देना भी एक क्षण किसी तेज़ दौड़ का 'कट' सा लगा था।

वे कुछ इतने सम्मोहित हो उठे थे कि शाम की आरती के समय घंटों, शंखों, घड़ियालों की आवाज़ों के बीच उन्हें हिमालय की ऊंचाइयों से देवपुरुष उतरते से लगे थे ... मंद अपनी दिव्यता में। वे यह भी कहना न भूले थे या ऐसी सापेक्षताएं स्वत: उनके सामने खड़ी हो जा रही थीं कि कश्मीर, नैनीताल, दार्जिलिंग की रोमानी प्रकृति इस तरह नहीं होती। वह सुन्दर रूपवती दिव्या स्त्री की तरह मोहते हैं, पर ऐसे नहीं। इसी प्रवाह में वे अपनी संस्कृति पर भी दो-चार सम्मोहक आत्ममुग्ध वाक्य और उन आदि यायावरों की सौंदर्य दृष्टि जिन्होंने इन स्थानों को खोजा एवं आधुनिक पीढ़ी की अ-स्तरीय अ-गहन पकड़ पर रिमार्क कर गये। यहां तक कि गाड़ी का हार्न बज उठा और उन्होंने अपने साथी को उस ओर इशारा करते हुए देखा। वे कुछ देर चलती बस में आत्ममुग्ध से बैठे रहे। कुछ समय बाद उन्होंने सहयात्री को जैसे दूर से लौटते हुए देखा। वह उसी प्रकार ताज़ा बैठा हुआ था। उसकी पीठ सीधी बस की सीट पर लगी हुई थी और वह सामने देख रहा था। देखने की बाध्यता में नहीं, सोद्देश्य आत्मलीनता में जैसा।

अनिकेत जब कुछ अपने में लौटे तो उन्हें फिर से कुछ बेचैनी-सी लगी। साधु ने उनकी बात पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी थी। हां उसे समय भी नहीं मिला था पहाड़ी रास्तों में बस की तेज़ आवाज़

के बीच बोलना अनिकेत के लिए भी असहज-सी क्रिया ही थी। अनिकेत कुछ झुंझलाये अपनी आदत पर और एक अपराधी-से भाव ने उन्हें घेर लिया। वह अमेरिकन की प्रतिक्रिया जाने बिना पहली ही मुलाकात में यह सब कहते गये थे। चालीस-पचास किलोमीटर की एक डेढ़ घंटे की यात्रा में वे इसी भाव में अकुलाते रहे और अंततः उन्होंने अपनी भावना को झटक दिया और सहयात्री के प्रति उदासीन से बैठ गये।

देवप्रयाग आ गया था। बस रुकी थी। ड्राइवर अपनी सीट पर बैठा रहा था। अतः बस के अधिक रुकने की संभावना नहीं थी। सामने शंकराचार्य का बनाया मंदिर, खिलौने से बने पहाड़ी मकान और भागीरथी एवं अलकनंदा का संगम दिख रहा था।

'लुक्स सम इम्पोर्टेंट प्लेस'! साधु ने निहायत ही मुलायमियत से पूछा। अनिकेत ने स्थान का नाम, मंदिर की रचना और संगम से गंगा बनने की बात एक-दो वाक्यों में कह दी। पर अनिकेत थोड़ा चकित हुए जब अमेरिकन साधु ने अपनी अभिभूतता में हाथ जोड़ दिये। सब कुछ फूल खिले होने की तरह सहज गति से हुआ। वास्तव में आस-पास से निरपेक्ष यह क्रिया अनिकेत को विशिष्ट-सी लगी। हाथ जोड़ने की अभिभूतता और शीश झुकाना किसी काव्यकृति के प्रतीकात्मक अर्थ की तरह एक कौंध के साथ अनिकेत को कुछ व्यंजित होता-सा लगा। दीपक की लौ की तरह उसके श्वेत गुलाबी हाथ, मंद कम्पित ऊपर उठे और निष्कंप

उज्ज्वल ठहर गये एवं अपनी ही जागृत आत्मज्योति के समक्ष जैसे उसका शीश झुक गया। ओह, नमन का अर्थ यह होता है! डा. अनिकेत को उस क्षण लगा, हां, इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ कैसे हो सकता है।

बस चल चुकी थी और अमेरिकन साधु पूर्ववत बैठा था। पर उसकी प्रणम्य-मुद्रा अनिकेत के मन में छाई रही। अचानक उन्हें लगा कि वे किसी विशिष्ट व्यक्ति के साथ बैठे हैं। पहले उसके वाक्य छोटे और मन को थाहते, दिशा ते लगे थे और अब उसकी मुद्राएं स्वयं उन्हीं की संस्कृति के प्राच्य-प्रतीकों को उसके सामने अपनी अर्थ छवियों में प्रकट कर रहे थे। आज ही ऐसा क्यों हुआ। वे तो जाने कब से लोगों को हाथ जोड़ते, विनत होते देखते रहे हैं? डाक्टर अनिकेत विचारों, प्रतीकों, बिंबों के भाव संसार में खो गये। जाने कितने अन्य अर्थ उन्हें प्रकट होते लगे.... मंदिर के गर्भगृह में जागृत आत्म-बोध-सी जलती निष्कंप दीप शिखाएं, घर में शुभ कार्यों में देवस्थान के दीपक को निरंतर जलाये रखने का मां का आग्रह व प्रयत्न—अब सार्थक लग रहा था। अमावस्या की काली रात्रि में दृढ़-व्यक्ति चेष्टा-सी जलती दीपशिखाएं। न्याय-ज्ञान को आधार देते से दीप-स्तंभ। साधु की नमन मुद्रा संस्कृति की ज्योतिर्मय यात्रा करा गयी। बचपन से देखे, कभी-कभी किये हुए पूजा-अनुष्ठान प्रतीकीकृत होते गये। दो घंटे की यात्रा और निकल गयी। रुद्रप्रयाग आया और अनिकेत जैसे ध्यान से टूटे। इतनी लंबी यात्रा जैसे उन्होंने पलों पार कर ली थी। बस के रुकने के साथ उन्हें झटका लगा। ओह, वे भी क्या-क्या सोच जाते हैं! वे अपनी प्रतिभा के निनाद में डूबे से, अचेत से बाहर निकल आये। बाहर ठंडी हवा ने छुआ, संकरी जगह में दस-बीस बसों का शोर, लोगों का कोलाहल। वे जब तक पूर्ण सचेष्ट हुए, उन्हें अमेरिकन साधु का ध्यान आया, अरे! वह ड्राइवर से बात कर रहा था। हां, हिंदी, हिंदी तो बोल रहा था—'किट नी डेर रुकेंगे?'

'आधा-पौन घंटा, खाना खायेंगे....' ड्राइवर ने उत्तर दिया। 'नडी कितनी डूर है?' अनिकेत ने पहुंचकर स्थिति संभाल ली। शांतानंद का अनुमान था नदी नज़दीक होगी, अतः वे चाहते थे कि वे उस ओर निकल जायें और यदि बस को भी उधर ही जाना है तो वे आगे बस पकड़ लेंगे। अनिकेत ने ड्राइवर को समझा दिया और वे दोनों आगे निकल गये।

थोड़ी दूर पर ही मंदाकिनी और अलकनंदा का संगम था। अब उन्हें मंदाकिनी के किनारे-किनारे जाना था। पुल के पार शिला पर बैठने का निश्चय किया गया। सामने गतिमान नील निर्मल जल था। अलकनंदा को मंदाकिनी वेगित धकेल रही थी। इस ठेला-ठेली

श्वेत लहरें फुहार-सी उठ रही थीं। एक उद्दाम कोलाहल अट्टहास-सा व्याप्त था। शांत खड़े थे पहाड़, सब कुछ देखते। दोनों थोड़ी देर चुप खो-से गये। अनिकेत को अपनी पहली अनुभूति परिचयात्मक मुस्कुराती आगे बढ़ती लगी। उन्होंने सोचा, ऐसी यात्राओं में साथ हो तो अमेरिकन साधु का। आखिर साथ तो चाहिये ही। अमेरिकन लहरों के खेल को, बनती बिगड़ती आकृतियों को ध्यान से देख रहा था। सचमुच प्रकृति चुनौती-सी फेंकती है। 'देखी है ऐसी पूर्णता? इतना सरल आयोजन और ऐसा अनंत विलास? आदमी प्रकृति को देखे बिना आस्तिक नहीं हो सकता।' अनिकेत देखते और भाषा उनके अंदर बनती—टूटती जाती। पर उन्हें लगा वे अधिक देर तक टिक नहीं पाते। अपने अंदर की बेचैनी, कुछ कहने, बोलने, बस के आने आदि की खटपट उनमें मची रहती। अमेरिकन को देखकर अपने चरित्र की यह बात उन्हें अधिक साफ दिखायी दी। शांतानंद देख रहा था और देखते जा जा रहा था उसे जैसे वहां होने का अहसास नहीं था।

अनिकेत को अचानक किसी अन्य बात ने जकड़ लिया। वे इस सबसे अलग हो गये। उन्हें लगा वे अकेले रहना चाहते थे। वे इतनी बड़ी असभ्यता कैसे कर गये? यह बात उन्हें इतनी 'जेनुइन' लगी कि वे बोल ही पड़े।

'आई हम सॉरी। आप अकेले रहना चाहते थे ना? आई एम टेरेब्ली सॉरी।'

अमेरिकन ने अनिकेत की ओर निद्रित-सी मोहक आंखों से देख और फिर वह धीरे से जैसे अपनी अंतःयात्रा से लौट आया। अपने बैग से कुछ सैंडविच निकालीं और एक अनिकेत ओर बढ़ा दी। अनिकेत ने कुछ हिचक-सी दिखायी।

'डोन्ट बी सिली' अमेरिकन साधु पहली बार पूरा अमेरिकन हो गया था। वह हंसा, 'आप क्या कहते हैं उसे, आप मेरे अटिथि हैं।' और वह मुक्त हो गया। थर्मस से चाय उड़ेलते हुए उसने एक कप अनिकेत को थमा दिया। सारा संकोच ही कहीं खो गया। अनिकेत ने चाय की चुस्की लेते हुए पूछा, 'शांतानंद, अपने बारे में कुछ और बतलाओ।' जो कुछ उसने कहा वह प्रोफेसर के लिए आशातीत था।

उन्हें ज्ञात हुआ कि सामने बैठा हुआ साधुरूपधारी उन्हीं की तरह कैलिफोर्निया में फिजिक्स का कैजुअल प्रोफेसर है। उसने 'इनर्जी पार्टिकिल' पर काफी कार्य किया। अपने एक महत्वाकांक्षी कार्य, जिसमें वह इलैक्ट्रान तथा अन्य फंडामैंटल पार्टिकिल्स की गतियों और आचरण के लिए एक 'मॉडल' अर्थात् अतिसूक्ष्म वैद्युतिक कणों के व्यवहार की 'रूपात्मक—अवधारणा' की खोज में लगे थे, उन्हें पूर्वी दर्शनों आदि के पढ़ने की प्रेरणा हुई। उन्होंने पांच वर्ष तक बौद्ध दर्शन, जैन, लाओत्से, महाभारत और गीता का स्वयं

एवं विशेषज्ञों से मिलकर अध्ययन किया। इस अध्ययन का इतना लंबा खिचने का कारण यह था कि अधुनातन भौतिकी के सिद्धांत जिस पदार्थमात्र और ब्रह्मांडीय गतियों की एकता और रहस्यमयता की बात करते हैं उसका निर्द्वंद्व ज्ञान ईस्वी पूर्व से भी शताब्दियों पहले के इन चिंतकों को था। इस एकत्व और अपरिभाषेयता का उन्होंने इतना दुहरा-दुहरा कर कथन किया है कि उन्हें इस संबंध में कहीं भ्रम था, यह नहीं लगता। वह दंग था कि वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कैसे होंगे? उनकी गणित, उनके अवलोकन यंत्र, उनके ग्राफ क्या रहे होंगे? लाओत्से और जेन ने कुछ मॉडल बनाये हैं पर वे चित्रांकन भर हैं। भारतीयों ने उस सत्य को सीधे कहा है या प्रतीकात्मक कहानियों के अंबार खड़े किये हैं। अनंत कल्पनात्मक मेधा है उनमें। मैं उनके ज्ञान की पद्धति को पकड़ने में उनकी कृतियों में डूबता रहा। बहुत समय बाद मुझे इस बात का बोध हुआ कि उन्होंने सत्य और रहस्य के अलावा सहज ज्ञान, इनटचूशन को भी एक साथ दुहरा-दुहरा कर महत्व दिया है। बस इनटचूशन पाने की खोज, योग तक, योग; भगवा वस्त्रों तक ले आया है। अब छः महीने बीतते हैं अमेरिका में और छः भारत में।

अनिकेत को लगा एक पूरा अध्याय संपूर्ण हुआ। एक विराट् यात्रा। उनके हाथ साधु के प्रति जुड़ गये। संयोग ही कुछ ऐसा हुआ कि तभी बस उनके पास आकर रुकी। हड़बड़ी में सामान समेटा गया। फिर एक लंबी यात्रा। अनिकेत को लग रहा था अपने मन में उठे प्रश्नों, अनुभूतियों को पाने के लिए ऐसी निष्ठा होनी चाहिये। आदमी कैसा एक बंद विराट् उपन्यास-सा होता है जो बाहर से केवल आकर्षक जिल्द या नाम भर होता है। उन्हें गुमान भी नहीं था कि वे किसके साथ बैठ रहे हैं! शांतानंद ने अपने परिचय के साथ उन्हें भी अपने अनुभव पाने के लिए तैयार कर दिया था। डाक्टर अनिकेत तृप्त से बैठे रहे। चुप्पी में ऐसी तृप्ति उन्हें जीवन में शायद ही कभी मिली हो।

आगे बस गुप्तकाशी रुकी थी। एक खुला हुआ स्थान, नदी पार ऊखी मठ का मंदिर दिखायी दे रहा था। अब शांतानंद के साथ औपचारिकताओं के संबंध नहीं रह गये थे। यात्रा थोड़ी शेष रह गयी थी। ड्राइवर भी इतनी लंबी यात्रा में थक गया था। उसने काफी देर गाड़ी रोके रखी। जलपान करते हुए अनिकेत ने शांतानंद से व्यक्तिगत प्रश्न-सा पूछा: 'साधु के रूप में आपको क्या अनुभव मिले हैं?' इस प्रश्न के उत्तर में शांतानंद काफी देर तक चुप रहे और अंत में उन्होंने कहा—'मैं आपके साधुओं के से शब्दों में इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता, हां इतना अवश्य है कि पार्टिकिल-फ़िजिक्स का आदमी हूं अतः कभी आइस स्केटिं

करते हुए, जिसका मुझे बहुत शौक है, जब मैं अंतरतः कल्पना करता हूं कि मैं इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉनों की गति से भाग रहा हूं, कि मेरे रोम-रोम में इन कणों की गति व्याप्त है, तो मुझे उस गति का अनुभव होने लगता है। ठीक वैसे ही जैसे हम स्वप्न में उड़ते हैं तो दृष्टि के नीचे फैले आकाश की गहराई व फैलाव भी सजीवता में अनुभव होते हैं। अगर आपने कभी ऐसे स्वप्न देखे हों तो आकाश की अगाध व्याप्ति, यह भय भी उत्पन्न करती है कि कहीं गिर पड़े, तो? और हम सचमुच या तो गिर जाते हैं, या स्वप्न टूट जाता है। मेरे साथ भी यही होता है। उस विराट् गति की अनुभूति क्षणभर रहती है। फिर एक संशयात्मक, भयात्मक भाव उठता है और सब कुछ सामान्य हो जाता है। आप यह भी कह सकते हैं कि अनुभवात्मक प्रकाशीय वेग को शरीर-चेतना बाधा देती है। यहीं से मैं योग से जुड़ा। शरीर-चेतना से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा हूं।'

वह थोड़ी देर शांत किसी अगाधता में डूब सा गया। इतनी सघन थी चुप्पी कि अनिकेत मूर्तिवत रह गये। शांतानंद ने स्वयं ही बात थोड़ी देर बाद पूरी की। 'असल में सृष्टि के इन रहस्यमय कणों की क्रियावली की अवधारणा का रूपक रचने के लिए गणितीय रूपों से अलग रूपात्मक समझ आवश्यक है। इसी समझ के प्रयत्न में मैं स्वयं भी

आचरण

□ बाबूलाल 'कदम'

बापू !
तुम्हारे सिखाये तीनों बन्दर
जैसे के तैसे बैठे हैं आज तक
कोई अपनी मुद्रा से नहीं हिला !
क्योंकि उन्हें –
भला देखने, भला कहने
और भला सुनने का
अवसर ही नहीं मिला !!

–रामगंज, होशंगाबाद, म. प्र.

बदलता चला गया हूं। शांतानंद ने पहली बार अनिकेत के कंधों पर हाथ रख दिये।

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' अनिकेत को अचानक यह अभिव्यक्ति स्मृति में तैर आयी-सी लगी। स्मृति की खोहें कितनी विस्मयकारी होती हैं और उनमें विचारों के कैसे भूमिगत तार बिछे रहते हैं। डाक्टर अनिकेत को संभवतः यह स्मरण नहीं था कि उन्होंने यह श्लोकांश कब और कहां सुना। 'यह शांतानंद भी क्या चीज है' उन्होंने सोचा।

इस बीच दोनों बस में पहुंच चुके थे। थोड़ी दूर में गौरीकुंड भी आ गया। वहां दोनों ने राजकीय पर्यटक निवास पर रुकने का निश्चय किया। केदारनाथ की चौदह किलोमीटर की पैदल यात्रा दूसरे दिन शुरू होनी थी। अनिकेत चाहते थे

कुत्ते ने गड़बड़ कर दी

यह दुनिया बनी तब प्रारंभ में भगवान ने एक कुत्ते को बुलाया और कहा—'जा और जाकर मनुष्यों से कह आ कि तुम अमर हो जाओगे और कभी मरोगे नहीं।'

थोड़ी देर बाद भगवान ने मेढक को बुलाया और कहा—'जा और जाकर मनुष्यों को संदेश दे आ कि तुम बूढ़े हो जाओगे, बीमार पड़ोगे, अथवा दुर्घटना के शिकार हो जाओगे, तब मर जाओगे।' भगवान का संदेश मनुष्यों तक पहुंचाने के लिए कुत्ता और मेढक दोनों निकल पड़े।

रास्ते में एक झोंपड़ी में एक औरत चूल्हा जलाकर अपने बेटे के लिए खाना पका रही थी। कुत्ता सब कुछ भूलकर पूंछ फटफटाता हुआ वहां खड़ा रह गया और प्रतीक्षा करने लगा कि कब खाना तैयार हो और उसे भी उसमें से थोड़ा खाने को मिले।

उधर मेढक बिना कहीं रुके आगे बढ़ता गया और वह मनुष्यों की बस्ती में पहुंच गया और बोला, 'भाइयो, भगवान ने संदेश भेजा है कि तुम लोग बूढ़े हो जाओगे, बीमार पड़ोगे अथवा दुर्घटना में फंस जाओगे, तो मर जाओगे।'

कुछ देर बाद कुत्ता भी उस बस्ती में जा पहुंचा। और संदेश सुनाया—'भाइयो, भगवान ने आपके लिए संदेश भेजा है कि तुम लोग अमर रहोगे और कभी नहीं मरोगे।'

पर मेढक ने संदेश पहले सुनाया और कुत्ते ने देरी कर दी, इसलिए मनुष्य अमर नहीं हो सका और तब से आदमी मरता चला आ रहा है। [अफ्रीकी लोककथा]

कि साधु और वह एक ही डबुल-बैड वाला कमरा लेकर रहें। साधु ने पहली बार विश्वास, किंतु शालीनता से मना कर दिया। उसने अपने लिए अलग कमरा लिया। अनिकेत से विदा लेते हुए हाथ मिलाया और जाते-जाते उनकी हथेलियों को दोनों हाथों से दबाते हुए कहा, 'आप तो फिर साथ खोजने लगे!' अनिकेत वाक्य का अर्थ समझते कि वह हाथ हिलाता अपने कमरे में अन्तर्धान हो गया।

उस रात अनिकेत प्रतीक्षा करते रहे, शायद अमेरिकन उन्हें शाम के खाने पर बुलाने आये। पर वह नहीं आया। प्रातःकाल सूचना मिली कि अनिकेत के यात्रा पर निकलने से बहुत पहले ही वह जा चुका था। प्रोफेसर अनिकेत ने आगे अकेले ही यात्रा की। मार्ग भर उन्हें शांतानंद का 'आप तो फिर साथ खोजने लगे' कहना याद आता रहा और इस वाक्य ने कभी उन्हें गहरे भीतर मथा, तो कभी वे ठहाकों में हो लिये।

—राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
गोपेश्वर (चमोली), उ. प्र.

जो नहीं जानता

किसी समय एक पूरा महानगर एक ही धर्मगुरु का शिष्य था। यथासमय शरीर के वृद्ध हो जाने पर धर्मगुरु ने समाधि लेकर अपना देहांत कर लिया। उनके रिक्त धर्म-आसन पर दो शिष्यों ने अपने उत्तराधिकार का दावा किया। फलस्वरूप नागरिक-जन दो दलों में विभक्त हो गये। नगर में दो धर्म-मठ भी स्थापित हो गये।

दोनों मठों के अनुयायी अपने गुरु को ही सच्चा और दूसरे को झूठा मानते थे। स्वभावतया, दोनों दलों का प्रयत्न था कि दूसरे दल के लोग भी अपने नये दल को छोड़कर इसी में आ मिलें। दोनों दलों के व्यक्ति विपरीत दल के अनुयायियों में जाकर प्रकट और अप्रकट रीति से अपने मठ के समर्थन में प्रचार करते थे और कुछ लोगों को अपने पक्ष में लाने में सफल भी होते थे।

एक बार एक मठ के गुरु ने अपने शिष्यों को यह कार्य सौंपा कि वे दूसरे मठ में जाकर उसके गुरु की उन असंगतियों का पता लगायें, जो वास्तविक धार्मिकता और आध्यात्मिकता के प्रतिकूल हैं। अभिप्राय यह था कि उन असंगतियों का पता लग जाने पर उनकी चर्चा सारे महानगर में प्रसारित करके सच्चाई से कुछ लोगों को अवगत करा दिया जाय।

इस गुरु के चौदह शिष्य विपरीत मठ में गये और उन्होंने गुप्त और प्रकट रूप से, एक साथ और अलग-अलग भी, उस गुरु तथा मठ की कमियों और असंगतियों का अध्ययन किया। उनका एक विस्तृत लेखा-जोखा तैयार करके वे अपने मठ को लौट आये।

उनमें से तेरह व्यक्तियों ने अपनी-अपनी खोज का विवरण अपने गुरु के दरबार में प्रस्तुत करते हुए बताया कि उन्होंने ये-ये बातें धर्म और आध्यात्मिकता के प्रतिकूल उस मठ में देखी हैं, किंतु चौदहवें व्यक्ति ने अपनी अल्पज्ञता और विवशता प्रकट करते हुए कहा—

'महाराज, मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पाया कि उस मठ की कौन-सी बातें धर्म और आध्यात्मिकता के प्रतिकूल हैं।'

गुरु ने तुरंत ही अपने धर्मासन से उतरकर इस चौदहवें व्यक्ति को गले से लगा लिया और शिष्य वर्ग को संबोधित किया—

'बहुत कुछ देखते हुए भी जो निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं जानता वही वास्तविक रूप में कुछ, और फिर बहुत कुछ जानने का अधिकारी है। अपने इसी एक शिष्य से मुझे आशाएं हैं, कि यह झूठे पक्ष की वास्तविक असंगतियों का पता लगाकर नगर-जनों को उनसे अवगत करेगा और इसके ही प्रयत्नों के फलस्वरूप एक दिन संपूर्ण नगर फिर एक होकर सत्य-पक्ष का अनुयायी बनेगा।'

—रावी

□

नगर विकास या विनाश के पथ पर

□

जेरेमी रिफकिन

विश्व को नयी दृष्टि से समझना शुरू हो गया है। 'एन्ट्रोपी' पुस्तक के लेखकों, जेरेमी रिफकिन और टेड हावर्ड विश्व के विकास को भविष्य के संदर्भ में अवलोकन करते हैं। खेती, यंत्र, शिक्षण, स्थापत्य, नगर और अर्थशास्त्र आदि के संबंध में उन्होंने अपने मूलभूत विचारों को प्रस्तुत किया है। उसी में से नगर से सम्बन्धित विचारों के कुछ अंशों को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

देश के विकास, समृद्धि और वैभव के आधार उसके शहरों पर है, ऐसा कहा जाता है। अमेरिका की समृद्धि का आधार उसके दो सौ नगरों पर निर्भर है। परंतु उन नगरों की अवनति शुरू हो गयी है। यह अवनति रोकी जा सकेगी या ये आलीशान शहर वर्षों बाद भूतों के नगर बन जायेंगे? अथवा, बाद में क्रांतिकारी समाज शास्त्री के 'स्माल इज ब्यूटीफुल' की विचार धारा की तरफ संसार को जाना पड़ेगा? ऐसा हो तो क्या उचित है?

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् और यांत्रिक तथा रासायनिक खेती के विकास के फलस्वरूप अमेरिका नगरों का देश बन गया है। ८० प्रतिशत अबादी शहरों में रहती है। आधी जनता कुल जमीन के १ प्रतिशत से भी कम भूमि पर रहती है। ३ से ४ करोड़ लोग १० हजार चतुष्कोण मील के विस्तार में रहते हैं। शहर अधिक सुविधा, अच्छी नौकरी और सुख-सुविधापूर्ण जीवन का पर्याय बन गया है। लेकिन अब अमेरिका के महानगरों से लोग ऊबने लगे हैं। अभी हाल में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार पर्याप्त मात्रा में लोग छोटे-छोटे नगरों में रहना पसंद कर रहे हैं। ३२ प्रतिशत लोग छोटे नगरों में, २५ प्रतिशत उपनगरों में तथा २६ प्रतिशत देहातों में रहना पसंद कर रहे हैं। मात्र १७ प्रतिशत लोग महानगरों में रहना चाहते हैं। परिणाम स्वरूप ऐसी संभावना पैदा हुई है।

१९७० से १९७६ के बीच अमेरिका के महानगरों की आबादी में २ करोड़ की कमी हुई है। महानगर छोड़कर जाने के विविध कारण थे : जीवन के मार्ग में
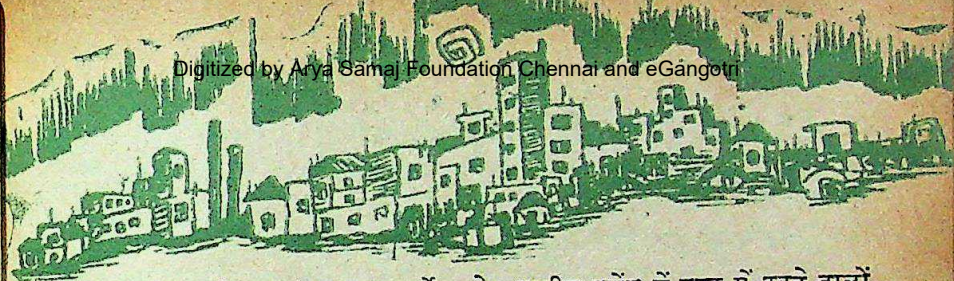
आनेवाली विविध कठिनाइयां, खाद्य पदार्थों और आवास की कीमतों में वृद्धि, कर, असामाजिक तत्वों के कारण अपराधों में वृद्धि, बेकारी, हड़ताल, दूषित वायु तथा अनेक प्रकार की अव्यवस्थाएं। सब के जीवन में घटनाएं अलग-अलग प्रकार से घटती हैं, लेकिन नगर जीवन के लिए सबकी परेशानी समान रहती हैं। नगर-जीवन में टिकने के लिए अधिक श्रम, शक्ति और धन की ज़रूरत रहती है। इस कारण भावी नगर जीवन के संबंध में आशंकित होने का प्रश्न उपस्थित होता है।

शहर, नगर कि महानगर इससे क्या ? सैकड़ों मील के बड़े विस्तार में भीड़ से भरी हुई बस्ती का नाम महानगर। धर्म, समाज, कुटुंब जैसी प्राचीन काल से चली आती हुई संस्थाओं की तुलना में शहर, नगर नयी और आधुनिक सामाजिक संस्था है। खनिज, ईंधन, बिजली तथा यांत्रिक वाहन आदि जब से सुलभ हुए, तब से नये-नये शहरों की उत्पत्ति एवं विकास शुरू हुआ, ऐसा कहा जाता है।

आधुनिक शहरों के विकास के पहले हजारों वर्षों से मानव ऊपर कहे गये नगरों में रहता था। परंतु आज के अर्थ में जिसे शहर कह सकते हैं, वैसे वे नगर नहीं थे। प्राचीन एथेंस में नगर में रहने वालों की संख्या कदाचित ही ५० हज़ार थी। बेबिलोन की जन संख्या १ लाख से कम थी। औद्योगिक क्रांति के पहले शहरों के आकार में अधिक वृद्धि हुई थी। १६ वीं सदी के अंत तक यूरोप के किसी भी शहर की आबादी २० हज़ार से अधिक नहीं थी। अमेरिकी क्रांति के समय बॉस्टन और फिलाडल्फिया की आबादी ५० हज़ार से अधिक नहीं थी। न्यूयार्क का नंबर तब तीसरा था।

१९ वीं सदी के आरंभ में, औद्योगिक क्रांति के पहले जैसे कि रातोंरात इस परिस्थिति में परिवर्तन आ गया। १८२० में १० लाख की बस्ती कहा जाने वाला लंदन संसार का सबसे बड़ा शहर बन गया। १९०० तक १०- लाख से अधिक बस्ती वाले मात्र ११ शहर थे। १९५० में वह संख्या ७५ की तथा १९७६ में १९१ की हो गयी। १९८५ तक १० लाख से अधिक बस्तीवाले शहरों की संख्या २७३ हो गयी होगी। उसमें बड़े भाग के शहर 'तृतीय विश्व' कहे जाने वाले देशों में होंगे।

विश्व की बस्ती का अधिकांश भाग शहरों में रहे, ऐसी परिस्थिति खड़ी होगी।

ई. सन १८०० में २.५ प्रतिशत लोग शहर में रहते थे। १९०० में यह प्रतिशत १५ प्रतिशत और बढ़ा। १९६० में संसार की बस्ती का १।३ भाग शहरों में रहने लगा। विकास की यह गति चालू रहेगी तो संसार के बड़े हिस्से की जनता शहरों में रहने लगेगी।

गत दो सदी के बीच सारे विश्व में बिजली और पर्यावरण आदि शक्तियों का जो अनियंत्रित विकास हो रहा है, वह उस नगर-स्फोट का कारण है। वैसे तो शहरों का आरंभ हज़ारों वर्ष पहले से हुआ था। अनाज का थोक निकालने के उद्देश्य से शहर अस्तित्व में आये। फल, शाक-भाजी को अनाज की तरह तुरंत निकालने की ज़रूरत न थी। उसका संग्रह हो सकता था। इस दृष्टि से गेहूं के शहर, चावल के शहर, मक्का और राई के शहर अस्तित्व में आये। अनाज की मंडियों के कारण शहरों का विकास हुआ और शहरों में मंडियां बनती रहीं।

सन १८०० के पूर्व अनाज शहरों के विकास के कारण बने थे। परंतु शहर के आकार और बस्ती के ऊपर नियंत्रण रहता था। परंपरागत खेती की पद्धति से पर्याप्त अनाज पैदा न कर पाने से शहरों की विपुल संख्या को पूरा नहीं हो सकता। इसलिए शहरी जीवन को शक्ति प्रदान करनेवाले अनाज के लिए गांवों पर उसे निर्भर रहना पड़ता है। शहर के निकट की ज़मीन विस्तार के लिए उपयोग में लेते रहने के कारण उस पर खेती होनी बंद हो गयी। बाहर से फौजी आक्रमण का सामना करने के लिए दीवालें शहर की सीमा थीं। उसके बाहर शहर का विकास न होता था।

बेबिलोन जैसे बड़े शहर का क्षेत्रफल ३.२ चतुष्कोण मील था। अनाज की पूर्ति के लिए दूर-दूर के प्रदेशों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। उन दिनों बैलगाड़ी अथवा हाथगाड़ी द्वारा अनाज का हेरफेर होता था। उन साधनों का उपयोग मर्यादित दूरी के लिए होता था। दूर-दूर अनाज ले जाने में ज़रूरी समय, शक्ति और साधन–खनिज कोलसा या पेट्रोल के कारण सुलभ बन जाता है। शहर के विकास में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

प्राचीन रोम अपवादस्वरूप था। सघन खेती, गुलामों की विपुल संख्या, बड़ी सैन्यशक्ति न होती तो १० लाख की बस्ती वाले रोम का टिका रहना मुश्किल था। रोम का पतन क्यों हुआ, उसके विषय में मरी बूकचिन लिखता है–'रोम का उत्कर्ष, रोम के पतन का कारण बना। रोम की समृद्धि निकट के देहातों के कारण नहीं, किंतु पूर्वीय देशों मिस्र और उत्तर अफ्रीका में से लूट की पद्धति के कारण थी। रोम को महानगर बनने की प्रक्रिया ने उसे महानगर बनने से रोका।'

जैसे नगर बड़े, वैसे अनाज और दूसरी रोजमर्रा की चीज़ें। वस्तुओं की आवश्यकता भी विपुल। शहरों की तरफ अधिक

आपूर्ति जाने के परिणामस्वरूप वाहन व्यवहार, भाव आदि में अव्यवस्था पैदा हुई। जैसे-जैसे अव्यवस्था बढ़ती गयी, वैसे-वैसे उसका सामना करने के लिए सत्ता, यंत्रणा और कानून आदि बढ़ते गये। सैन्य-सहायता लेने में आती है तो सेना के लिए अधिक सुविधा की पूर्ति आवश्यक हो जाती है। इस प्रकार की मदद कम उपयोगी होती है। शहर के आस-पास की खेती के लायक जमीन का उपयोग अन्य कार्यों के लिए करना पड़ता है। अनाज ले आने और ले जाने के लिए ट्रकों के कारखाने, सेना की छावनी, तथा अन्य विविध उद्योगों के कारण खेती की ज़मीन घटती गयी। गुलाम और नौकर रखने की सामर्थ्य न थी। नौकरशाही की सत्ता और दखल बढ़ते गये। उसके खर्च बढ़े। परिणामस्वरूप ये सब भारी बोझ उठाने के कारण शहर अन्दर और बाहर से टूटने लगे। सैन्य-आक्रमण के सामने जीतने वाला शहर पर्यावरण के समक्ष हार गया। रोम के पतन के बाद उसकी आबादी ३० हज़ार हो गयी। नगरों का बेतहाशा विस्तार और विकास चालू रहे और सामग्री न मिल सके तो नगरों की क्या स्थिति हो सकती है, इसे समझने के लिए रोम का उत्कर्ष और पतन एक सटीक और समझने लायक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आज वैसी दशा हमारे यहां भी आ पहुंची है। आधुनिक नगर उसके निकट के विस्तार में फलफूल रहे हैं। आवश्यकता की रेखा वे लांघ गये हैं। राष्ट्रीय अंतर-राष्ट्रीय आपूर्ति उसकी पराकाष्ठा पर पहुंच जायेगी, तो पतन की घड़ी शुरू हो जायेगी।

आधुनिक नगरों की खाद्य-आपूर्ति के संबंध में ऊपर की बातों पर नजर डालें तो वह भय-स्थान कितना नज़दीक है, यह समझ सकते हैं। १० लाख की बस्ती वाले शहर को प्रतिदिन २ हज़ार टन अनाज की ज़रूरत रहती है। इसलिए यांत्रिक खेती, रासायनिक खाद, खनिज तेल से चलते राष्ट्रव्यापी वाहनों की ज़रूरत पड़ती है। उसके बिना गेहूं, चावल, फल, मांस आदि हज़ारों मील दूर बसे शहरों के लिए मिलना और पहुंचाना किस प्रकार संभव हो सकता है? ऐसा न होने पर महानगरों में सामूहिक भुखमरी शुरू हो जायेगी। खनिज तेल, रासायनिक खाद, बिजली ईंधन के भाव में होती जा रही वृद्धि और उसकी कमी के कारण नयी कृषि-पद्धति की कमर टूटने लगी है। उत्पादन में कमी आने लगी है। नयी खेती का अस्तित्व खतरे में है।

न्यूयार्क, शिकागो, लॉस एंजेल्स जैसे शहरों की खाद्य सामग्री कहां से आती है। निकट के देहातों में से आवश्यक चीजें प्रचुर मात्रा में मिलना संभव नहीं। लाखों एकड़ अनाज उत्पन्न करनेवाली ज़मीन अब प्लास्टिक, कांक्रीट तथा इंजीनियरिंग के

सामान पैदा करने लगी। उसके लिए खेती की भूमि अब दूसरे कार्यों में परिवर्तित होने लगी। शहर ज़मीन दे सके ऐसा नहीं है। प्राचीन काल में दीवार के अंदर की ज़मीन भी खेती के लिए उपयोग में आती थी। अब वैसा करना संभव नहीं। ज्यों-ज्यों नगर का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों खेती की भूमि घटती जाती है। बड़े शहर की ज़मीन का आधा भाग तो पथों, उद्यानों, पार्किंग की जगहों तथा भवनों के लिए रोक ली जाती है।

१० लाख की बस्ती वाले शहर को रोज ९५०० टन ईंधन तेल तथा ६२५००० टन ताज़े पानी की जरूरत रहती है। भवन निर्माण और निवासस्थानों के लिए ५७ प्रतिशत बिजली की आवश्यकता पड़ती है। शहरों की रोशनी में ही देश में उत्पन्न होती बिजली का २५ प्रतिशत खर्च हो जाता है। इसके पश्चात् विविध प्रकार की सामग्रियों की ज़रूरत पड़ती है। लिफ्ट के लिए केबल, विशाल बस्ती के आनंद के लिए फुटबॉल के खेल के लिए मैदान, थियेटर तथा उद्यानों आदि के लिए प्रचुर मात्रा में ज़मीन तथा शक्ति की ज़रूरत रहती है।

प्रचुर परिमाण में ये शक्तियां वहां न पहुंचें तो नगर सड़ने लग जाय, व्यवसायों में कमी आ जाय और शहरी जीवन असह्य बन जाय। देश के कितने ही पुराने शहरों में यह प्रक्रिया खूब आगे बढ़ गयी है। गटर, रास्ते की सफाई, वाहन व्यवहार, रस्तों पर बने पुल, मनोरंजन आदि की व्यवस्थाएं असुविधाजनक हो गयी हैं। उनके पुर्ननिर्माण अथवा नवनिर्माण के लिए प्रचुर मात्रा में सामान और बहुत पैसे की ज़रूरत पड़ती है। सौ वर्ष पहले बनी हुई नगर की सारी व्यवस्था जीर्ण हो उठी है। न तो उसकी मरम्मत की जाती है और न कोई नवीनीकरण ही। यह सब टलता ही जाता है, परंतु नगर के विस्तार को रोकने की बात नहीं सूझती।

हवा के दबाव तथा वातावरण की दृष्टि से महानगर की सीमा पर विचार करना चाहिये। यातायातों, कारखानों, बड़े-बड़े महलों, घनी बस्ती तथा वातानुकूलित यंत्रों के कारण शहर में गर्मी निकट के देहात की अपेक्षा ज़्यादा होती है। सूर्य की गर्मी से तपते डामर के मार्ग, बड़े मकानों की दीवारें तथा कांच की खिड़कियों में से परावर्तित होती हुई सूर्य की किरणें, कारखानों, नगर जीवन के विविध आवश्यक साधन हवा के दबाव तथा वातावरण पर कैसा प्रभाव डालते हैं, उसके तुलनात्मक आंकड़े चौंकाने लायक हैं। देहात की अपेक्षा नगर में शीतऋतु का धुंध १०० प्रतिशत अधिक तथा उष्णता का ३० प्रतिशत ज़्यादा होता है। शहर में बारिश ५ से १० प्रतिशत अधिक पड़ती है। सूर्य का प्रकाश पंद्रह प्रतिशत कम तथा वायु ३० प्रतिशत नगरों को कम मिलती है।

रासायनिक कारखाने तथा प्रदूषण शहरी जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। देहातों की अपेक्षा नगरों में कैन्सर, हृदय-रोग, खांसी, सर्दी, दमा तथा अल्सर वगैरह बीमारियां अधिक होती हैं।

सामाजिक दृष्टि से विचार करें तो शहरी लोग कठोर, स्वार्थी और असहयोगी होते हैं। सामाजिक प्राणी के बदले वे व्यक्तिवादी हैं। आत्महत्या अधिक होती है। पागलखाने के अधिकांश रोगी शहरों के होते हैं। खंडित व्यक्तित्व तथा स्वभाव की विचित्रता शहर में विशेष मिलती है। सामाजिक अपराधी भी शहर में ज़्यादा होते हैं।

यंत्र-प्रधान नगर-जीवन का मानव-संबंधों पर जो सूक्ष्म असर पैदा हुआ है, वह विचारणीय है। १० मिनट में आप गांव की अपेक्षा शहर में अनेक आदमियों से मिल सकते हैं। परंतु कोई व्यक्तिगत संपर्क होता नहीं। सब कुछ ऊपर-ही-ऊपर होता है। आदमी अपराध होता देखता है, पर उसकी रिपोर्ट नहीं करता। सहभागी बनकर सहायता करने के डर से टाल देता है। स्नेही-संबंधी या मित्र कम संख्या में होते हैं। परिचितों की सूची लंबी होती है। पड़ोसी के नाम की खबर नहीं रहती। नाव के मुसाफिर जैसी स्थिति है।

महानगरों के नागरिक सार्वजनिक जीवन तथा राजनीति आदि में ज़्यादा रुचि लेते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। परंतु यह एक बड़ी प्रवंचना है। बड़ी संख्या में जनता प्रभावकारी भाग नहीं लेती। गांव में गांव की पंचायत के प्रधान से जब इच्छा हो तभी मिल सकते हैं और इच्छानुसार छोटी-बड़ी बात भी कर सकते हैं। शहर में महानुभाव ही महानुभावों से मिल सकते हैं। शहर में व्यक्ति के अभिप्राय का महत्व नहीं, समुदाय बना कर चर्चा करना पड़ता है।

आर्थिक दृष्टि से विचार करें तो महानगरों में बेकारी अधिक संख्या में है। जबकि वहां उद्योग-धंधा अधिक होने की बात कही जाती है। शहर में दूर-दूर रहने के कारण काम की जगह पहुंचने में वाहन-खर्च अधिक पड़ता है। सुधार, मरम्मत, साफ-सफाई और प्रदूषण दूर करने में भी ज़्यादा व्यय होता है। इससे कर ज़्यादा पड़ता है। संपत्ति, दूकान, तथा घर की रखवाली के लिए चौकीदार का भी खर्च रहता है। विद्यालयों में संख्या इतनी बढ़ गयी है कि गुणवत्तावाली शिक्षा नहीं मिलती। परिणामस्वरूप मजदूरों, लिपिकों तथा इंजीनियरों की कार्य कुशलता घटती है।
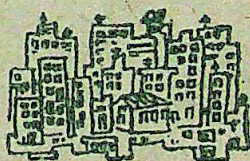
नगर का विकास अर्थात् साधन-संपत्ति तथा शक्ति का अधिकाधिक अनावश्यक उपयोग। शहर यानी अव्यवस्था।

अव्यवस्था बढ़ेगी तो शासन की दखलंदाज़ी बढ़ेगी, बंधन भी अधिक होंगे। इसका समाधान दिखायी नहीं देता। बिजली, सफाई, शिक्षण, राजमार्ग, पुलिस एवं आवास संबंधी प्रश्न हर वर्ष बढ़ते ही चले जाते हैं।

शहर की गंदगी एक बड़ी समस्या होती है। वाशिंग्टन में चौबीस घंटे में ४ हज़ार टन गंदगी बाहर निकाली जाती है। उसे जमा करें तो एक दूसरा 'मोन्यूमेन्ट' बन जाये! इसके लिए क्या किया जाये? उसे किसी जगह जमा करना पड़ता है। शहर बड़ा होने के कारण बस्ती के निकट उसे जमा नहीं कर सकते। उसके दो विकल्प हैं; या तो उसे जला दें अथवा ट्रेन से दूर ले जायें। जलाने से हवा दूषित होती है। ट्रेन से दूर ले जाने में खर्च खूब आता है। गंदगी महानगरों की विकृति है। निष्णातों का कहना है कि १ लाख की बस्ती वाले नगर में रहने वाले नागरिक को ५० हज़ार की आबादी-वाले शहर में रहते नागरिक की अपेक्षा तीन गुना कर भरना पड़ता है। कमाई का बड़ा हिस्सा शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए खर्च हो जाता है। तिस पर भी शहर के विद्यालय, दवाखाना, और पुलिस-व्यवस्था का स्तर घटता रहता है।

प्रख्यात अर्थशास्त्री लियोपाल्डन का कहना है कि 'सामाजिक प्रश्न भौमितिक प्रमाण में बढ़ते हैं, जबकि उसका सामना करने की मानव-शक्ति गाणितिक प्रमाण में बढ़ती है।'

इन सबके परिणामस्वरूप नगरों में संपत्ति तथा शांति घटी है। 'दिवाला' निकलने के अलावा दूसरा विकल्प नहीं रह गया है। औसत आमदनी प्रति व्यक्ति ४२६.९० प्रतिशत डालर है, जबकि केवल सभी सेवाएं उपलब्ध करने के लिए प्रति व्यक्ति को १,०५२ डॉलर खर्च करना पड़ता है।

शहर जैसे-जैसे अपने को स्थिर रखने का प्रयत्न करता है, वैसे-वैसे उसकी अस्थिरता अधिक निकट आती जाती है। कर के अधिक प्रमाण में बढ़ने के कारण धनीवर्ग या उद्योग धंधे के व्यापारी शहर छोड़कर जायें तो उनके जाने से कर, बेकारी और अपराध बढ़ते हैं। इस अनिष्ट चक्र का अंत कहां होगा?

आगामी दो दसकों में अनियंत्रित रूप से बढ़ते हुए और जीर्ण होते जाते हमारे शहरों की क्या दशा होगी? किंतु एक चीज स्पष्ट है कि नगरों का यह विकास भविष्य के लिए खतरनाक है।

☐

एक अवसरवादी नेता का एक मित्र अध्यापक हो गया। उसे समझाते हुए नेता ने कहा–'सुबह क्लास में दाखिल होते ही झुककर लड़कों का अभिवादन करना, पता नहीं उनमें से कल कौन क्या बन जाये!'

☐

तुलसी का दीप

गीतारानी पाण्डेय

अब तो आ भी जाओ !

अंतर का मन तुम्हें बुला रहा।
तुलसी का दीप झिलमिला रहा।

कुछ कुछ पहचाना सा शोर उठा गांवों में,
जाने क्या सोचा है मौसमी हवाओं ने ?
जितना उकसाती हूं बाती को उतना ही,
बाती में तपन भरा दर्द कुलबुला रहा।

तुलसी का दीप झिलमिला रहा।
अंतर का मन तुम्हें बुला रहा।

पायल की रुनझुन सी भाषा कुछ और कहे,
आंचल को थामूं तो वात संग लहर बहे,
जितना समझाऊं मैं सावन के मेहा को,
पलकों पर उतना उमसाए अकुला रहा।

तुलसी का दीप झिलमिला रहा।
अंतर का मन तुम्हें बुला रहा।

विगलन की सीमाएं छूने अब पीर लगी,
पलकों की छाया में सांवरी लकीर जली,
दर्द का फफोला जो मसलन में फूट गया,
रिस आया अधरों की संधियां खुला रहा।

तुलसी का दीप झिलमिला रहा।
अंतर का मन तुम्हें बुला रहा।

अब तो आ भी जाओ।

—१२, गोलागंज, लखनऊ

□

हेमिंग्वे के 'बूढ़े' की वास्तविक कहानी

□ सुदीप

'ओल्ड मैन एंड द सी' विश्वसाहित्य की अन्यतम कृतियों में से एक है, जिसमें अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने मनुष्य की अदम्य जिजीविषा और साहस तथा विषम से विषम परिस्थितियों में भी पराजय स्वीकार न करने की दुर्दम्य भावना का बेजोड़ चित्रण किया है। पुलिट्ज़र तथा नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाली यह अमर कृति लिखी तो गद्य में गयी है, लेकिन अपने अनेक गुणों के कारण यह किसी महाकाव्य-सी लगती है। एक बूढ़ा, एक लड़का, एक मार्लिन मछली और विशाल समुद्र—यही चार पात्र हैं इस महागाथा के।

अनेक लोग आज भी यह मानते हैं कि 'ओल्ड मैन एंड द सी' कहानी का बूढ़ा हेमिंग्वे की कल्पना की उपज है, जिसे उन्होंने उन सारी बातों से बहुरंगी आयाम दे दिये हैं, जो हेमिंग्वे के अपने चरित्र में मौजूद थीं। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। हेमिंग्वे ने 'ओल्ड मैन एण्ड द सी' की पूरी कथा क्यूबा के एक व्यक्ति से सुनी थी, जिसके साथ वही सब कुछ घटित हुआ था, जो उपन्यास में आया है।

हेमिंग्वे के जीवनीकार कुर्ट सिंगर (हेमिंग्वे—लाइफ एंड डेथ ऑफ अ जाएंट) ने १९५५ में उनसे मुलाकात की थी। तब हेमिंग्वे क्यूबा के एक नगर फ्लोरीदीता में रह रहे थे। उस मुलाकात के दौरान सिंगर ने उनसे पूछा था, : 'आपने द ओल्ड मैन कैसे लिखा?'

'मैंने इसे कैसे लिखा?' हेमिंग्वे बोले, 'मुश्किल से, बड़ी मुश्किल से, दोस्त, मैंने इसे दो सौ से भी ज्यादा बार पढ़ा, और हर बार वह मेरे साथ कुछ न कुछ कर देता था। अब भी, जबकि वह पूरा हो चुका है और छप चुका है, मैं इसे उठाता हूं, तो मुझे ऐसा लगता है, जैसे मैंने आखिरकार वह चीज़ हासिल कर ली है, जिसके लिए मैं ज़िंदगी भर प्रयास करता रहा था। जी हां जनाब, वह मेरी ज़िंदगी का सबसे बड़ा और सुंदरतम शो था।'

हेमिंग्वे बहुत अच्छे शिकारी भी थे, इसीलिए उन्होंने अपने उपन्यास के लिए शेर शब्द इस्तेमाल किया था।

'आपको उपन्यास का विचार कहां से मिला?' सिंगर ने पूछा था।

'वह एक अलग कहानी है,' हेमिंग्वे ने कहा था। उसके स्वर में गांभीर्य था, मानो वह किसी गूढ़ बात का उद्घाटन

कर रहे हों' – 'इस कहानी का मिल जाना एक संयोग था, एक घटना। एक सुबह मैं पिलर (हेमिंग्वे की नौका, जिसके नाम पर उन्होंने अपने एक उपन्यास 'फॉर हूम द बेल टॉल्स' की नायिका का नामकरण किया था) को एक दिन की यात्रा के लिए ठीक-ठाक कर रहा था– सागर-तट पर। मुझे वहां एक बूढ़ा मछुआरा मिला। वह मुझसे बतियाने लगा और उसी ने मुझे यह कहानी सुनायी। उस अनुभव को याद करके ही उसके चेहरे पर पीड़ा और निराशा झलकने लगी थी। एक त्रासदी थी वह।

'फिर मैं घर पहुंचा। मैंने लिखना शुरू किया; वह कहानी नहीं जो उसने मुझे सुनायी थी, बल्कि उसने जो कुछ बताया था, उसकी मेरी अपनी कहानी। कोई भी अच्छा रिपोर्टर, कोई भी भूतपूर्व पत्रकार रंग जोड़ता है, दृश्यों की रचना करता है, नाटकीयता को उभारता है। मन के स्तर पर मैं अब भी एक पत्रकार हूं, लेकिन यही बात पिकासो के साथ भी थी। गोया के साथ भी। उनके युद्ध-चित्रों, दुर्घटनाओं की उनकी कहानियों, सांड़ों की लड़ाइयों को देख लो। वह ब्रश और पैलेट इस्तेमाल करता था। मैं अपनी पेंसिल और टाइपराइटर इस्तेमाल करता हूं।'

हेमिंग्वे ने बताया था: 'मैंने लगभग २००००० शब्दों को एक पुस्तक के रूप में लिखा और फिर फिर लिखा है। यह समंदर पर एक किताब होगी। इसे मैंने चार अलग-अलग हिस्सों में बांटा है। हर हिस्सा अपने आप में पूर्ण है और अलग से प्रकाशित किया जा सकता है।

'मूल कहानी मैंने बोहीमिया को दी थी। मुझे यकीन है, तुम इस क्यूबाई पत्रिका से वाकिफ़ हो। 'ओल्ड मैन' की विषय वस्तु मुझे क्यूबा में मिली, मैंने इससे थोड़ा-सा पैसा बनाया, इसलिए मैंने इसे क्यूबाइयों को ही वापस दे दिया ताकि वे इसका आनंद उठा सकें।'

'आपको उस बूढ़े क्यूबाई मछुआरे ने बताया क्या था?' सिंगर ने पूछा था।

हेमिंग्वे हंस दिये। 'खास कुछ नहीं। लेकिन लेखक को बहुत ज्यादा चीज़ों की ज़रूरत भी नहीं होती। शायद एक विचार—और उसके बाद जो चीज महत्वपूर्ण होती है, वह है आपका अपना अनुभव और कल्पनाशीलता। उसके बाद असली काम है आपकी बात और उस
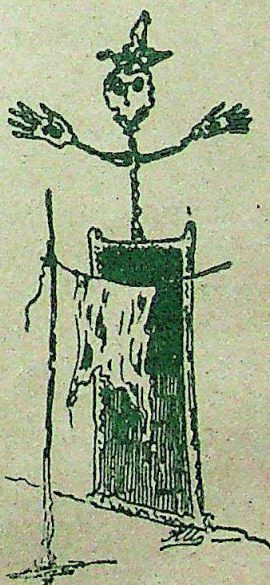
बात को कहने का आपका अपना तरीका।

'उस बूढ़े ने जब मुझे अपनी कहानी सुनायी थी और अपनी बदकिस्मती के बारे में बताया था, तो वह काफ़ी दुखी था। उसने अपनी ज़िंदगी की सबसे बड़ी मार्लिन (मछली) पकड़ी थी, उससे लड़ा था, संघर्ष किया था और किसी तरह उसे अपनी नाव के पास ले आया था। संघर्ष क्लांत कर देने वाला, थका देने वाला महान् प्रेरणादायक कार्य था। लेकिन शार्क मछलियां ऐसा .... खलनायक थीं, जिन पर वह फ़तह नहीं पा सका। इनकम टैक्स की तरह आप मेहनत करते हैं और सौभाग्य से कुछ पा जाते हैं। पापा को अच्छा-सा खासा चेक मिलता है और फिर टैक्स वाली शार्क चली आती हैं और अपने तेज़-नुकीले दांतों से उसका अधिकांश काट ले जाती हैं। बूढ़े ने यह बात नहीं कही थी, लेकिन मैं कहता हूं।'

०००

हेमिंग्वे की ज़िंदगी हमेशा जोखिम भरे कार्यों से भरपूर रही। जाने कितनी दुर्घटनाओं के बीच से उन्हें गुजरना पड़ा। उनके अपने अनुभवों में बूढ़े मछुआरे का अनुभव भी शरीक हो गया था। उन्होंने सिगर को बताया था : 'जो आदमी अपनी ज़िंदगी बिस्तर में गुज़ारता है, वह कभी जी नहीं सकता। वह चीज़ों को देख नहीं सकता। वह प्रेक्षक नहीं हो सकता। अगर कोई लेखक देखना बंद कर देता है, वह खत्म हो जाता है। लेकिन उसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वह चीज़ों को सचेतता से ही देखें या सचेत हो कर यह सोचता रहे कि कोई चीज़ कसे उपयोगी साबित होगी.......

'मैं हमेशा आइसबर्ग के सिद्धांत के अनुसार लिखने की कोशिश करता हूं। आइसबर्ग का जो हिस्सा नज़र आता है, उसका ७-८ वां हिस्सा पानी के अंदर रहता है........महत्वपूर्ण वह हिस्सा है, जो नज़र नहीं आता। अगर कोई लेखक किसी चीज़ को इसलिए छोड़ देता है, क्योंकि वह उसके बारे में जानता नहीं है, तो कहानी में एक काफी बड़ा छिद्र रह जाता है।

'द ओल्ड मैन एंड द सी' हज़ार पृष्ठों से भी ज़्यादा का हो सकता था, गांव का हर चरित्र उसमें आ सकता था, सारी प्रक्रियाएं भी—वे अपनी आजीविका कैसे चलाते हैं कैसे पैदा हुए, कैसे पढ़े-लिखे, कैसे उनके बच्चे हुए, वगैरह...वगैरह.....

'बहरहाल—इस बार मेरी किस्मत अविश्वसनीय रूप से अच्छी थी और मैं एक अनुभव को संपूर्ण रूप से संप्रेषित कर सका; अनुभव भी ऐसा, जिसे पहले किसी ने कभी संप्रेषित नहीं किया था। सौभाग्य यह था कि मुझे एक अच्छा आदमी और एक अच्छा लड़का मिल गया था—और इधर के लेखकों ने इस बात की ओर ध्यान देना छोड़ दिया है कि अभी भी ऐसी अच्छी चीज़े विद्यमान हैं। फिर समंदर के बारे में भी वैसे ही लिखा जा

सकता है, जैसे मनुष्य के बारे में। सो, मेरी किस्मत अच्छी रही। मैंने मार्लिन मछलियों को रतिक्रिया में रत देखा है और इसके बारे में जानता हूं। इसलिए उसे छोड़ देता हूं। मैंने पानी की एक ही धारा में पचास से भी अधिक स्पर्म ह्वेल मछलियों के समूह को देखा है; एक बार ६० फीट लंबी एक ह्वेल को मत्स्य-त्रिशूल से बींधा भी है और उसे खो भी दिया। इसलिए मैं उसे भी छोड़ देता हूं। लेकिन जानकारी ही वह चीज है, जो आइसबर्ग के पानी में छिपे हिस्से का अंग बनती है।'

oooo

हेमिंग्वे से बातें करने के बाद कुर्ट सिंगर उस बूढ़े मछुआरे से मिलने गये, जिसने हेमिंग्वे को अपनी कहानी सुनायी थी।

दोपहर का वक्त। समंदर का किनारा। अनेक नौकाएं। सिंगर एक नौका से दूसरी नौका पर कूदते रहे और लोगों से 'हेमिंग्वे के बूढ़े' के बारे में पूछते रहे। आखिर वह उसकी नाव पर जा पहुंचे।

बूढ़ा अपनी नाव में सो रहा था। उसने आंखें खोलीं। धूप के कारण भैंगा-सा हो कर देखा। फिर आंखें मलीं। फिर 'स्वागत है' कहकर सिंगर को बैठने का इशारा किया।

'क्या बात है?' उसने पूछा। 'तुम मछली पकड़ने के लिए जाना चाहते हो?'

'नहीं, लेकिन मैंने सुना है कि 'बूढ़ा आदमी' तुम्हीं हो।'

'क्या सीनोर हेमिंग्वे ने तुम्हें मेरे पास भेजा है?'

'मैं थोड़ी देर पहले उनके साथ था, और उन्होंने मुझे तुम्हारे बारे में और तुम्हारी विशाल मछली के बारे में बहुत कुछ बताया था।'

बूढ़े की आंखों में शंका की छाया उभर आयी।

'तुम्हारे पास अमरीकी सिगरेट है?' वह बोला। 'क्यूबाई सिगार पी-पी कर मैं तंग आ गया हूं।'

सिंगर ने अपनी जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला और एक सिगरेट उसकी ओर बढ़ा दिया। फिर अपनी जेब से एक दूसरा पूरा पैकेट निकाल कर बूढ़े की जेब में डाल दिया।

सिगरेट पीते हुए बूढ़ा थोड़ी देर सोचता रहा।

उसने एकदम नया स्ट्रॉ हैट लगा रखा था। उसके घने बालों की एक लट उसकी आंखों पर झूल रही थी। उसकी सूती टी-शर्ट पसीने से मैली थी। उसके चौड़े-चौड़े हाथ उसकी पतली बांहों पर झूलते-से नजर आते थे।

उसने अल्यूमीनियम के दो टेढ़े-मेढ़े कप उठाये। रम का एक अद्धा भी। प्यालों में उसने रम ढाली।

'सीनोर', उसने बड़ी गंभीरता से कहा, 'इस इन्सान, हेमिंग्वे, ने मेरी जिंदगी बदल दी है। मैं क्यूबा के पानियों के सब से अच्छे

मछुआरों में से एक था। मेरी किस्मत हमेशा अच्छी रही है। खूब मछली पकड़ता था। तूफानों में कभी नहीं घिरा। मैं खूब पैसा बनाता था। बहुत ज़्यादा नहीं; लेकिन पर्याप्त। इन नौका ने एक बार व्हेल पकड़ी थी। बरसों तक इसमें मोटर नहीं थी, लेकिन व्हेल यह फिर भी पकड़ लेती थी। आखिरकार मोटर भी मिल गयी।

'और फिर मुझे उस दुर्भाग्यपूर्ण यात्रा पर जाना पड़ा। ओ मां, कैसी दुर्भाग्यपूर्ण यात्रा थी! मैंने इसके बारे में सीनोर हेमिंग्वे को बताया, और उनके लिए यह यात्रा भाग्यशाली साबित हुई। उनकी.... मेरी कहानी सब जगह छपी और उन्होंने तमगा जीता। मैंने एक मार्लिन पकड़ी थी, लेकिन इससे पहले कि मैं उसे बंदरगाह तक ला पाता, शार्क उसे खा गयीं। अब उलीवारी की ज़िंदगी में हर चीज़ खुशी-उदासी भरी है।'

'तुम सीनोर उलीबारी हो?'

'हां, मैं ही वह बूढ़ा हूं, मैनुअल उलीबारी मोंतेस्पान। तुम भी सीनोर हेमिंग्वे की तरह क्या मुझपर किताब लिखना चाहते हो?'

'नहीं,' सिंगर बोले। 'लेकिन मैं तुम्हारी कहानी दुबारा सुनना चाहता हूं, वैसे ही जैसे तुमने उसे जिया।'

सिंगर तेल के एक पीपे पर जम कर बैठ गये। मैनुअल भी रस्सों के एक ढेर से पीठ टिका कर अधलेटा-सा हो गया। फिर अपने दोनों हाथों को सिर के पीछे टिका कर उसने बताना शुरू किया।

'सीनोर, वह मेरी ज़िंदगी का सब से खराब वक्त था। मुझे समंदर पर निकले पांच दिन हो चुके थे, जब तूफ़ान आया। कोई बेवकूफ ही समंदर पर रुका रह सकता था। लेकिन मेरी बदकिस्मती इतनी लंबी हो चुकी थी कि मुझे रुकना ही पड़ा। बदकिस्मत आदमी को जोखिम उठाना ही पड़ता है। मैं भी वैसा पागल था! मेरा दिमाग चल गया था।

'उस बड़ी मार्लिन ने नाव पर हमला किया और लौट गयी। शार्क मछलियों ने नाव को घेर लिया। तेज़ हवाएं नाव को डावांडोल करने लगीं। लेकिन मेरी नाव का दुंबाल बहुत बढ़िया है और हम हवा में पंछियों की तरह उड़ने लगे....'

'मैं ड्राई तोर्तुगास पहुंचा, क्या कहते हैं उसे?.....फ्लोरिडा के पश्चिम में स्थित टर्टल टापू, जहां वह विशाल जेल है। मैंने कुछ खाना और ताजा पानी लिया और फिर समंदर में लौट गया।

'मेरा खयाल है मैं कोई हफ्ता भर मछली पकड़ने की कोशिश करता रहा, लेकिन किस्मत ने साथ नहीं दिया। फिर सुबह हुई। आसमान एकदम नीला साफ़ था। सूरज भी गरम और चमकीला। खाड़ी शांत थी और दूर क्षितिज पर मुझे क्यूबा नजर आ रहा था। अचानक आसमान में बादल छाने लगे। समंदर दरअसल तेल की तरह चिकना था। सब तरफ़ खामोशी

के पीछे
किया।
सब से
निकले
आया।
का रह
किस्मती
कना ही
जोखिम
पागल

हमला
छलियों
एं नाव
न मेरी
र हम
.....'
कहते
वमं में
ल जेल
पानी
गया।
मछली
लेकिन
सुबह
था।
खाड़ी
क्यूबा
समान
ल तेल
मोशी
क्तूबर

थी। निस्तब्धता के सिवा मेरे चारों ओर कुछ नहीं था। पंछी मेरे पीछे-पीछे नहीं आये थे। मैं जानता था, एक और तूफान आने को है। क्यूबा और ड्राई तोर्तुगास के बीच तूफ़ान आते ही रहते हैं। हर कोई यह जानता है। पहले तूफान के दौरान मैं भयभीत नहीं हुआ था। लेकिन मुझे मालूम था, यह तूफान मेरा काल साबित हो सकता है। वहां मेरी उपस्थिति मूर्खता से किसी तरह कम नहीं थी।

'तूफान की पहली गरम सांस ने शांत जल में हिलोरें पैदा करना शुरू ही किया था, जब मैंने उस दैत्याकार मार्लिन को चोट पहुंचायी, जिसकी हमारे मित्र हेमिंग्वे इतनी सराहना करते हैं। इसकी वजह भी है– यह मार्लिन बेहद विशालकाय थी। हज़ार पौंड ? कम से कम ! शायद उससे भी ज़्यादा। नाव में मेरे पास करीब १०० गज़ लंबी डोरी थी और यह सारी की सारी डोरी मछली खींच ले गयी; उसने डंडी को ऐसे तोड़ डाला था, जैसे वह टुथ-पिक हो! मैंने डोरी को पकड़ा, उसे अपने शरीर पर लपेटा और नाव के सिरे पर पांव टिका कर खड़ा हो गया। नाव चक्कर लगाने लगी और मार्लिन मुझे और नाव को वैसे ही खींचने लगी जैसे व्हेल खींच ले जाती है।

'हम तेज़ रफ्तार से चले जा रहे थे– विशालकाय मछली मेरी नाव और मैं। हवा तेज़ हुई, तो कितनी ठंड हो गयी थी, मुझे अब तक याद है। आसमान पीला हो उठा। दक्षिण-पूर्व की ओर बिजली अग्नि-सर्पों की तरह चमक रही थी और तूफान का गर्जन पूरे सागर पर गूंज रहा था। हवा कोड़ों की तरह थपेड़े लगा रही थी और बारिश की सुइयां मेरे चेहरे में चुभो रही थी। मैं अंधा-सा होने लगा था।

'मार्लिन अब भी डोरी को खींच रही थी और मैं अब भी नाव की दीवार पर पांव टिकाये खड़ा था। मुझे सिर्फ एक ही डर सता रहा था: इस विशाल मछली को कहीं खो न बैठूं। वह मेरी गुर्बत के समय मुझे मिली थी, मुझे अमीर बनाने के लिए, मेरी बदकिस्मती के लंबे दौर को खत्म करने के लिए। मैंने अपने आपसे कहा– यह मछली जहां भी जाये, मैं इसके साथ जाऊंगा; चाहे यह मुझे मेक्सिको की खाड़ी के तल में ले जाये। और तब पहली विशाल लहर मेरी नाव से टकरायी। मुझे लगा, डोरी टूट जायेगी; मुमकिन है, नाव ही टुकड़े-टुकड़े हो जाये। लेकिन डोरी टूटी नहीं, नाव भी बची रही, और विशाल मार्लिन खींचती रही। उस महाकाय तूफान को हम ऐसे चीरते जा रहे थे, जैसे कोई युद्धरत युद्धपोत समंदर को चीरता जाता है। इस नाव में लगी मोटर उतनी शक्तिशाली नहीं है, जितनी वह मार्लिन थी।

'कितने घंटे तूफान और मार्लिन से जूझते निकल गये, मुझे पता नहीं। मछली जान बचाने के लिए भाग रही थी; मैं डोरी को थामे हुए था। डोरी मेरे मांस

को काट रही थी, लेकिन मैं कस कर उसे पकड़े रहा। तूफान ने मेरी मछली को चुराने और नाव को ध्वस्त करने की कोशिश की। मैं तूफान और अपनी उपलब्धि, दोनों से लड़ रहा था।

'कई बार, रात के वक्त डोरी का तनाव ढीला पड़ा, और मुझे शंका हुई कि मछली निकल भागी है। अपनी बाकी बची सारी ताकत को समेट कर मैंने मछली को खींचा और नाव के पीछे बांध लिया। उसे नाव में डाल लेने की ताकत मुझमें बची नहीं रह गयी थी। उसके बाद मैं सो गया।

'सुबह हुई। शांत और ताज़गी भरी। मैंने अपनी अद्‌भुत मछली को देखा, वह लगभग मेरी नाव जितनी ही लंबी थी। मुझे मालूम था, मैं उसे नाव के अंदर नहीं खींच पाऊंगा। सो, मैंने बादबान तान दिया और क्यूबा की ओर चल पड़ा। दोपहर तक हवा ठीक रही; क्यूबा क्षितिज पर नज़र आता रहा; फिर अचानक हवा थम गयी– सिर्फ गरम स्तब्धता रह गयी; मैंने चप्पू निकाले और उन्हें चलाने लगा; लेकिन मार्लिन के कारण चप्पू कारगर नहीं हो सके। मैंने डोरी को ढीला कर दिया। मछली पीछे-पीछे खिंची आने लगी– और चप्पू चलाने लगा।

'यही वह घड़ी थी, जब कुछ शार्क आया; पहली शार्क मुझे तब नज़र आयी, जब मुझे हवाना की आकाश रेखा का ख़ाका नजर आने लगा था। एक मीनपक्ष ने पानी को काटा और फिर मेरी बड़ी मछली का चक्कर लगाया। फिर शार्क के पेट की सफेद झलक-सी मिली और पानी में लाली घुल गयी। उस शार्क ने मेरी मार्लिन का एक टुकड़ा काट लिया था। फैलते हुए खून ने दूसरी शार्क मछलियों को खींच लिया। मैं और ज़ोर से चप्पू चलाने लगा और मन ही मन प्रार्थना करने लगा कि इससे पहले कि शार्क मार्लिन को चट कर जायें, मैं किनारे तक जा पहुंचू। लेकिन उनकी तादाद बढ़ती ही चली गयी और थोड़ी ही देर बाद अपने शिकार को ले कर उनमें लड़ाई छिड़ गयी।

'मैंने चप्पू चलाना बंद कर दिया और अपनी मार्लिन को नाव के पास खींच लिया। शार्क भी पीछे-पीछे आ गयीं। मैं चप्पू से उनसे जूझने लगा; उनके सिर और मीनपक्ष पर वार करने लगा, लेकिन वे बर्बर थीं और खून के स्वाद ने उन्हें पागल बना दिया था। मैंने उनमें से एक पर चप्पू से वार किया और चप्पू टूट गया। दूसरी शार्क मछलियां अपने साथी पर ही टूट पड़ीं। फिर मेरा दूसरा चप्पू भी टूट गया। मैंने अपना कुंदा उठाया और मैंने उसकी मदद से कई शार्कों को मार डाला।

'लेकिन स्थिति निराशाजनक थी। वे तादाद में बहुत ज्यादा थीं। एक घंटे के अंदर-अंदर उन्होंने मेरी मार्लिन को चट कर डाला था। जब हड्डियों के सिवा कुछ

न बचा तो वे लौट गयीं।

'मेरे जैसा बूढ़ा आदमी भी रो सकता है। लेकिन आखिरकार हवा फिर चलने लगी। मैंने पाल फैलाया और तट की ओर चल पड़ा। मेरी विशालकाय मार्लिन के अवशेष अब भी मेरे पास थे, जिससे अन्य मछुआरों को मेरी कहानी पर विश्वास हो सकता था।

'अब चूंकि मेरी कहानी मशहूर हो चुकी है, इसलिए पैसे वाले, मछली के शिकार के शौकीन लोग मेरे पास आते हैं, और मैं उन्हें अपनी पुरानी नाव में ले जाता हूं। मैंने थोड़ा-सा पैसा बना लिया है। नयी मोटर लगवा ली है। एक कैबिन बनवा लिया है। लेकिन उतनी बड़ी मार्लिन फिर मुझे कभी नज़र नहीं आयी है।'

कुर्ट सिगर ने बूढ़े को कुछ पैसे दिये। उसने नोटों को बिना देखे जेब में ठूंस लिया। 'सीनोर हेमिंग्वे पर मेरी एक नाव उधार है' वह बोला। 'आखिर तो वह नाव मेरी थी, जिसने मार्लिन पकड़ी थी! वह 'बूढ़ा आदमी' मैं ही तो हूं!'

हेमिंग्वे ने बूढ़े मछुआरे को ख्याति दिलवायी थी, उसे बहुत-सा इनाम भी दिया था; इसके बावजूद बूढ़े ने हेमिंग्वे पर मुकदमा दायर कर दिया था। हेमिंग्वे का कहना था कि उन्होंने बूढ़े से ऐसा कोई वायदा नहीं किया था। बूढ़ा मुकदमा हार गया था। शायद धनी पर्यटकों ने बूढ़े मछुआरे को पैसा दे-दे कर उसका दिमाग खराब कर दिया था।

—एन ४।१३ सुंदर नगर, एस. वी. रोड, मालाड (वेस्ट), बंबई-६४

□

तू आप है अपनी रोशनी

तुम चिल्लाये जाते हो, बहुत अंधेरा है, और मैं देखता हूं कि तुम्हारी कंदील जल रही है तुम्हारे भीतर। मैं देखता हूं कि भला-चंगा तुम्हारा प्रकाश तुम्हारे भीतर मौजूद है, और तुम चिल्लाये चले जाते हो, अंधेरा है। तुम भीतर देखते ही नहीं, क्योंकि भीतर देखने की पहली शर्त ही तुम पूरी नहीं करते—वह शर्त है, वर्तमान में होना। **दो क्षणों के बीच जो अंतरात्मा है, वही वर्तमान है। वर्तमान ही आत्मा है। और वर्तमान असीम अनंत है।**

. . . .विज्ञान की सारी खोज पदार्थ की खोज है। पदार्थ यानी स्पेस, फैलाव विस्तार। धार्मिकों ने सारी खोज समय की की है: टाइम/समय बाहर नहीं है, भीतर है। जो बाहर है, वह विस्तार है। दोनों एक हैं। इसलिए आइंस्टीन ने दोनों के लिए एक ही शब्द बना लिया। स्पेसियों - टाइम, समयाकाश। दो नहीं मानो। दो हैं भी नहीं वे। जिसने आकाश की तरफ से पकड़ने की कोशिश की है, वह विज्ञान है, और जिसने समय की तरफ से पकड़ने की कोशिश की है, वह भोग है, धर्म है। **—आचार्य रजनीश**

□

मोहब्बत इसको कहते हैं !

□

राजेन्द्रपाल शर्मा

कालिदास के मेघदूत का नायक अपनी प्रेयसी को मेघों के माध्यम से संदेश भेजता है तो मजनूं जीवन-भर लैला के लिए रेगिस्तान की खाक छानता फिरता है। शीरीं की मुहब्बत में फरहाद ने पहाड़ खोदकर नहर बना डाली। सोहनी की मुहब्बत की शिद्दत ऐसी थी कि महीवाल से मिलने जाने के लिए घड़े के सहारे चिनाब नदी पार करती थी। ये सब प्रेम में पागल लोगों के किस्से हैं। पर आज के युग में क्या आप विश्वास करेंगे कि अपने प्रेम की जीत और प्रेयसी तक पहुंचने के लिए किसी ने २९ किलोमीटर सागर तैर कर पार किया हो, जिसमें खतरनाक शार्क और दैत्याकार जल जीवों द्वारा प्राण-नाश की पूरी आशंका हो।

यह एक सच्ची कथा है। अंदमान द्वीप (कालापानी) के 'सैमसन' (हाथी) और 'डेलिला' (हथिनी) के अमर प्रेम की।

सैमसन और डेलिला अंदमान निकोबार वन-विभाग में लकड़ी ढोने के काम पर लगे थे। धीरे-धीरे वे एक-दूसरे को प्यार करने लगे। जब संबंधित अधिकारियों को हाथी और हथिनी के इस प्रणय-प्रसंग की भनक पड़ी तो उन्हें चिंता हुई। काफी विचार-विमर्श के बाद उच्चाधिकारियों ने सैमसन को उसकी प्रेयसी डेलिला से विलग करने के लिए कहीं दूर दराज के क्षेत्र में भेज दिये जाने पर विचार किया। सारी ज़रूरी कार्यवाही पूरी कर ली गयी और एक दिन उसे एक जहाज़ द्वारा पूर्वी सागर तट के एक द्वीप 'हेनरी लारेंस' ले जाने की सारी व्यवस्था हो गयी। सैमसन ने कभी सोचा भी नहीं था कि इतनी जल्दी उसे अपने प्रेयसी से दूर हो जाना पड़ेगा। जहाज की तेज होती गति उसके और उसकी प्रेयसी के बीच की दूरी को बढ़ाती रही।

२९ किलोमीटर की समुद्री-यात्रा पूरी करने के बाद सैमसन को उक्त द्वीप में ले जाया गया और वहां के वन-विभाग को सौंप दिया गया। सैमसन की तंद्रा टूटी और उसे विश्वास हो गया कि उसे उसकी प्रेमिका डेलिला से विलग कर दिया गया है। हालांकि रुचिकर भोजन और सुख-सुविधा की उस द्वीप में कोई कमी नहीं थी। पर सैमसन का मन तो अपनी प्रेयसी डेलिला से बंध चुका था। खान-पान में अब जैसे उसकी कोई रुचि न रह गयी हो।

सैमसन एक भावुक प्रेमी की तरह

गुमसुम, खिन्न, उदार और खोया-खोया रहने लगा। अपने हमदम के सान्निध्य में बीते प्यारे-प्यारे क्षणों को याद करता रहा। उसे लगता कि डेलिला भी उसकी याद में खोयी-खायी रहती होगी, कुछ खाती-पीती न होगी।

एक दिन घुप्प अंधेरी रात थी। सभी निद्रा में लीन थे। लेकिन सैमसन की आंखों में नींद कहां! . . . उसका मस्तिष्क तेजी से काम कर रहा था। वह क्या करे . . . कहां जाये . . . बस तभी उसने कोई खतरनाक निर्णय ले लिया।

दूसरे दिन सुबह खलबली मच गयी। सारे अफसर चिंतित हो उठे। सैमसन अचानक गायब हो चुका था! खोजने पर भी वह उन्हें कहीं न मिला।

इतना बड़ा जीव आखिर झाड़ों में तो छिप नहीं सकता था। अधिकारियों को उसके मर जाने का भी संदेह हुआ; क्योंकि नये स्थान पर आने के पश्चात् उसने खाना-पीना छोड़ रखा था। अधिकारियों ने तुरंत लांग आइलेंड के मंडल वनपाल को तार द्वारा इस बारे में सूचना दी और जो उत्तर उन्हें प्राप्त हुआ वह चौंकाने वाला ही नहीं, अविश्वसनीय भी था, सैमसन अपने मूल क्षेत्र बकुलतला लौट आया था! रातों-रात सैमसन अपने प्रेम की खातिर २९ किलोमीटर लंबे विशाल सागर को पार कर अपनी प्रेयसी डेलिला के पास पहुंच गया था।

दूसरे दिन वन-विभाग के अफसरों ने उसे उसकी प्रेमिका डेलिला को अपनी सूंड द्वारा पुचकारते-दुलराते पाया। उसके यूं लौट आने की बात किसी ने भी न सोची थी। सैमसन के अमर प्रेम की अभिव्यक्ति को स्वीकारते हुए वन-विभाग के अधिकारियों ने मिलकर एक विशेष मीटिंग बुलायी और उसमें सैमसन के स्थानांतरण को रद्द कर दिया गया। उसी मीटिंग में यह भी निर्णय लिया गया कि
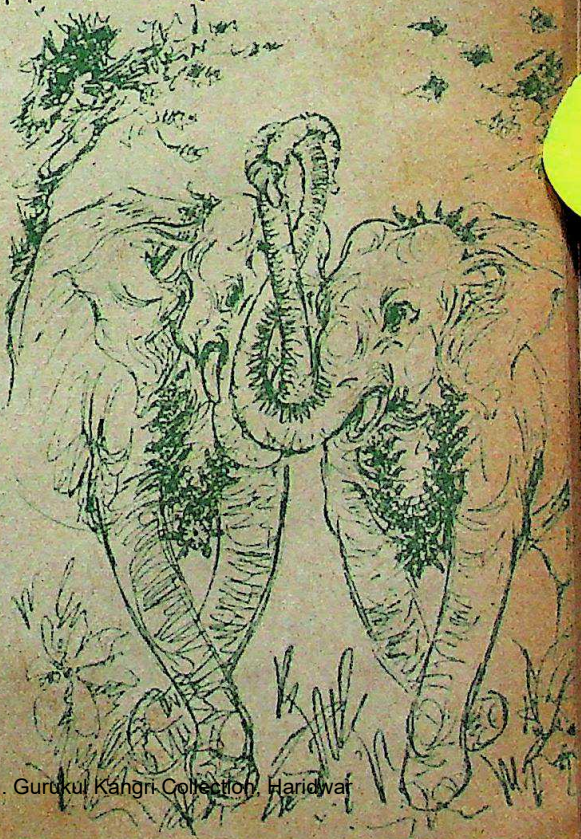
सैमसन और डेलिला का विवाह पूर्ण संस्कार विधि एवं धूमधाम से वन-संस्कृति के अनुसार कर दिया जाये।

विवाह की तैयारियां शुरू हो गयीं और निश्चित दिन पर वन-विभाग के कार्यालय को फूलमालाओं एवं पताकाओं से सजाया। गया। आसपास के गांवों के लोग भी आमंत्रित थे। अन्य हाथियों को भी विशेष रूप से सम्मिलित किया गया।

वन-विभाग के उच्चाधिकारियों ने सैमसन और डेलिला को फूल-मालाएं अर्पित कीं और जिस समय सैमसन और डेलिला ने एक-दूसरे को जय-मालाएं पहनायीं तो सारा वातावरण खुशी से झूम उठा। गांव वालों ने नवविवाहित दम्पति को विशेष उपहार—केले, नारियल, गन्ने आदि प्रदान किये। उस समय सैमसन और डेलिला की प्रेम-जोड़ी किसी रोमियो-जुलियट से कम नहीं लग रही थी।

अंदमान द्वीप के इतिहास में यह पहला अवसर था कि 'विवाह रजिस्टर' में मानव जाति के अलावा सैमसन और डेलिला का नाम दर्ज किया गया।

विवाह के पश्चात् वे दोनों ही वन-विभाग में बड़ी मुस्तैदी और कर्मठता से सरकारी कर्मचारियों की भांति जीवन के शेष दिन कार्यरत रहे।

—१०३ डायमंड, वीरवानी इंडस्ट्रियल इस्टेट के सामने, गोरेगांव (पूर्व), बम्बई—४०००६३

□

श्रम एव जयते

० श्रम प्रत्येक वस्तु पर विजय प्राप्त कर लेता है। **—होमर**

० मनुष्य का श्रम कोई सौदा या वाणिज्य की वस्तु नहीं है। **—क्लेयन ऐण्टी ट्रस्ट एक्ट**

० कोई भी व्यक्ति जब किसी वस्तु के लिए श्रम नहीं करेगा, वह वस्तु उसे प्राप्त नहीं हो सकती। **— गारफील्ड**

० स्वर्ग का श्रृंगार पूर्ण विश्राम अवश्य है, किन्तु पृथ्वी का वरदान तो श्रम ही है। **—हेनरी बेनडाइक**

० जंग लगकर नष्ट होने की अपेक्षा घिस-घिस कर खत्म होना श्रेयस्कर है। **—विशप कम्बरलैंड**

० जिस श्रम से हमें आनन्द प्राप्त होता है, वह हमारी व्याधियों के लिए अमृत तुल्य है, हमारी वेदना की निवृत्ति है। **— शेक्सपियर**

० स्वच्छता और श्रम मनुष्य के सर्वोत्तम वैद्य हैं। **— रोमसिन**

० अरे आलसी, पिपीलिका के पास जा, उसके श्रम को देख और बुद्धिमान बन। **— बाइबिल**

० श्रमिक ही समाज के उद्धारक हैं, और जाति के पुनर्निर्माता। **— ड्यूजिनी वी. देव**

संकलनकर्ता : **रणछोड़ त्रिपाठी**

□

पंडित उपाधि ही पर्याप्त है

□

शिशिर विक्रांत

यूं तो महामना मालवीयजी गुणों के भंडार थे, फिर भी उनमें सर्वोपरि गुण था–विनम्रता। अहंकार तो उन्हें छू तक नहीं गया था। हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना जैसा महान कार्य पूरा करने के बाद भी वे पूर्ववत ही विनम्र रहे। विरुद आदि का लोभ उन्हें कभी लुब्ध न कर सका।

प्रसंग हिंदू विश्वविद्यालय स्थापित हो जाने के बाद का है। मालवीयजी उसका संचालन स्वयं ही कर रहे थे। एक दिन उनको कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति का एक पत्र मिला। लिखा था–'कलकत्ता युनिवर्सिटी आपको डाक्टरेट की मानद उपाधि से अलंकृत करना चाहती है। आशा है, आप अविलंब अपनी स्वीकृति भेजेंगे।'

पत्र पढ़ते ही मालवीयजी ने अपने हाथ से तुरंत उसका उत्तर लिख भेजा–'मैं जन्म और कर्म, दोनों से ब्राह्मण हूं। एक ब्राह्मण के लिए 'पंडित' से बड़ी उपाधि और कोई नहीं हो सकती। 'डाक्टर मदनमोहन' कहलाने के बजाय मैं 'पंडित मदनमोहन' कहलाना अधिक पसंद करूंगा। आशा है, इस ब्राह्मण की इस भावना को आप समझेंगे।'

ऐसे ही एक बार काशी के पंडितों ने विचार-विमर्श करके निश्चय किया, मालवीयजी को 'पंडितराज' की उपाधि से विभूषित करने का। पंडितों की सभा का यह सुझाव उनके कानों में पड़ा तो उन्होंने बड़ी विनम्रता से साफ कह दिया, 'पंडित की उपाधि विशेषणातीत है। मुझे पंडित ही रहने दीजिये। पंडितराज होने की मुझमें जरा भी लालसा नहीं है।' पंडित-सभा तो उनके इस विनम्र अस्वीकार पर दंग ही रह गयी।

ऐसा ही एक प्रसंग भी स्मरणीय है। मालवीयजी तब वायसराय की काउंसिल के वरिष्ठ काउंसिलर थे।

वायसराय ने एक बार एक विशेष वार्त्ता के दौरान उनसे कहा, 'पंडित मालवीय, हिज़ मैजेस्टी की सरकार आपको 'सर' की उपाधि से अलंकृत करना चाहेगी। क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?'

वायसराय का अनुमान था कि मालवीयजी सहर्ष स्वीकृति दे देंगे, लेकिन मालवीयजी के शब्द सुनकर उनका चेहरा नीचा हो गया। मालवीयजी ने मुसकराते हुए कहा था, 'महामहिम वायसरायजी, धन्यवाद! ब्राह्मण के लिए पंडित की उपाधि ही सर्वोपरि है। और यह उपाधि मुझको वंश-परंपरा से ही प्राप्त है। पंडित से कुछ दूसरा होना मैं बिलकुल नहीं चाहता।'

–१४८ चकिया, इलाहाबाद–२११००१

□

धरती का वह टुकड़ा

□

आलोक भट्टाचार्य
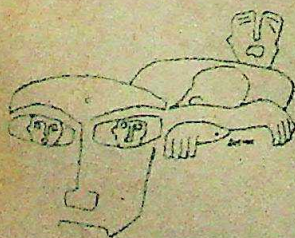
ये हो सकता है धानी चुनरियों की
कांच की कुछ चूड़ियों की
आलता-सिन्दूर-मेहंदी की
कई अल्हड़ सखी थीं,
कोई चम्पा-चमेली-सूरजमुखी थीं

या कि अबला के बली थे
बहन के भाई थे
मां के लाड़ले बेटे पड़े थे,
बहुत-से थे लोग
पर सब कब्र में लेटे पड़े थे।

और मैं था।
मैं, मेरा मतलब किसी का भाई
या बेटा किसी का
या किसी के रूप का शृंगार
जीता-जागता मैं सांस लेता
अपने दोनों पांवों पर ऊंचा खड़ा था
किन्तु उस पल लग रहा था
जाने कब के चुक गये निस्पन्द देहों का धनी
सुनसान-सा वह स्थान—
मुझसे भी बड़ा था!

मैं खड़ा था—
शब्द का सम्राट मैं-निःशब्द उस वातावरण में
वाग्देवी का वरद—हतवाक्-सा, निर्वाक्-सा
हां, मैं खड़ा था।
और चुप्पी को मुखरता के नये आयाम देता
हर ऊंचाई को निरा बौना बनाता
मेरे आगे विनत-सा
धरती का वह टुकड़ा पड़ा था!

—४०/३, पुजारी ब्लॉक, सागांव, पो. मानपाड़ा, डोंबिवली (पूर्व)—४२१२०४

□

उमा शर्मा की हिन्दी कहानी

□

प्रभु के आधीन

दिन-भर की कड़ी मेहनत के कारण, सारा शरीर दुख रहा था। खाट पर पड़ते कब नींद आ गयी पता तक न चला। पता नहीं बाऊजी कब रात गये तमाम मन में सजोई बातें कहते रहे, नई पुरानीं, आध्यात्मिक चर्चाएं, लगता था उनके दिल में बहुत पीड़ा है, अवसाद बह रहा है। उसको कोई पोंछने वाला नहीं। वक्त के बदले नखरों को देख-देख उन्हें इस उम्र में अधिक दुख पहुंचा है। कभी किसी को जिह्वा से बुरा न बोलते, न अभिशाप देते, फिर यह तो उनका अपना रक्त है। सारे गम, वेदना 'जैसी प्रभु की इच्छा' 'ईश्वर जो करता है अच्छा करता', 'इसमें भी अपना कोई हित छिपा होगा।' वे कष्टों को आड़ में ले सब गम गटक जाते— यह समझकर कि संतोष ही परम सुख है वे कर्म को महत्व देते। लेकिन अच्छे कर्म के पक्षधर बाऊजी को क्या अच्छा मिला। इस बुढ़ापे में संतोष-प्रिय प्रभुभक्त बाऊजी को अभाव, पीड़ा पहुंच रही है, और उनका प्रभु मौन है, यह सब देखकर !

उठने की चेष्टा में बाहर झांका, अभी झुटपुटा था। देखो बाऊजी अपनी खाट पर नहीं थे। उन्हें शायद रात भर नींद नहीं आयी होगी। मेरे ज़ोर देने पर इस कमरे में खाट पर सोना पड़ा वरना, उनका निवास, शयन सब पूजा वाले कमरे में पड़े तख्त पर ही चलता है। अगरबत्ती-धूपबत्ती की सुगंध आ रही है, बाऊजी स्नान कर पूजा में हैं, मुझे अपने पर ग्लानि हो आयी। मैं अहदी की तरह पड़ी हूं। आज आंख कुछ जल्दी खुल गयी, वरना इतनी सर्दीली रात में प्रातः उठने की क्या तुक ! वहां तो जब तक सड़कों पर खूब चहल-पहल नहीं हो जाती, धूप खिड़की के शीशे से छन-छनकर हमारे कमरे को रोशन न कर दे, तब तक खुमारी की पहली अंगड़ाई नहीं टूटती। यहां की दीवारों में, ईंट-ईंट में न जाने कौन-सी रची-बसी मादक सुगंध है, जो चुपके सहला कर मीठी-सी नींद से जगा देती है। बरसों पहले छोड़ा यहां का सात्विक, आध्यात्मिक परिवेश, भौतिक सुख सम्पन्न घर के तनावयुक्त वातावरण में अनेक बार याद आता रहा।

बाऊजी कमरे में कुछ लेने आये हैं। उनके खड़ाऊं लांगदार धोती के बगल से लटकती जनेऊ से बंधी उनकी अलमारी

की चाबी। उसके ऊपर ऊनी बनियान पहने हैं। यह बनियान रोज़ नहीं धुलती, पर बाऊजी के लिए शुद्ध है, क्योंकि ऊनी कपड़ा शुद्ध मानते हैं हर हालात में, केवल शौचालय जाते समय अवश्य अलगनी पर लटका जाते हैं। जनेऊ को दायें कान में लपेटना भी कभी नहीं भूलते। पता नहीं बाऊजी कैसे इतने सारे कठोर नियम इस उम्र तक पाले हैं। हमें तो एक समय के बाद उकताहट होने लगती है, एक-सा बंधनयुक्त जीवन जीते-जीते। पर बाऊजी 'सब प्रभु के आधीन' कहकर भीतर सहन की सीमा बढ़ाते जाते हैं।

'अरे तू उठ गयी, बेटी। मैं तेरे ऊपर कम्बल डालने आया था। सोचा तुझे यहां ठंड लग रही होगी। वहां कहां इतनी ठंड पड़ती है?'

बाऊजी के भीतर इस उम्र में मोह-ममता बढ़ी देख मैं पुलकित हो भाव-विह्वल हो उठी। ओह, सच प्यार तो केवल मां-बाप ही देते हैं बच्चों को। उनके लिए बच्चा, बड़ा होकर भी बच्चा रहता है। मेरी आंखें सजल हो गयीं।

'नहीं बाऊजी, मैं अब उठने वाली हूं।'

'अरे अभी क्या करेगी सो जा, अभी बहुत रात है। मैं पूजा करने बैठूंगा।' कई घंटे की पूजा होती है बाऊजी की। मैं क्या करती जल्दी उठकर, सो मैंने करवट बदल ली। आज कितना संतोष आ गया है। बेड-टी की तमन्ना नहीं। त्याग, संतोष में ही शान्ति है, बाऊजी का कहना एकदम सही है।

'श्री रामचंद्र कृपाल भज मन...' बाऊजी आरती कर रहे हैं। वे आज तक ७०-७५ वर्ष के होकर मन्दिर नित्य नियमपूर्वक दर्शन को जाते हैं, अपने ठाकुरजी की पूजा-पाट नियम-धरम बखूबी निभा रहे हैं। अब तो रिटायरमेंट के बाद यही उनकी दुनिया सिमट कर रह गयी है। अपने पूजा के कमरे में व्यस्त रहते हैं। अध्ययन को भागवत, रामायण, गीता 'कल्याण' के अंक लाइब्रेरी के रूप में आलमारी में सजे हैं। गीताप्रेस की तमाम पुस्तकें एक बार गोरखपुर में न मिलेंगी पर बाऊजी की लाइब्रेरी में उपलब्ध हो जायेंगी। हमारे लिए भी बचपन में धार्मिक ग्रंथ पढ़ने को छोड़कर उपन्यास कहानियां पढ़ना मना था। यह नियम भी शामिल था। अब सबके नियम टूट गये आधीनता टूट गयी पर बाऊजी का 'सब प्रभु के आधीन' नहीं बिखरा। उनके लिए अनेक नियम अभी तक अखण्डित हैं, बस फर्क इतना है कि पहले चार बजे उठकर अपनी आराधना में चार घंटे के लिए जुट जाते थे। अब बढ़ती उम्र के साथ एक घंटा बाद अपना क्रम शुरू करते हैं। पैदल गंगाघाट जाकर नहाना गठिया दर्द के कारण बंद कर दिया है। घर पर ही गर्म पानी से नहाते हैं। और गर्म पानी से अपने भगवान को स्नान कराते हैं। उनकी आस्था इतनी पक्की है कि कहीं उनके भगवानजी को ठंडे पानी से ठंड न लग

जाये! जानकर उनकी निर्मल बुद्धि पर हंसी आती है, पर उनका विश्वास देख हैरान हो जाना पड़ता है। तांबे की घंटी में गर्म पानी में अंगुली डालकर देख लेते कि पानी ज्यादा गर्म तो नहीं। ठीक होने पर तांबे की तश्तरी भगवान का बाथ टब बन जाता है। सिलसिलेवार पीतल में ढले प्रभुजी को पकड़-पकड़ घंटी से पानी डाल, 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे', या विनयपत्रिका का पद 'राम, जपु, राम जपु बावरे' गुनगुनाते रहते हैं, जब तक पीतल के सिंहासन में विराजे सारे देवता ठीक से कुल्ला-मंजन न कर लेते, तब तक किसी देवता को कपड़े नहीं पहनाते। एक दिन भानू के छोटे लड़के ने कहा था, 'बाबा, यह कैसे भगवानजी है, सबके सामने नंगे बैठे हैं बाथरूम में। अपने आप क्यों नहीं नहाते ?' नालायक की औलाद जैसा बाप था, पूजा-पाठ से जी चुराने वाला वैसी ही औलाद पैदा की है।' बाऊजी का गुस्सा देख भानू ने बेटे के कोमल गालों पर दो चांटे जड़ दिये। रश्मि को ज़रूर बाऊजी की यह बात बुरी लगी थी।

चंदन-होरसा की खट-खट आवाज़ अभी वैसी ही है। पत्थर के होरसा का एक पाया शुरू से ही ऊंचा-नीचा है। यह ऋषिकेश से बाऊजी का असिस्टेंट लाया था। बहुत खुश हुए थे चंदन का होरसा व पत्थर की शिवपिंडी पाकर। 'श्री राम जय राम जय जय राम' भजन अभी चालू है।

अब उन्होंने भगवान को चंदन लगाकर स्वयं तिलक लगा लिया होगा।

०००

एक बार मैं अपने साथ रिंकू को लेकर आयी। रिंकू बहुत वाचाल, चुलबुला, बाल की खाल निकालने वाला है। उतना ही टिंकू शांत, सौम्य। पूजा के तख्त पर ऊनी कम्बल डाले बाऊजी के पास टिंकू बहुत देर से बैठा नानाजी के सब क्रिया-कलाप गम्भीरता से देख-समझ रहा था। बाल सुलभ जिज्ञासा भी शांत करता जा रहा था। बाऊजी बाल भगवान की छोटी-छोटी कथाएं सुना रहे थे। बाऊजी पूजा के मामले में सफाई पसंद हैं। जूठे-गंदे हाथों से पूजा-अर्चना की चीज़ छूना उन्हें पसन्द नहीं था। पर धेवतों पर विशेष स्नेह के कारण सीमा ढीली थी। क्योंकि उनके लिए कन्या लक्ष्मी, बाप को प्रतिष्ठा देने वाली थी। हमारे परिवार में लड़कियों का बहुत मान-सम्मान रहा—इसीलिए लड़कियों के बच्चों को बहुत अधिकार मिला हुआ था, पूजा के कमरे में जाकर उनकी चीज़ें छूने का।

रिंकू ने भगवानजी को नहलाते समय बाऊजी से पूछा था, 'नानाजी, यह कौन है, एक खिलौना मैं ले लूं।' कहकर हाथ बढ़ाया था। 'नहीं-नहीं, छूते नहीं। यह भगवानजी हैं। इनकी पूजा होती है।' 'पर यह तो बन्दर की शक्ल है!' घुटने मुड़े सालिगराम को देख रिंकू हंस पड़ा था।

दूसरे छोर पर बने रसोईघर में मां के पास बैठी मैं चाय पी रही थी, बाऊजी और रिंकू की बात सुन कान खड़े हो गये थे। मैं जानती थी बाऊजी को क्रोध में लाने के लिए इतना ही काफी है। उनके भगवानजी का उपहास करना या उनकी अंधी श्रद्धा के खिलाफ चुटकी लेना उन्हें पसंद नहीं था। पर पता नहीं क्यों बाऊजी शांत रहे। मैंने रिंकू को अनाप-शनाप बोलते आवाज़ दी।

'मैं नहीं आता। नानाजी के पास बैठूंगा। नानाजी परसाद देते हैं।' 'बैठा रहने दे। क्यों बुला रही है। बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं।' सुन मैं चकित रह गयी थी। कितने शांत हो गये हैं बाऊजी। रिंकू तो उनका वैसे ही लाड़ला था। १५ वर्ष बाद वे नाना बने थे।

अपने लहू पर उन्होंने कभी रियायत नहीं की थी, अपने ठाकुरजी के खिलाफ बोलने पर।

एक शाम की संयुक्त आरती में राजू महज़ इसलिये शामिल नहीं हुआ था। पूजा-अर्चना-ईश्वर राजू के विश्वास के परे की चीज़ थी। बहाना बनाया पेपर की तैयारी का। उस दिन शंखनाद न हुआ; क्योंकि राजू ही शंख बजाता था। भानू मंजीरे। छोटा घड़ियाल शानू। आरती सदा मुझे ही थामनी पड़ती, पहले यह काम बाऊजी ही करते थे। किन्तु एक दिन पैर में दर्द के कारण बाऊजी ने यह दायित्व मुझे सौंप दिया। दोनों हाथ विपरीत क्रिया के अभ्यस्त नहीं थे। और पीछे से भान या राजू कुछ बोल देते-हंसी आती, हाथ डगमगाते। कभी बायें हाथ में थामी घंटी बजते-बजते रुक जाती, तो कभी दायें हाथ में तीन ज्योति वाला चांदी का स्टैण्ड थामे मेरा हाथ टेढ़ा हो जाने पर जलते दीपक से घी बह निकलता या हाथ गोल वृत्ताकार में घूमने से इन्कार कर बैठते। आरती प्रकरण पूरे आध घंटे तक चलता। भुजाएं दर्द करने लगतीं। मैं पल-पल आरती की समाप्ति मनाने लगी। आरती करते बीच में बोलना, रुकना, हंसना सख्त मना था। एकदम निषेध था। बाऊजी ने देख लिया कि मैं ठीक से आरती में हाथ घुमा नहीं पा रही हूं। पूजा-समाप्ति पर बाऊजी ने ऐलान किया-आज से वृन्दा आरती नहीं करेगी। इसको आरती करनी नहीं आती। ब्राह्मण की बेटी होकर पूजा-अर्चना में रुचि नहीं रखती है। यह सजा काफी तकलीफ़देह थी। दोनों वक्त दीपक जले हमें सबसे पहले पूजा के कमरे की बत्ती जला भगवान के हाथ जोड़ बड़ों से राम-राम करनी पड़ती। दादी लालटेन जला हाथ जोड़ती थीं। अब तो पूजाघर की बिजली का स्विच ऑन करते हंसी फूटती। दिन-भर कितनी बार तो जलती-बुझती है यह बिजली। सांझ को जले तो 'राम-राम' की क्या तुक। हम मन में उठती हंसी को थामे रह जाते।
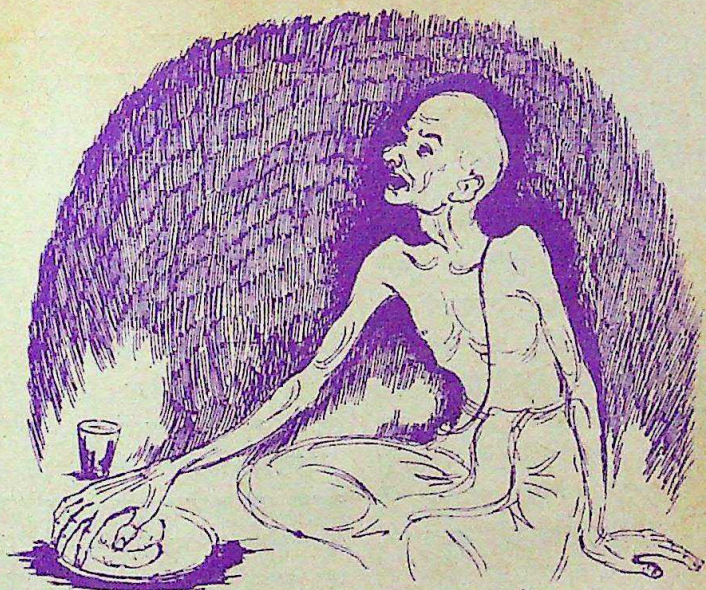
हर रोज़ आपस में झगड़ा होता-

मेरा घंटा-घड़ियाल बजा देना। तू आज मेरा शंख।' मंजीरे के लिए भानू भी टालता। पर कामयाबी नहीं मिलती। दीपक-बाती के समय बाऊजी आवाज देते–'चलो सब, आरती का समय हो गया।' मैं तो रुई की कमल वाली बत्ती मां से बनवाकर घी में डुबोकर तैयार रखती। जानती थी मुझे इससे छुटकारा नहीं।

बस बाऊजी के सब नियमों में केवल यही नियम, बंधन बहुत कठोर लगता था हमें। मन करता कह दूं, इस नियम में कुछ ढील दें।

पीछे-पीछे मौका देख हम सब भाई-बहन एक साथ बैठ पूजा-आस्था की खिल्ली उड़ा लेते। पर बाऊजी–बाप रे! जहां उनकी खड़ाऊं की आवाज़, भजन की गुनगुनाहट सुनाई पड़ जाती या परछाईं दिख जाती, सांप सूंघ जाता। बड़ों के प्रति सम्मान भाव कूट-कूट कर भरा था, इसीलिये विचार-विरोध भी प्रकट नहीं कर पाते।

०००

उस दिन राजू को पता न था कि बाऊजी संध्या-वंदन कर, चौके में जा चुके हैं। हम सब चर्चा पुराण-विज्ञान पर कर रहे थे। ईश्वर की मान्यताओं के विरोधी राजू ने बड़ी लय में इठलाकर कहा था, 'यह मन्दिरों में गुरुघंटाल, लाउडस्पीकर पर ढोल-मंजीरे बजाकर इतना शोर मचाते हैं, जैसे इनके भगवान बहरे हैं। क्या होता है इन ढकोसलों को करने से? सब बेकार की बातें हैं। इसी चलती चर्चा

को शानू, मीनू ने आगे बढ़ाया था, अपने तर्क देकर।

मां ने बाद में बताया था कि राजू का विषभरा विरोध भोग लगाते बाऊजी के कानों में पड़ा था। तुनतुनाये तो वे तभी थे, पर मजबूर थे। चौके की रोटी खाते बीच में उठकर बाहर नहीं आ सकते थे। नियम उनके लिए भी अनिवार्य थे। भोजन दो रोटी में खत्म कर कुश का आसन बगल में दबा, घुण्डीदार खड़ाऊं पहन, हाथ में पीतल का ठाकुरजी का सिंहासन लिये पहले राजू के कमरे के दरवाज़े पर ठहर हम सबको आग्नेय नेत्रों से उन्होंने घूरा। इतना ही बहुत था, भूकम्प की तैयारी के लिए।

तीनों भाई जानते थे, दीदी पर यानी मुझ पर बाऊजी हाथ नहीं उठायेंगे, क्योंकि वह बेटी को मारना पाप समझते हैं। तीनों अपनी-अपनी मार से भयभीत खिसक लिये। उस समय तो बाऊजी ने कुछ न कहा, आफिस को देर हो रही थी।

धोती-कमीज़ उतार जब पैन्ट-कमीज़, खड़ाऊं की जगह चमचमाते जूते, सिर पर खाकी रंग का हैट पहने बाऊजी को देख कौन कह सकता था ये वही चन्द मिनट पहले सीधे, सरल पहनावे वाले सात्विक पुरुष हैं। यह दोहरा व्यक्तित्व भी उन पर खूब खिलता था। अंग्रेजों के ज़माने में नौकरी कर, बाऊजी ने दो बातें गुनी थीं— अनुशासन व समय की पाबंदी। जहां वे एक ओर हिंदी, संस्कृत के दुर्लभ गूढ़ ग्रंथों का स्पष्ट स्वर में अध्ययन करते, वहां उनका अंग्रेजी का व्यापक ज्ञान देख सब दंग रह जाते।

आज भी पोतों को वे अंग्रेजी बेटों से ज़्यादा अच्छी तरह समझा देते हैं।

पूर्व-पश्चिम सभ्यता के संगम के प्रतीक बाऊजी अब सिमट कर एक व्यक्तित्व मात्र रह गये हैं। शून्य में घिरा पाते हैं वे अपने को। कितने शांत, शीतल हो गये हैं इनके जज़्बात। समय की मांग को देख समझौता कर लिया है उन्होंने।

रूखा-सूखा-बासी कैसा दे दो, चुपचाप तुलसी पत्र डाल ठाकुरजी का भोग लगा खा लेते हैं। कहते हैं 'जब मेरे भगवान ने खा लिया, मुझे अब क्या नुकसान देगा। मेरे लिए तो अमृत बन गया।'

भानू की बहू एक बार सब्जी में नमक डालना भूल गयी। पहली थाली नियम-पूर्वक बाऊजी के ठाकुरजी का भोग लगाने रख आयी। तुलसी-दल की पत्तियां सब्जी-पराठों, में डाल 'ओऽम ब्रह्मा, ब्रह्मा, विष्णु,.....' प्रभु को भोजन के चंद कण अर्पित कर उन्होंने भोजन ग्रहण कर लिया। बाद में राजू ने अपने कमरे से कहा था—'भाभी, सब्जी में नमक नहीं है बाबूजी को दे आना।' पर बाऊजी तब तक भोजन कर चुके थे।

रश्मि कहती, 'पहले बाऊजी को भोजन कराना बेकार है, पता ही नहीं चलता कैसी दाल-सब्ज़ी बनी है, कुछ बताते ही नहीं।'

०००

इससे भी कहीं अधिक सात्विक ठंडे बन गये हैं वे बेटे-बहू के राज में। उस रोज़ मुझे अचानक आया देख भोजन करते बाऊजी हकबका गये थे। सकपकाये से मेरी ही ओर घूरे जा रहे थे। 'अरे तू वृन्दा बेटी, आज अचानक कैसे आ गयी? तेरी मां तो राजू के पास गयी है... आ, बैठ। भीतर से मुंढा ले आ।' मेरे भीतर मुड़ते ही उन्होंने थाली में रखी रोटियां छिपाने की चेष्टा की थी। मैं समझ रही थी, बाऊजी मुझे क्यों चन्द पल के लिए इधर-उधर करना चाहते हैं। बेटे-बहू की फेंकी सूखी रोटियां न देख लूं। दर्द से अभिभूत तो हुई थी। बाऊजी की आंखों में क्या पीड़ा थी, बोलना चाहकर भी न कह पाये।

बाऊजी को अपने संग ले जाऊंगी यही सोच कर आयी थी। पर बाऊजी तैयार नहीं बेटी के घर जाकर नरकवासी बनने को। बाऊजी को रश्मि के सहारे छोड़ जाना मेरे अन्तस को एक बेटी की ममता को रुलाता है।

बाऊजी की थाली में रखी पतली-पतली सूखी रोटियां सूखी मूली की भाजी, बिना दांतोंवाले बाऊजी कैसे निगलेंगे? रश्मि ने यह नहीं सोचा था।

हां, भानू तो सोच सकता था, वृद्ध आदमी कैसे भोजन कर सकता है। तभी भानू के बड़े लड़के ने ऊपर से पूछा था, 'बाबा, रोटी और बनायें, एक कटोरी आटे की तुम्हारी रोटियां बन गयी हैं।'

मैं बाऊजी की भयाक्रान्त स्थिति का कारण समझ गयी थी। ओह, अब रश्मि और भानू इतने गिर गये हैं! बाप को खिलाने के लिए उससे आटा, सब्जी लेते हैं। एक बाप छः बच्चों को पाल सकता है। इतनी औलाद एक बाप को अपनी कमाई नहीं खिला सकती! वाह क्या वक्त का रंग है!

बाऊजी ने बात को घुमाते हुए कहा, 'घी खत्म हो गया होगा भानू के यहां, इसी से रश्मि ने रोटियां चुपड़ीं नहीं, वैसे वह रोज़ चुपड़कर मुलायम रोटियां भेजती है। वह बहुत सेवा करती है मेरी। खूब ध्यान रखती है। सूखी सब्जी मैंने ही बनवाई थी। रोज तर सब्जी खाते-खाते मन अजीब-सा हो गया था।' मुझे पता था बाऊजी साफ झूठ बोल रहे थे। भानू कभी एक सूखी सब्जी से भोजन नहीं करता, जब तक रसेदार सब्जी न हो। आज भी जरूर तर सब्जी बनी होगी अन्दर।

पर बाऊजी उम्र के इस मुकाम पर आकर अतिरिक्त जीव मात्र हैं। 'क्या ज़रूरी है चौके की सब चीज़ें देना उन्हें।' एक दिन बाबा के लिए मां की गैरहाज़िरी में रश्मि ने कहा था—सुनते ही मुझे धक्का लगा था।

जब भोंदू बाऊजी के बर्तन लेने नीचे आया था, मुझे देख खिल उठा। 'वाह, बुआजी, आयी हैं।' मुझसे प्यार से लिपट गया। कुछ क्षण को रश्मि और भानू के

लिए सोचे कुविचार छूमन्तर हो गये। भोंदू की चहकती आवाज सुन छत पर खेलती पिंकी, टीनू भी छत से झांक अपनी मां को मेरे आने की सूचना देने भाग गये। थोड़ी देर में ही भानू और रश्मि नीचे उतर आये। भानू मेरा बहुत सम्मान करता, पता नहीं क्यों। शायद उसकी जीजी बहुत उच्च परिवार से सम्बन्ध रखती है। जब-तब सहायता मिल सकती है, या बचपन का स्नेह, जो शादी की दराती तले कटा नहीं। उस समय बाऊजी की आंखों में छिपा सैलाब फिर घूम गया जब मैं पहला कौर तोड़ मटर-पनीर की तर सब्ज़ी देख ठिठक गयी थी। तो बाऊजी को यह सब्ज़ी इसलिये नहीं दी गयी; क्योंकि इस सब्ज़ी के खरीदने में बाबूजी का कोई योगदान नहीं था। बाऊजी ने १० पैसे की मूली सड़क पर ठेला लिये घूमते सब्ज़ीवाले से खरीद अपनी सब्ज़ी के लिये दे दी थी। क्योंकि बाऊजी ने घी नहीं दिया था, इसी से रोटी नहीं चुपड़ी थी रश्मि ने। सीधे-सादे बाऊजी कुछ भी खा लेते है उसका यह मतलब तो नहीं कि कैसा भी उनके सामने फेंक दो और वे अपने भगवानजी को भोग लगा सटक जायेंगे। बेटी का खाकर नरकगामी बन जायेंगे तभी वे मेरे साथ नहीं जाते। पर यहां भी बाऊजी बेटे का खा रहे हैं।

शाम को पिंकी जब बाऊजी से रोटी बनाने को आटा लेने आयी तो मैंने टोक दिया था कटोरा भर आटा देते बाऊजी को। 'नहीं, बाऊजी, आज मैं खाना पकाऊंगी' कह पिंकी को लौटा दिया। रश्मि ने नीचे उतरकर सहानुभूति दर्शाते हुए कहा, 'दीदी, परेशान क्यों होती हो, थकी-हारी हो। तुम तो हमारी मेहमान हो।' मेरे विरोध करने पर वह मान गयी।

'बाऊजी, आज आप क्या खायेंगे?' मां को राजू के पास गये १५ दिन हो गये थे। मेरे इतना कहने से बाऊजी रो पड़े थे। 'बेटी, अब क्या खाना है, अब तो बुढ़ापा खा रहा है मुझे! बेटी, अब यह रोटी मेरे पेट में चुभती है। तेरी मां की रोटी खाकर कभी पेट में दर्द नहीं हुआ, न कभी उकताहट हुई। अब क्या है...'

बाऊजी का दर्द फूट रहा था। सारे समय अकेले पड़े कल्याण, भागवत में लगे रहते हैं। ज़िन्दगी बोझ बन गयी थी उनके लिए। मां ने अपने पत्र में ठीक लिखा था कि 'बाऊजी को किसी तरह अपने साथ ले जाइयो, बेटी। वह वहां भूखे न रहेंगे। मेरे बिना अब बहुत टूट गये हैं तेरे बाऊजी। अब वह पहले जैसे तेज़-तर्रार नहीं रहे। बात-बात पर बच्चों की तरह निराश हो जाते हैं।' बाऊजी मेरे साथ चलने को तैयार नहीं। मैंने स्वयं रहने का फैसला कर लिया। महीने-भर की बात थी। भोपाल अपने न आने का तार मैंने शाम को ही करवा दिया था। मां के आने तक मैं बाऊजी को रोटी

ग़ज़ल

ज्यों ताज की छाया में मुमताज का चेहरा है
ग़ज़लों में हमारी भी हमराज का चेहरा है
वो जान नहीं पाये किस साज का चेहरा है
हर शब्द मेरे दिल की आवाज का चेहरा है।

इस दिल की अंगूठी में सब ही ने पढ़ा पत्थर
कोई न यह पहचाना पुखराज का चेहरा है।
अब सोच रहे हैं हम दुख किससे कहा जाय
हर चेहरा नये दुख के आगाज़ का चेहरा है।

यह कौन परिंदा जो आया है मुंडेरी पर
कुछ तो है कबूतर का कुछ बाज का चेहरा है
इन्सान का चेहरा यह कल और भी बदलेगा
देखा जो 'कुंअर' तुमने वो आज का चेहरा है

— कुंवर बेचैन
२ एफ-५१ नेहरू नगर, गाजियाबाद

बना कर दूंगी, भानू की रसोई से बढ़िया।

तरह-तरह के पुराने नये मीनू दिमाग में तैयार करती मैं सो गयी थी। आंख खुली। वही पुरानी चिरपरिचित आवाज़ 'शान्ताकारम्, भुजगशयनम् पद्मनाभम् सुरेशम्।' पर, आज की आवाज़ कितनी खरखरी कफ से अटी पड़ी थी। गले से भर्राया स्वर था। वह शुद्ध स्पष्ट पैना स्वर अब खो गया है! उसी पैने स्वर को सुन प्रातः दूर तक के मकानवाले जाग जाते, कहते—'पं. वासुदेवजी जाग गये हैं, पूजा कर रहे हैं। सुबह हो गयी।' अब पूजा की कोठरी से साफ शब्द नहीं सुने जा सकते। भजन का क्रम कितनी बार टूट-टूट जाता है। आज बाऊजी ने मुझे सोते से नहीं जगाया। कितने जुड़ गये हैं अपने प्रभु से वे। इसी में मगन रहते हैं, वरना पहले-सा गुमान होता तो बाऊजी कहते, 'बेटा जब घर में पूजा होती है तो लेटना नहीं चाहिये। अजगर बन जाते हैं।' नन्ही बुद्धि वाले हम लोग अजगर की भयानकता से परिचित तुरंत उठ बैठते। भानू के तीनों बच्चे आरती के बाद मिलने वाले प्रसाद के लालचवश नीचे उतर आते हैं।

चाय बना मैंने बाऊजी को दी।

तुरंत तुलसीदल तोड़, वे अपने प्रभु को भोग लगाने चल दिये। मैं भूल गयी— परिवार में यह नियम था कि घर में कुछ भी बने, कितनी बार भी, पहले भगवानजी को भोग लगेगा। पर मैंने बाऊजी की चाय से पहले एक कप चाय पी ली थी। बचपन के संस्कार सारे भुला दिये भौतिक सुख ने। अब क्या हो सकता था! केवल बाऊजी के प्रभु से मन ही मन चाय जूठी करने की माफी मांग ली।

तीन-चार दिन बाऊजी के पास रहकर बड़े अच्छे गुजरे। फिर से वही भूला-बिसरा वातावरण मिलने लगा। बचपन की तमाम बातें कुलबुलाने लगीं। यहां आकर सबसे अधिक सुख-शान्ति मुझे मिली। बाऊजी भी खुश थे। उनको भरपेट गर्म भोजन मिल रहा था। समय पर सब कुछ चल रहा था।

अचानक पांचवें रोज़ सोमेश मुझे लेने आ पहुंचे। देखते ही दिल को धक्का लगा मुझे। बाऊजी को भी। पहली बार बुरा लगा मुझे सोमेश का लिवा ले जाना। बाऊजी को छोड़ चली जाऊंगी तो इनकी कौन देखभाल करेगा? मां भी नहीं हैं। अपने को सौभाग्यशाली समझ रही थी बाऊजी के पास रहकर। उनके आखिरी समय के प्यार आशीष से अपनी झोली भर लेना चाहती थी।

दरवाज़े पर सोमेश की आवाज सुन रोटी पलटते गर्म तवे से मेरी उंगलियां झुलस गयी थीं। रसोईघर में मुझे कार्यरत देख गहरी मज़ाक उड़ाती मुस्कराहट उन्होंने फेंकी थी—'क्यों ... तो यह ठाठ है यहां। भोपाल में तो दो-दो, तीन-तीन नौकरों पर हुक्म चलाती हो, यहां यह इतनी कड़ी मेहनत ...'

मैंने चौंकते हुए यकायक कह डाला 'मैंने तो एक महीने तक न आने का तार कर दिया था, फिर कैसे ...?'

'क्यों क्या मुझे नहीं आना चाहिये? तुम्हें बुरा लगा है क्या?'

'नहीं, यह बात नहीं, तार मिला था या नहीं?' मैं सोमेश के बदलते रुख से सकपका गयी।

'मिला था ... पर करने से क्या होता है! अपनी जिम्मेदारी भी तो सोचनी चाहिये तुम्हें। वहां सब अस्त-व्यस्त है। वहां कौन देखेगा मेरी परेशानियों को? तुम तो यहां आकर बैठ गयीं। फटाफट जल्दी तैयार हो जाओ।'

बेटी की जात कितनी बेबस, कितनी पराधीन है। यह अब जाना। वह मां बाप की सेवा की हकदार नहीं बन सकती। बिकी हुई वस्तु की तरह उसके अन्दर जज़्बातों को भी खरीद लिया जाता है। मां-बाप की जायदाद में बेटी हकदार बन गयी, जिसका लाभ उसके खरीदार को मिला, पर बेटे के समान उनकी असहाय पीड़ित अवस्था में सेवा का दायित्व नहीं अपने घर रखने का कर्तव्य केवल बेटे पर ही आश्रित है। वे चाहे शोषण करें या पोषण, सब प्रभु के आधीन।

'बाऊजी, मैं जाऊं ?' मेरे मुख से यह शब्द पूरे नहीं निकल रहे थे। आंखों के जल से भीग गये।

'बेटी, क्यों दुखी होती है। मैं ठीक हूं। जा बेटा, अपने घर जा, सुखी रह। सोमेश पर गुस्सा न कर। मेरा क्या है, मैं तो प्रभु के आधीन हूं। जैसी अपनी थोड़ी-सी जिन्दगानी है, बहू-बेटों की दया पर कट जायेगी। बेटी तो परायी है। तू इतना प्यार मत दे, बेटी। अब जी ज़्यादा दुखता है... कुछ दिन की बात है तेरी मां आ जायेगी...' बाऊजी अपने सजल नेत्रों को छिपाने पूजाघर में घुस गये थे। भीतर से पट बन्द कर पूजा में लीन हो गये।

चलते-चलते मैंने कहा था, 'बाऊजी, मां को जल्दी बुला लेना।' पर बाऊजी 'हूं' कहकर रह गये। रश्मि की ओर देखा। लगा मानो कह रही हो, 'बाप की सेवा कर बड़ा लाड बरसा रही थी... कितने दिन कर ली सेवा! आखिर करनी तो हमें ही है, इनकी तीमारदारी!' अपने उतावलेपन पर मैं स्वयं शर्मिन्दा हुई। क्या फायदा रहा.. अन्त में वही रश्मि की पतली-रूखी कड़ी रोटियों के टुकड़े मिलने हैं! अब फिर वही सिलसिला बन जायेगा। बाऊजी एक कटोरा आटा भेजेंगे, सब्ज़ी भेजेंगे, तब कहीं भोजन मिलेगा पका-पकाया बहू के हाथ का।

मां दूसरे बेटे के पास है। सामाजिकता के नाते बीच में आने से बेबस। कितनी लाचारियां हैं सबके आगे। बाऊजी कितने शांत-उदार हैं। कभी किसी को व्यक्तिगत दोष नहीं देते। हर काम के करने, बिगड़ने पर दोष प्रभु पर थोप देते हैं—'सब कुछ प्रभु के आधीन है। वही नचाता है। हम तो मात्र कठपुतली हैं।' पर मुझे लग रहा है, हम सब उसके आधीन नहीं, विवशता और परिस्थितियों के आधीन हैं—जैसे मैं सोमेश के आधीन हूं, भानू रश्मि के, मां बेटों के। अकेले बाऊजी ही अपने प्रभु के आधीन लगते हैं, भजन-कीर्तन के आधीन।

—२९० कृष्णा नगर, बुलन्दशहर, उ. प्र.

□

प्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक, ओरेस्टर ब्राउंसन ने अपने जीवन में कई धर्मों को अपनाया था। अंत में, जब उन्होंने कैथोलिक धर्म स्वीकार किया, तो उनके मित्रों को बड़ी हैरानी हुई।

एक दिन कुछ मित्रों ने उनसे मिलने पर पूछा,' अब इसके बाद आप कहां छलांग लगायेंगे ?'

ब्राउंसन ने उनके व्यंग्य को नज़रअंदाज़ करते हुए गंभीरता से कहा, 'इसके पहले मुझे कोई ऐसी ठोस जगह नहीं मिली थी, जिस पर कि मैं जमकर खड़ा हो सकता। अब मेरे कदम क्योंकि 'पीटर' की चट्टान पर टिक गये हैं, मुझे और कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है।'

□

योगविद्या के चमत्कार

□

महावीर सैनिक

वय ४० वर्ष, संपन्न व्यवसायी, भरा-पूरा घर-परिवार। हर रोज ३०-४० दस्त, आल्सरेटेड कोलाइटिस थी उन्हें। पेट में पीड़ा, निरंतर बढ़ती कमज़ोरी। डेढ़ वर्ष हो चला था। विशेषज्ञों के उपचार विफल रहे। निरुत्साहित हो चले थे। एक अत्यंत सरल, सहज, सुखद अभ्यास का समारंभ हुआ और वे उसी रोज़ ठीक हो गये स्थायी रूप से।

विशेष वरीयता प्राप्त प्रतिभाशाली छात्रा, वय २२ वर्ष। अति संवेदनशील भावुक मन। कलाकार हृदय। बच्चों-सा निर्मल स्वभाव। अध्यात्म की तरफ गहरा झुकाव। तो भी कई तकलीफें थीं उन्हें—मासिक धर्म के समय पीड़ा, सदैव बनी रहनेवाली कोष्ठबद्धता, अपचन, गैस, अम्लता, कमजोरी, व स्नावयिक तनाव भी। मनोकायिक अभ्यास किया। प्रथम सप्ताह में ही सभी तकलीफें गायब।

उच्च शिक्षा प्राप्त ४० वर्षीया, सामाजिक कार्यकर्ता—एक गृहिणी, शरीरसौष्ठव, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता। तो भी लगभग हमेशा बना रहने वाला सिरदर्द, अम्लता व गैस। रोग पहले ही रोज़ समाप्त। उसी अभ्यास का प्रतिफल।

ऐसी घटनाएं अपने शिक्षण-सत्रों में आये दिन होती देखता हूं। जो भी व्यक्ति वांछित सजगता, अंतर्मुखता व एकाग्रता से अभ्यास करने को मानसिक रूप से तत्पर रहता है, उसे लाभ के लिए बहुधा तो अगले दिन की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

यह अतिप्रभावी मनोकायिक अभ्यास है—योगेन्द्र प्राणायाम नं. ४ या डायफ्रामेटिक ब्रीदिंग (मध्यपट श्वसन)

क्या है यह अभ्यास ?

गुरुदेव योगेन्द्रजी, संस्थापक 'दि योग इन्स्टीटयूट', सांताक्रुज, बम्बई ने इस अभ्यास का सृजन किया है। व्युत्पत्ति के आधार पर : प्राण + आयाम = प्राणायाम। हमारी समस्त शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि ऊर्जाओं का कुल योग है = प्राण, एवं आयाम के अंतर्गत हैं— **संचय**, नियमन व नियंत्रण। अतः प्राणायाम का अर्थ हुआ—प्राण-शक्ति का संचय, नियमन एवं नियंत्रण।

संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त प्राण-शक्ति को ग्रहण करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत हमारा श्वसन संस्थान है। श्वसन संस्थान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग डायफ्राम-मध्यपट को अधिक लचीला, सशक्त व प्रभावी बनाना, इस अभ्यास का मुख्य

उद्देश्य है। सांस को माध्यम बनाकर अपने व्यक्तित्व को सजग, स्फूर्त, सजीव एवं सप्राण करके साधना के मार्ग पर अग्रसर होना इसका अगला कदम है।

अभ्यास की विधि

स्थिति : किसी भी अपेक्षाकृत शांत, एकांत, स्वच्छ, खुले हवादार स्थान पर जो हवा के सीधे तेज झोंकों से भी मुक्त हो, पीठ के बल चटाई, कंबल, दरी आदि किसी पर भी लेट जायें। सिर उत्तर व पैर दक्षिण दिशा में हों तो पृथ्वी का चुंबकीय बल अनुकूल दिशा में होने से अंतर्मुखता लाने में सहायक होगा। मल-मूत्र विसर्जन के बाद खाली पेट, हाथ-मुंह आदि धोकर अगरबत्ती, धूप आदि जलाकर लेटें, तो और भी सुविधा होगी। टांगों को घुटनों से मोड़, सहजता से संभव हो तो एड़ियां नितंबों से छू लें। घुटने चाहे परस्पर जुड़े हों या न हों, एक हाथ, नाभि पर हो व दूसरा हाथ पार्श्व में धड़ से १०-१२ इंच की दूरी पर हथेली ऊपर करके सीधा फैला हो। सम्पूर्ण देह को अधिकतम आरामदेह स्थिति में व्यवस्थित कर लें, तदनंतर सारे भागों को बिल्कुल ढीला छोड़ दें।

प्रथम चरण : छाती के किसी भी भाग में हलचल किये बिना सांस लेना, निकालना है। केवल डायफ्राम या मध्यपट का ही इसमें उपयोग होता है, फेफड़ों के ऊपरी भागों का नहीं। एक-सी गति से लंबा धीमा श्वास सहजता से भरें, पेट स्वतः
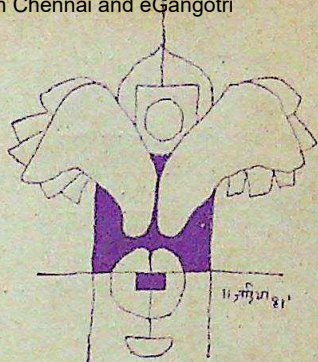
चित्र : संतोष जड़िया

जितना फूलता है, फूलने दें, कोई सक्रिय प्रयास न हो। तब बिना रुके उसी गति से पूरी सांस बाहर निकालें। पेट को भीतर सिकोड़ने का थोड़ा-सा प्रयास किया जाये ताकि फेफड़ों में बिल्कुल रिक्तता (वैक्यूम) ला सकें। सांस व पेट की गति में समरसता बनी रहे, किंचित मात्र भी झटका न लगे। अपने पूरे अस्तित्व को भुलाकर हम केवल मात्र पेट भर रह गये हैं, ऐसा अनुभव करने पर अधिक सफलता मिल सकेगी। ध्यान हटे नहीं, इसके लिए ऐसा भी कर सकते हैं कि अभ्यास की आवृत्ति को उल्टी दिशा में गिनें यथा २५-२४-२३। सांस रोकें नहीं अर्थात् कुंभक न करें।

द्वितीय चरण : इसमें सांस की गति सामान्य रहे। प्रारंभ में पेट के सारे भागों जैसे—यकृत, आमाशय, बड़ी व छोटी आंतें, गुर्दे, मलाशय, मूत्राशय एवं जननेंद्रियों आदि के बारे में सजग हों। तब

नाभि के ठीक नीचे रक्ताभिसरण से होने वाली नब्ज़ की तरह की गति पर अपनी चेतना को एकाग्र करें। एक-एक धड़कन को अलग-अलग अनुभव करें। इसके बाद प्रत्येक धड़कन में रक्त-दाब के बदलाव से जो उतार-चढ़ाव आते हैं, उसी में लीन होते चले जायें।

जब यह सहजता से होने लगे, तब नाभि की सीध में मेरुदंड में अपनी संपूर्ण चेतना को ले जायें। वहीं से सांस ले रहे हैं, निकाल रहे हैं, ऐसा प्रतीत हो। गुरुप्रदत्त मंत्र का सांस के साथ जाप जारी रहे तो और भी उत्तम है। मानसिक प्रयास, सजगता, एकाग्रता, अंतर्मुखता निरंतर बढ़ाते चले जायें। इसी बिंदु पर हमारी सारी प्राण-शक्ति का भंडारगृह—मणिपुर-चक्र स्थित है। जब हम इस संचित प्राण-राशि में कुछ भी अतिरिक्त जोड़ पायेंगे तो हमारा संपूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होगा।

प्रथम चरण की ४-६ माह साधना कर चुकने पर, स्वस्थ व सात्विक संस्कारों वाले व्यक्ति ही दूसरे चरण का अभ्यास करें।

समयावधि व आवृत्ति : प्रथम चरण की लगभग २५ आवृत्तियां काफी होंगी। अशक्त व रोगी व्यक्ति १० आवृत्तियों से प्रारंभ कर सकते हैं। प्रातःकाल व सायंकाल दोनों समय अभ्यास करें तो और भी अच्छा है। निरंतर शनैः- शनैः बढ़ाकर आवृत्ति लगभग ५० तक कर सकते हैं। यदि साथ में प्राणायाम के अन्य अभ्यास भी कर रहे हों तो तदनुसार आवृत्ति में कमी कर लें।

द्वितीय चरण का अभ्यास प्रारंभ में लगभग १० मिनट करें, क्रमशः बढ़ाकर लगभग ३० मिनट तक ले जा सकते हैं।

विशेष : दमा के जिन रोगियों को लेटकर अभ्यास करने में असुविधा हो, वे संभव हो सके तो वज्रासन में या फिर सुखपूर्वक मेरुदंड सीधा रखकर आसन या कुर्सी पर बैठकर अभ्यास कर सकते हैं। अच्छे अभ्यासी प्रातः व सायंकालीन भ्रमण के समय चलते-फिरते भी यह अभ्यास सहजता से कर लेते हैं।

हृदयरोगी, अल्सर व हार्निया के रोगी प्रथम चरण में गहरी सांस न लें, न उदरांगों को संकोच ही दें, यदि उनके चिकित्सक की सहमति हो तो ही सहज सांस के साथ अभ्यास कर सकते हैं।

संभावित लाभ क्या हैं ?

सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों को–

१. मध्यपट (डायफ्राम) का लचीला व सक्षम होना, फलतः श्वास-धारक क्षमता का विकास, दीर्घायु प्राप्ति, स्वतः रोग प्रतिकार क्षमता में वृद्धि, जागरूकता में बढ़ोतरी व प्राण-शक्ति का भंडारण।

२. श्वसन की ठीक पद्धति का अभ्यास, कि सांस लेने के साथ उदर बाहर व सांस बाहर निकालने के साथ उदर भीतर जाये। सामान्यतः हम सभी लोग इससे ठीक विपरीत बिल्कुल गलत तरीके से

सांस लेते हैं।

३. हाइपोथैलमस (द्वितीय मस्तिष्क) पर अच्छा प्रभाव, अतः भावनात्मक संतुलन, पाचन व उत्सर्जन संस्थानों पर अनुकूल प्रभाव। सम्यक् मल-मूत्र निष्कासन प्रवृत्ति।

४. गहन शिथिलीकरण की प्राप्ति।

५. मानसिक शांति एवं आनंद की अनुभूति, नाड़ी-मंडलीय शक्ति व शुद्धता की प्राप्ति।

६. कटिप्रदेश के अतिरिक्त मेदे को कम करना। समस्त कटिप्रदेश की मृदु मालिश, अतः समस्त अंगों की क्रियाशीलता।

अस्वस्थ व्यक्तियों को–

१. जठराग्नि बढ़ना, अपच, अम्लता व गैस आदि से मुक्ति।

२. उत्सर्जन संस्थान से संबंधित समस्त रोग : कोष्ठबद्धता, आंव, दस्त लगना आदि से छुटकारा।

३. मानसिक तनाव व उससे जनित सारे रोगों यथा–सिरदर्द, आधाशीशी, साइनोसाइटिस, अनिद्रा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, दमा आदि में विशेष लाभ।

४. मासिक धर्म से संबंधित समस्त तकलीफों व प्रदर आदि में लाभ।

५. स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि में लाभप्रद व वीर्यरक्षा में सहायक।

६. समस्त अंतःस्रावी ग्रंथियों पर अनुकूल प्रभाव।

साधकों के लिए –

१. पाचन एवं उत्सर्जन संस्थान पर बेहतर व ऐच्छिक नियंत्रण, उन्हें निर्देश देकर इच्छानुसार संचालित करने की क्षमता प्राप्त करना।

२. प्राणशक्ति का उत्थान व संचय।

३. तमस् से क्रमशः रजस् व सत्व की तरफ बढ़ते जाना अर्थात् शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक आदि सभी स्तरों पर परिशोधन, अंततः संस्कार परिशोधन भी।

४. मणिपूर-चक्र जागरण में सहायक, जिसके जागरण से असामान्य शक्तियां व सिद्धियां मिल सकती हैं।

५. अश्विनी मुद्रा, मूलबंध, शक्ति-चालन, उड्यान, न्यौली, वज्रोली आदि अभ्यासों से होने वाले लाभ आंशिक रूप से लेकिन बहुत सहजता से सबको सुलभ।

६. बिना वस्ति-क्रिया के बड़ी आंतों व मलाशय की सफाई।

७. बिना आसन व न्यौली आदि शारीरिक अभ्यासों के केवल संकल्प-शक्ति से शंख प्रक्षालन करने में सहायक।

सहज, सरल, सामान्य-सा प्रतीत होने वाला अभ्यास हमें क्रमशः रोग निवृत्ति, स्वास्थ्य के पुनर्गठन, प्राण-शक्ति संचय व आध्यात्मिक साधना में प्रगति कराने में बहुत सहायक है। बिना किसी विशेष मानसिक प्रयास के स्वतः मानसिक तनाव कम होते जाना एवं विचार पद्धति व जीवन-दर्शन में विधेयक परिवर्तन लाना, इस अभ्यास की प्रमुख विशेषता है।

–प्रेमपुरी अध्यात्म विद्या भवन,
३६ ह्युजेज रोड, बंबई–७

□

सुनील कौशिश की हिन्दी कहानी

□

सही - गलत

केबिन का दरवाज़ा धकियाकर अन्दर घुसा तो एक नौजवान को सिन्हा साहब के सामने वाली कुर्सी पर बैठे पाया। पार्टी से संबधित वह फाइल लेकर मैं अंदर गया था, जिसकी सप्लाई का बड़ा आर्डर पिछले दिनों ही कम्पनी को मिला था। सामने बैठे उस युवक का रंग पक्का था। चेहरे पर फ्रेंचकट दाढ़ी थी। काली पैंट और शर्ट में वह काफी स्मार्ट लग रहा था। सिन्हा साहब काफी खुश नजर आ रहे थे। उन्होंने सिर उठाकर मुझे देखा, फिर उस युवक की तरफ इशारा करते हुए बोले–'मिस्टर शर्मा, इनसे मिलिये। ये हैं मिस्टर महेश। पालीवाल की जगह इन्हें रखा गया है। फिर उन्होंने मेरा परिचय कराते हुए उस युवक से कहा– 'महेशजी, ये हमारे शर्माजी हैं। सप्लाई का पूरा काम आप ही देख रहे हैं।'

मैंने आगे बढ़कर उस युवक से हाथ मिलाया। मुस्कराहट बिखेरने और हाथ मिलाने की रस्म अदा होने से पहले ही सिन्हा साहब ने मेरी ओर मुखातिब होते हुए कहा–'हां तो शर्माजी, कितना माल पैक हो चुका है इस आर्डर का?'

दरअसल होता यह था कि सुबह दफ्तर पहुंचने के बाद हम सब पिछले दिन के काम की प्रोग्रेस बताने और ताजा दिन के काम के बारे में ज़रूरी निर्देश लेने के लिए बारी-बारी से सिन्हा साहब की केबिन में घुसते थे। सिन्हा साहब का केबिन आधुनिक प्रकार की सभी चीजों से सुसज्जित था। मसलन बीचो-बीच बड़ी सी आलीशान टेबुल, नीचे फर्श पर महंगा कारपेट, दीवार घड़ी, पंखा, सफेद-लाल रंग के दो टेलीफोन। एयरकंडीशन अभी हाल ही में लगाया गया था। बाहर एक बड़ा-सा हाल था। उसी के एक कोने में पांच अदद मेज-कुर्सियां डलवा दी गयी थीं, जिन पर हम लोग बैठते थे। पांचों को सिन्हा साहब ने असिस्टेंट का खिताब बख्शा हुआ था यानी हम सब सिन्हा साहब के सहयोगी थे, मगर किसी की भी हैसियत एक क्लर्क से ज़्यादा नहीं थी।

चूंकि हम सहयोगी थे, इसलिये हमारा नाम रजिस्टर में नहीं चढ़ाया गया था। इसके दो लाभ हो सकते थे। एक तो हमें जब चाहें आसानी से नौकरी से निकाल

जा सकता था। दूसरे अतिरिक्त काम के लिए हम ओवरटाइम नहीं मांग सकते थे। साढ़े तीन सौ रुपये से लेकर पांच सौ रुपये पाने वाल हम पांच सहायकों को अतिरिक्त काम के एवज़ में कम्पनी चाय वगैरह पिलाकर हम पर अहसान करती थी।

क्लिफटन फर्नीचर कम्पनी, जैसा कि नाम से ही ज़ाहिर है फर्नीचर सप्लाई करने का धंधा करती थी। सिन्हा साहब कम्पनी के मालिक, मैनेजर, पार्टनर, डायरेक्टर सब कुछ अकेले ही। स्कूलों-कालेजों से लेकर सरकारी कार्यालयों तक की सप्लाई कम्पनी करती थी। डबल बेड सोफे, कुर्सियां, मेजें, डाइनिंग सैट से लेकर प्लेन टेबल और ड्रेसिंग ड्रेबुल तक बनाये जाते थे। मगर सिन्हा साहब सरकारी दफ्तरों की सप्लाई में ज़्यादा रुचि रखते थे। उसमें एक सबसे बड़ा लाभ यह रहता कि जितनी थर्ड क्लास लकड़ी होती, सब खपा दी जाती थी ऐसे आर्डरों में। दूसरे पेमेंट तुरंत मिल जाता था। थोड़ा अधिकारियों को कमीशन एडवांस ज़रूर देना होता था। बड़े आर्डर की सप्लाई के लिए कम्पनी छोटे सप्लायरों को अपनी लकड़ी देकर भी माल तैयार करवाती थी।

तैयार-शुदा माल को पैक कराने और आर्डरों से संबंधित पार्टियों से पत्रव्यवहार

करने का काम मेरे सुपुर्द था। मेरे सामने वाली टेबुल पर पालीवाल बैठता था, जिसकी जगह पर अब महेश की नियुक्ति हुई थी। माल को स्टेशन पर पहुंचाना, बिल बनाकर बिल्टियां संबंधित पार्टी को भिजवाना, कोटेशन्स भरना आदि कार्य वह करता था।

दो प्रकार की बिल-बुकें थीं, एक वे जिनमें बड़े आर्डर्स के बिल बनाये जाते थे। यह बिल-बुक सेल्सटैक्स विभाग को नहीं दिखायी जाती थी और ये रहती भी थी सिन्हा साहब की अलमारी में। दूसरी बिल-बुक जिसमें छोटे आर्डर्स के बिल बनाये जाते थे, मेज़ पर ही पड़ी रहती थी। मेरी बायीं ओर वाली कुर्सी पर पडित दीनानाथ बैठते थे। सन अड़तीस के मैट्रीकुलेट दीनानाथ कच्चे-पक्के रजिस्टरों में कम्पनी का हिसाब रखते थे। यहां आने से पूर्व वे म्युनिस्पैलटी के दफ्तर में एकांउटेंट का काम करते थे। मंदी के उस ज़माने में महज़ पैंसठ हज़ार रुपये के गबन के आरोप में निकाल दिये गये थे। पिछले दस वर्षों से वे इस कंपनी की खिदमत कर रहे थे। मेरी दायीं ओर कटियार बैठता था। वह वर्कशाप का काम देखता था। लकड़ी चिरवाना, कारीगरों को काम देना, उनकी हाज़री लगाना जैसे काम उसके जिम्मे थे। हालांकि कारीगरों को माल बनाने का सीधा निर्देश सिन्हा साहब खुद देते थे। कोने वाली मेज़ पर फारुख मियां बैठते थे। उनकी मेज़ पर अक्सर धूल जमी रहती थी। महीने में बारह दिन वे बाहर रहते थे। लकड़ी लिवा लाने के लिए अक्सर उन्हें कुल्लू, नेपाल के दौरे पर जाना होता था।

हमारे इस बड़े हालनुमा कमरे से एक दरवाज़ा पीछे वर्कशाप की ओर खुलता था। वर्कशाप में वर्कशाप जैसा कुछ नहीं था। पीछे खुली जगह थी। फर्श के स्थान पर खडंजा बिछा था। राखी, चूने से चिनी गयी दीवारों के ऊपर एस्बेस्टस की शीटें डलवा दी गयी थीं। एक कोने में आरा मशीन थी, दूसरे कोने में कारीगर काम करते थे। सनमाईका फिट करने, पालिश करने का काम खुले मैदान में होता था। कुल जमा चालीस वर्कर थे, जिनमें कुशल कारीगर, अकुशल कारीगर, हैल्पर, चपरासी सभी शामिल थे।

कंपनी का इतिहास बतलाता था कि पंडित दीनानाथ को छोड़कर कोई भी सहायक डेढ़, दो बरस से ज़्यादा अपनी सीट पर टिक नहीं पाया था। कारीगर तो आये दिन आते-जाते ही रहते थे। यह सब सिन्हा साहब के अत्यंत मृदु स्वभाव और कार्यपद्धति की अपनी विशिष्ट शैली के कारण होता था। बड़े से बड़े तेज़-तर्रार आदमी को वे अपनी मीठी ज़ुबान से काट देते थे। सिन्हा साहब को अक्सर यह मलाल रहता था कि वे जो तनख्वाहें हमें दे रहे थे, उसके अनुपात में हमारा काम बहुत कम था। जब कंपनी के पास आर्डर कम

होते और काम घट जाता तो उन्हें लगने लगता कि कंपनी का हर मुलाज़िम कतई मुफ्त की तनख्वाह ले रहा है। ऐसे वक्त में उनका अमन चैन लुट जाया करता और वे भीतर कुनमुनाये से रहते। मगर चेहरे पर भरपूर मुस्कराहट लाने की उनकी कोशिश बदस्तूर जारी रहती। ऐसे मौकों पर वे वर्कशाप के तीन-चार चक्कर ज़रूर लगाते थे। हाथ पर हाथ धरे बैठे कारीगर उन्हें बर्दाश्त नहीं होते थे। खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे के से अंदाज में वे कारीगरों से कहते—'काम नहीं है, कोई बात नहीं। देखो, इधर कितनी गंदगी फैली है। थोड़ा इसे ठीक कराओ, भाई। कुत्ता भी पूंछ झाड़कर बैठता है। ये कटी हुई लकड़ी एक तरफ रखवाओ और स्लीपर उस तरफ लगवाओ।'

ऐसे मौकों पर वे सहायकों के लिए पुराने पेंडिंग काम ढूंढ़-ढूंढ़कर रखते थे। मसलन फाइलें ठीक करवाना, पुराने केटलाग में बढ़े हुए रेट कलम से ठीक करवाना। काम लेना उन्हें आता था और खूब आता था। हर नये सहायक की वे छोटे-छोटे कामों पर इतनी ज़्यादा शाबाशी दे देते थे कि वह नीचे से ऊपर तक तर हो जाता था। नया अनाड़ी सहायक तरक्की तथा शाबाशी पाने के प्रलोभन में गधे की तरह काम में जुटा रहता। ऐसे सहायक से वे दूसरे सहायकों के बारे में थोड़ी-बहुत जासूसी भी करवा लेते थे, जैसे मेरी गैरहाज़िरी में कौन-कौन मेरी केबिन में आकर टेलीफोन करता है, कौन लंच के के लिए कब गया और कब लौटकर आया, दफ्तर की स्टेशनरी कौन चुराता है आदि-आदि। लेकिन बहुत जल्दी ही नये सहायक के तमाम भ्रम टूटकर बिखरने लगते।

कभी-कभी वे हम लोगों के बीच में आकर बैठ जाते। पहले चाय मंगवाते फिर भूमिका बनाते हुए देश में फैली बेरोज़गारी की चर्चा करते-करते हमें यह अहसास कराने लगते कि वे जो तनख्वाहें हमें दे रहे हैं, हमारी औकात से कहीं ज़्यादा हैं। वे कहते—'आजकल बेकारी बहुत है। देश के हज़ारों ग्रेजुएट आखिर कहां खपा दिये जायें? सरकार इस विषय पर कुछ सोचती नहीं है। प्राइवेट कंप-नियां, बेशक वे लोग कम तनख्वाहों पर काम करने को राज़ी हों, आखिर कितने आदमी रख लें। अपनी ज़रूरत भर के ही आदमी कोई रखेगा न!'

दफ्तर में हम लोगों से मिलने हमारा कोई परिचित या मित्र आ जाता तो पता लगते ही वे केबिन से बाहर निकल आते और किसी ज़रूरी बात कहने को, ठीक ऐसे ही वक्त में, सामने आ खड़े होते। पहले बात कहते—'भई, वो फलां पार्टी का लेटर तैयार हो गया?' बात खत्म होते ही कह उठते—'आप साहब?'—सहायक बेचारा खिसियाया हुआ-सा उठ खड़ा होता, फिर कहता—'जी, मेरा दोस्त है। एक ज़रूरी काम से आया था।' 'अच्छा

.... अच्छा, कोई बात नहीं। चाय-वाय पिलवाओ भई, इन्हें। आपके दोस्त हैं ये।' कहते हुए वे वर्कशाप में निकल जाते या अपनी केबिन में घुस जाते। 'दोस्त' शब्द पर वे इतना अधिक ज़ोर दे डालते थे कि सहायक की हालत पतली हो जाती थी। आने वाला ज़रूर प्रभावित हो जाता था कि बॉस कितना अच्छा है। सहायक को अपने दोस्त से यही कहना पड़ता था— 'यार, मिलना हुआ करे तो घर आ जाया कर।' सिन्हा साहब की ये उदारताएं हमें कहीं का नहीं छोडती थीं।

०००

पैक हुए माल की जानकारी लेने और ज़रूरी निर्देश देने के बाद सिन्हा साहब ने अपनी दोनों कुहनियां मेज़ पर टिकाते हुए कहा—'शर्माजी, आप महेशजी को इनकी सीट दिखा दीजिये और सारा काम भी समझा दीजिये।' इतना कहकर वे मेज़ पर पड़ी फाइल में कुछ इस तरह से खो गये, जैसे उन्होंने हमें अभी तक देखा ही न हो।

हम दोनों बाहर निकल आये। मैंने महेश को अपने सामने वाली टेबुल की तरफ इशारा करते हुए बताया—'बंधु महेशजी, ये ही है आपकी सीट।' वह कुर्सी लेकर बैठ गया। मैंने उसे तमाम फाइलें दिखा दीं और काम के मुताल्लिक कुछ ज़रूरी बातें भी सिलसिलेवार ढंग से समझा दीं। वह बड़ी तल्लीनता से फाइल उलटने-पलटने लगा। काफी देर बाद उसने जेब से चारमीनार की सिगरेट निकाली और सुलगाकर मेरे पास आ बैठा।

फिर धीरे-से बोला—'क्या आप मुझे बतायेंगे कि इस सीट पर काम करने वाले मिस्टर पालीवाल कंपनी से क्यों निकाल दिये गये?' मैंने उसकी ओर गौर से देखा फिर कहा—'महेश बंधु, पहले ही दिन आप सब कुछ क्यों जान लेना चाहते हैं? खैर फिर भी इतना आपको बता ही दूं कि यहां से आज तक कोई भी निकाला नहीं गया है। हालात उसे यहां से खींचकर ले गये हैं बाहर।' उसने आगे कुछ भी नहीं पूछा। वह मुझे रहस्यमयी आंखों से देखता रहा लगातार। फिर उठकर चला गया अपनी सीट पर और फाइलों में इस तरह लीन हो गया जैसे कोई भक्त आंखें बंदकर भगवान के ध्यान में लीन हो जाया करता है।

उसे काम करते हुए लगभग दो माह गुज़र गये। वह अक्सर ही खुश-खुश सा सिन्हा साहब की केबिन में घुसता और बड़बड़ाता हुआ लौटकर कुर्सी में धंस जाता। मैंने उसे अक्सर ही उत्तेजित होते हुए देखा। एक बार वह खासा उत्तेजित सा केबिन से बाहर आया था। मामला उस बिल-बुक में बिल बनाने का था जो सिन्हा साहब की आलमारी में रहती थी। वह उसमें बिल बनाने से इन्कार कर रहा था। उसका कहना था यह बेईमानी है, चोरी है। सिन्हा साहब ने उसे समझाया

था कि सही क्या है और गलत क्या है, यह उसे जानने की ज़रूरत ही क्या है? वह अपना काम करे।

काम वह कर रहा था, मगर पता नहीं क्यों वह कुछ उलझन-सी महसूस करता था। उसके बारे में मुझे बहुत कम जानकारी थी। उस दिन दफ्तर में बिजली नहीं थी। काम कुछ खास नहीं हो पा रहा था। उमस बहुत थी। सिन्हा साहब की केबिन का दरवाज़ा खुला था। पीछे गलियारे की ओर खुलने वाली खिड़की भी उन्होंने चपरासी से खुलवा ली थी। बैठे-ठाले उसके बारे में कुछ जानकारी हासिल करने की गरज से मैं बैठा–'भाई महेश, आप कहां के रहने वाले हैं?'

'शर्माजी, कहां का रहने वाला हूं मैं? कोई कहीं का भी रहने वाला हो सकता है, इससे क्या फर्क पड़ने वाला है भला। अब आप जानना ही चाहते हैं तो ज़रूर जानिये। पिता दिल्ली में रहते हैं और मैं कलकत्ते में पैदा हुआ था। अब आप ही बताइये मैं कहां का रहने वाला हुआ? मैं हिन्दुस्तान का रहने वाला हूं, यह मेरा मादरे-वतन है। आपके सवाल का क्या यह जवाब नहीं हो सकता?' उसने मुस्कराते हुए अजीब-सी टोन में कहा। मुझे लगा वह मानसिक रूप से कुछ उद्विग्न है। मैंने उसे तिरछी निगाहों से देखा। वह यकायक मुलायम पड़ गया और बड़ी संजीदगी से बोला–'मेरे पिता दलाली का धंधा करते हैं दिल्ली में। मुझे यह साला दलालगीरी का धंधा कभी रास नहीं आया था। बी.ए. के बाद आगे मैं पढ़ा नहीं। कुछ करना चाहता था कि इससे पहले ही पिता ने मेरी शादी कर दी और आनन-फानन में ही मैं दो बच्चों का बाप बन बैठा। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि साढ़े तीन सौ रुपल्ली की यह क्लर्की भी मुझे करनी पड़ेगी, जिसमें हर काम जालसाज़ी का है। यह तो उस दलालगीरी से भी बदतर है जिसे मेरा बाप करता है। आदमी की ज़िन्दगी की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यह है कि वह जो कुछ करना चाहता है, करना उसे उसके विपरीत ही पड़ता है। आप समझ सकते हैं मेरे जैसे आदमी की अंदरूनी हालत।

वह अपनी रौ में कहे चला जा रहा था। मैं गौर से उसकी बातों को सुन रहा था। उसकी साफगोई और बेबाकपन मुझे अच्छा लगा। वह तेज़-तेज़ बोल रहा था। यकायक मुझे अहसास हुआ कि उसकी तेज़ आवाज़ अवश्य ही सिन्हा साहब की केबिन के खुले दरवाज़े से भीतर तक जा रही होगी। वह बोल ही रहा था कि चपरासी ने आकर उससे कहा–'साहब, बुला रहे हैं।' वह उठा और सीधा केबिन में चला गया।

अंदर से उसके तेज़-तेज़ बोलने की आवाज़ साफ-साफ बाहर आ रही थी। फर्ज़ी कंपनियों के नाम से कोटेशन भरने की बात पर बहस हो रही थी शायद। बातचीत से ऐसा ही लग रहा था।

'प्लीज, बैठ जाइये, महेशजी।' यह सिन्हा साहब की आवाज़ थी।

'महेशजी, मैंने पहले भी आपको समझाया था शायद। यह व्यवसाय है, इसमें सब कुछ करना पड़ता है। इतने बड़े-बड़े आर्डर यूं ही नहीं मिल जाते। संतरी से लेकर मंत्री तक को पैसा देना होता है। कंपनी के अपने तमाम खर्चे हैं। और एक आप हैं, हर वक्त बच्चों की तरह ईमानदारी का रोना रोते रहते हैं। ईमानदारी, बरखुरदार, है कहां? किस दुनिया में रहते हैं आप?' सिन्हा साहब ने समझाते हुए कहा। चपरासी कोई कागज़ लेकर पहुंच गया था अंदर। वे चुप हो गये। चपरासी के बाहर आते ही उन्होंने फिर से कहना शुरू किया।

'मिस्टर महेश, एक बात कहूंगा। आप बुरा नहीं मानेंगे। आप सीधे कालेज से निकलकर आये हैं मेरे यहां। मेरा मतलब है अभी तक आपने कहीं नौकरी नहीं की है। मेरा आपसे यही कहना है कि जिन्दगी की हक़ीकतों को पहचानिये। पिछले सोलह वर्षों से मैं यही व्यवसाय कर रहा हूं। आप जैसे कई ईमानदार मेरे यहां काम कर चुके हैं। मेरा खयाल है मेरी बातों को आप गंभीरता से लेंगे।'

महेश केबिन से निकलकर आया तो बैठकर उसने सिगरेट सुलगायी। इस बीच बिजली आ गयी। सिन्हा साहब की केबिन का दरवाज़ा बंद हो गया। पंखे चलने लगे। उसने रैक से फाइल निकाली पहले। फिर ड्राअर से कागज़ निकाले और कुछ लिखने लगा। मैंने उसकी ओर मुखातिब होते हुए पूछा– 'भाई महेश, यह सिन्हा साहब की केबिन से निकलते ही क्या लिखने लगे आप?' उसने गर्दन उठाकर मेरी तरफ देखा, फिर मुंह पर उंगली रखते हुए बोला।

'शी...शी... चुप रहिये, शर्माजी। मैं साला, साढ़े तीन सौ रुपल्ली का क्लर्क इस वक्त जाली कोटेशन्स तैयार कर रहा हूं। मैं इन कागज़ों में ज़िन्दगी की हक़ीकत देख रहा हूं। मुझे, मेरी बीवी और बच्चों को भूख लगने की बीमारी है। मेरे अंदर दूसरा महेश पैदा हो रहा है जो मुझसे चीख-चीखकर कह रहा है – बेटे महेश, इस फालतू के झगड़े में पड़ने से क्या हासिल होगा? सड़ी-गली, क्रूर व्यवस्था का विरोध करने से तुझे रोटियां हासिल नहीं हो सकतीं। अपनी रोटी बचा।'

वह बहुत देर तक न जाने क्या-क्या कहता रहा और फिर अपने काम में पूरी तरह डूब गया। मैंने अभी तक अपने किसी साथी को इतनी लगन से काम करते हुए नहीं देखा था। मेरे दिमाग में बहुत-सी बातें घुमड़ने लगीं। मैं झटके से उठा और चाय पीने के खयाल से बाहर की ओर चल दिया। दरवाज़े के पास पहुंचकर मैंने घूमकर देखा। वह अभी भी सिर झुकाये अपने काम में जुटा था।

—के-७४, न्यू स्कीम, यशोदा नगर,
कानपुर-२०८०११

□

अमरप्रेम की अमिट निशानी

सन १९०३ की एक खुशनुमा सुबह। वायसराय लार्ड कर्ज़न आगरा के ताजमहल को मंत्रमुग्ध-सा निहारे जा रहा था। विश्व के सात आश्चर्यों में एक ताज के अद्भुत सौंदर्य को देखकर उसकी आंखें चुंधिया गयीं। साथ में पत्नी भी थी। संगमरमर-सा तराशा हुआ बदन। दूध-से धप्-धप् चेहरे की निश्छल आभा। देह की खूबसूरती और वाणी के माधुर्य का विचित्र संगम। जैसा तन, वैसा ही मन।

ताजमहल को निरखकर शाहजहां का पत्नी-प्रेम लार्ड कर्ज़न के दिल-दिमाग में समा गया। भावविभोर होकर वह शाहजहां और मुमताज के विषय में सोचते हुए गहरे और गहरे डूबता चला गया। फिर वह शाहजहां और मुमताज से अपनी तथा पत्नी की तुलना करने लगा और मन-ही-मन उसने कुछ निश्चय किया। दिल की बात उसने पत्नी से भी कही। सलाह-मशविरा करने के बाद दोनों इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ताजमहल के फाटक पर एक ऐसा अजीबोगरीब लैंप टांगा जाये जो अनवरत जलता हुआ अपनी जगमगाती ज्योति के माध्यम से दर्शकों को उनके अमरप्रेम का संदेश देता रहे।

अब सवाल उठा कि वैसा लैंप किस कारीगर से तैयार करवाया जाये? देश के तमाम कारीगरों से लार्ड कर्ज़न ने एक-एक कर बात की, पर कोई भी उसकी कल्पना का लैंप तैयार करने के लिए राज़ी नहीं हुआ। उस विशिष्ट लैंप की तलाश में उसने अरब, बगदाद, काहिरा, इंग्लैंड आदि अनेक देशों की यात्राएं कीं, पर कहीं भी वैसा लैंप उपलब्ध नहीं हो पाया। अंत में लार्ड कर्ज़न सन १९०५ के आरंभिक दिनों मिस्र के सुप्रसिद्ध कारीगर तोद्रस बदिर के पास जा पहुंचा। उसने अपने मन की बात बदिर के सम्मुख प्रकट की। सौभाग्यवश बदिर इच्छित लैंप बनाने की खातिर राज़ी भी हो गया। तत्काल उसने लैंप बनाने का वह दुष्कर कार्य आरंभ कर दिया जो लगातार दो वर्ष तक चलता रहा। आखिर लार्ड कर्ज़न का मनचाहा लैंप तैयार होकर भारत आया। लैंप की कीमत बीस हज़ार रुपये आंकी गयी।

लार्ड कर्ज़न ने उस लैंप को ताजमहल में स्थापित करने के लिए एक विशाल समारोह का आयोजन किया और धूम-धाम के साथ लैंप को रखा गया। कांसे पर बने हुए उस लैंप पर सोने का काम किया हुआ था। फारसी लिपि में लैंप पर लिखा था—'भारत के वायसराय लार्ड कर्ज़न ने १८ फरवरी, १९०६ को यह लैंप ताजमहल को तोहफे के रूप में दिया।'

आज भी वह सुंदर चित्ताकर्षक लैंप निरंतर जलता हुआ दर्शकों का ध्यान अनायास अपनी ओर खींचता है और लार्ड कर्ज़न की याद ताज़ा करता है।

—भगवतीप्रसाद द्विवेदी

संभा का गुरु कवि कलश कौन था?

डॉ. शिवशंकर त्रिपाठी

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि कोई 'कलश' नाम का व्यक्ति शिवाजी के पुत्र संभाजी का संरक्षक रहा। इतना ही नहीं वह बाद में संभाजी का राजनीतिक गुरु और शासन-कार्य का मंत्री बना। सबसे उल्लेखनीय बात है कि वह कलश संभाजी के ही साथ प्राणदंड का भागी भी हुआ। बस, इससे अधिक जानकारी देने में इतिहास मौन है। कैटलाग्स कैटलागारम में उल्लेख मिलता है कि कवि कलश अथवा कवि कलुष 'शंभुराज चरित' में चर्चित तथा हरिकवि के ग्रन्थ 'सुभाषित हारावली' में उद्धृत कृष्ण पंडित से भिन्न नहीं है। (वाल्यू० ३ पृष्ठ २६९)। शिवचरित्र साहित्य के खंड तीसरे में कवि कलश को संभा का सर्वाधिक प्रिय एवं विश्वसनीय अमात्य, धर्माभिमानी, कर्मकांडपरायण, सत्यसंध, समस्त राजकार्य धुरंधर, विश्वास-निधि राजामात्य, राजश्री और छन्दोगामात्य के रूप में निरूपित किया गया है। निश्चित ही इन सभी गुणों का प्रभाव संभाजी पर पड़ा और उसने अपने जीवनकाल में कवि कलश को अपना गुरु बनाया होगा।

यह कवि कलश काव्य प्रतिभा का धनी और राजनीति का पंडित था। इसके निवासस्थान, कुल एवं पूर्ण नाम की जानकारी आजतक नहीं हो सकी जो हमारे लिए दुर्भाग्य का विषय है। खफीखां की फारसी तवारीख, संस्कृत इतिहासग्रन्थ 'अजितादेय' और भीमसेनरचित 'तारीखे दिलकशा' के विवरणों से इस कवि का कुछ इतिवृत्त मालूम होता है जो उसके जीवन-चरित के शिवपक्ष को उजागर कर देता है: किस निर्भीकता तथा विश्वसनीयता के साथ उसने संभाजी की रक्षा की, ऐसा गुरुतर दायित्व स्वीकारा और कितनी सजगता के साथ निर्वाहा, शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् उनके राष्ट्रीय आदर्शों की धरोहर को संभाजी के माध्यम से कितनी निपुणता के साथ संजोया। एक गुरु, एक सुहृद् सखा के रूप में किस दृढ़ संकल्प के साथ उसने औरंगजेब जैसे निर्भय शासक के समक्ष संभा सहित उपस्थित होने पर 'तुअ तप तेज निहार के तखत तज्यो अवरंग' ओजपूर्ण काव्य पंक्ति का उच्चारण किया और भारतीय 'स्व' को प्राणों की आहुति देकर सदा-सदा के लिए प्रतिष्ठित कर दिया।

यह कवि कलश प्रतिभा संपन्न कवि था,

इस कथन में रंचमात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता। यह अलग बात है कि उसका काव्य आज तक अध्येताओं को प्राप्त न हो सका है। संस्कृतभाषा में तो नहीं परन्तु हिन्दी में दो ऐसे छन्द आज तक प्राप्त हुए हैं जिनमें 'कलश' का स्पष्ट उल्लेख है। इनमें से एक छन्द 'मिश्रबन्धु विनोद' में तथा दूसरा दतिया राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित ग्रन्थ (विभिन्न कवियों के छन्द संकलित हैं) में प्राप्त होता है। दोनों ही छन्दों की भाषा तथा उनके भाव रीतिपरक हैं :

अंग अरसौहैं छबि अधरन सोहैं, चढ़ि आलस की भौहें धरे आभा रतिरोज की।
सुकवि कलश तैसे लोचन पगे है नेह, जिनमें निकाई अरुणोदय सरोज की।
आछी छबि छाके मंद मंद मुसकान लागी बिचल बिलोकि तन भूषन के फौज की।
रादे रदमंडली कपोलमंडली में मानो रूप के खजाने पर मोहर मनोज की।

—'मिश्रबन्धु विनोद'

एकरति केलि कला कोविद कमलमुखी प्यारे को वियोग बडवानल लौ बारचो है।
तापरि तमकि तेज भारे तरु तापन के पंचशरहि को बेझ्यौ करि डारचो है।
चन्दन चढ़ाये कवि कलश कमल इन्दु और सब सीरेई उपायि करि हारचो है।
कैसे जीयें बापुरो पथिक घर ओट जाहिं काननि लौं खैंचि के कटाक्ष बान मारचो है।

संभाजी

दतिया राजकीय पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थ से उद्धृत छन्दों में आगत 'कवि कलश' शब्द निश्चित ही नाम परक है। कवि रीतिकालीन कवियों की भावभूमि पर खड़ा है। अनुमानतः कवि कलश ने रीतिपरक किसी ग्रन्थ की भी रचना की होगी। यह भी उसकी एक विशेषता थी कि संभाजी उसको सदा अपने निकट रखता और उससे ही प्रभावित होकर वह स्वयं भी हिन्दी में कविता लिखने लगा था।

भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में श्री हरिकवि विरचित एक संस्कृत महाकाव्य है 'शंभुराजचरित'। बारह सर्गों के इस महाकाव्य में शिवाजी के उत्तराधिकारी संभाजी का जीवन-चरित वर्णित है। कवि कलश संभाजी के राजनीतिक गुरु के रूप में इतिहासविदों

द्वारा मान्य हैं। इन्हें बाद में महाराष्ट्र समाज 'कवि कलुष' नाम से भी सम्बोधित करने लगा था। 'शंभुराजचरित' महाकाव्य के रचयिता हरिकवि ने काव्य रचना का कारण शंभु महीपति के गुरु किसी कृष्ण नामक विद्वान् पंडित का निदेश बताया है :

तस्मात्साधुपदाब्जसेवनपरः सोयं हरिश्चाभव
श्रीनारायणपादपंकजसुधासेवाप्तवाग्वैभवः।
यः श्रीशंभुमहीपतेरपि गुरोस्तस्यैव कृष्णाख्यया,
विख्यातस्य निदेशतो वरमिदं काव्यं व्यधाद्द्भुतम् ॥

—शंभुराजचरित । सर्ग १२।१७२

कवि का कहना है कि जो महाराज शंभु अर्थात् संभाजी का भी गुरु था, उसी कृष्ण नामक विख्यात जन के निदेश से इस श्रेष्ठ काव्य का जो स्वयं में एक अद्भुत रचना है प्रणयन किया। हरिकवि ने 'सुभाषित हारावली' में कृष्ण पंडित नाम वाले कवि के कई छन्द संकलित किये हैं। उन संस्कृत छन्दों में व्यवहृत भाषा और गुम्फित भावों से प्रतीत होता है कि निश्चित ही यह एक रससिद्ध कवि रहा होगा। उदाहरण के लिए संस्कृत का एक छन्द :

यः पीयूषमयूखधामनि सुधा साराच्छकेछेपि यः
क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रलहरी लावण्यपूरेपि यः
यः कान्ताधरपल्लवे मधुरिमा नासौ समुद्गाहते
श्रीविद्वत्कविकृष्णपंडितवचोवीचिसमीचीनताम् ॥

यह कवि की गर्वोक्ति मालूम पड़ती है : छन्द में निबद्ध भावों का तात्पर्य यह है कि विद्वान और कवि कृष्ण पंडित की वाणी रूपी लहरियों के बीच अवगाहन कर उसके याथार्थ्य को यदि समझ सके तो एकीकृत पीयूष-किरणजाल का आनन्द अथवा सुधासार का पान कर सन्तुष्ट होना, क्षीरसागर में उफनती लहरों से उत्पन्न लावण्य से युक्त मधुरिमा और उससे प्राप्त होने वाला आनन्द अथवा युवती के अधर रूपी पल्लव-पान से जनित आनन्द सर्वथा व्यर्थ है।

इससे पहले उद्धृत हिन्दी के दो छन्दों तथा इस संस्कृत छन्द को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि दोनों ही भाषाओं में काव्य प्रतिभा का निखार चरमोत्कर्ष पर है। शंभुराजचरित : सर्ग १२, छन्द १७२ में कृष्ण नामक पंडित को संभाजी का गुरु कहा गया है और वही कृष्ण पंडित इतने सरस भावयुक्त छन्दों की रचना करता है। कवि कलश संभाजी का राजनीतिक गुरु रहा यह इतिहास सम्मत तथ्य है। हरिकवि ने अपने 'शंभुराजचरित' महाकाव्य में कृष्णाख्य व्यक्ति को शंभुमहीपति का गुरु लिखा है और उसी के आदेश पर काव्य रचना की गयी। ऐसी स्थिति में कवि कृष्ण पंडित तथा कवि कलश एक ही व्यक्ति था कहना तर्कसंगत प्रतीत होता है। इतना ही नहीं बाद में

कवि कलश को 'कवि कलुष' कहा जाने लगा था। कलुष के शाब्दिक अर्थ से दूर हटकर यदि भाव मात्र को ग्रहण कर लिया जाय तो कृष्ण नाम से साम्य बैठ जाता है।

कवि कलश ब्राह्मण कुलोत्पन्न था, यह कृष्ण पंडित अथवा कवि कृष्ण (हरिकवि संकलित सुभाषित हारावली के अनुसार) नाम से स्पष्ट है। वह किस स्थान, जनपद अथवा प्रदेश की विभूति था विचारणीय प्रश्न है। इतिहास इस सम्बन्ध में भी मौन है। इस प्रश्न का समाधान मात्र शिवाजी द्वारा आगरा जेल से पलायन करने के बाद अपनाये मार्ग तथा पड़ावों के आधार पर किया जाना सम्भव हो सकता है। इससे अधिक सबल अन्य आधार नहीं मिल सकता। खफीखां ने अपनी तवारीख के दूसरे भाग में जो विवरण प्रस्तुत किया है उसके अनुसार शिवाजी आगरा की कैद से भागकर मथुरा पहुंचे। मथुरा में दाढ़ी-मूंछ मुड़ाकर साधु का वेश बनाया। अपने साथियों को भी उसी वेश में रखा। साथियों सहित इलाहाबाद होते हुए बनारस गये। दुर्भाग्य से साथियों समेत इलाहाबाद में किले के पास एक फौजदार मोहम्मद कुली ने उस साधुओं की जमात को कैद कर लिया। पूरी रात शिवाजी, उनके साथी तथा कुछ अन्य यात्री भी कैद में रहे। दूसरे दिन शिवाजी ने युक्ति निकाली और आधी रात को वे अकेले थानेदार के पास पहुंचे और उसको अपनी बातों में फंसा लिया। बस, मोहम्मद कुली ने दो हीरे तथा एक लाल लेकर उनकी जमात को मुक्त कर दिया। आगे खफी खां ने लिखा है: 'शिवा फौजदार के जाल से छूटकर बनारस को चला और तेजी से चलने लगा। पैदल चलने में वह जल्दी चलनेवालों से आगे निकलता था परंतु संभा के पांव में छाले पड़ जाने से उसके पांव में बेड़ी पड़ गयी, इसलिए उसने कवि कलश को जो पीढ़ियों से उसके बाप-दादाओं का जो कभी बनारस में आये थे पुरोहित कहलाता था और जिसके पास उनकी मुहर और दस्तखत का लिखत था, ढूंढकर अपने बेटे को कुछ जवाहरात और अशर्फियां समेत सौंप दिया।'

इस विवरण से स्पष्ट है कि शिवाजी ने अपने पुत्र संभाजी को इलाहाबाद में छोड़ा था। उसकी सुरक्षा का गुरुतर भार स्वीकारने वाला ब्राह्मण भी इलाहाबाद का ही रहा होगा। कुछ विद्वानों के मत में शिवाजी ने संभाजी को मथुरा में छोड़ा। यह कथन मात्र कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। कारण १–मथुरा, आगरा और दिल्ली से बहुत निकट है। वहां होनेवाली कारगुज़ारी का पता बादशाह औरंगजेब को चलना बहुत ही सरल था। शिवाजी एक राजनीतिक ही नहीं बड़ा ही दूरदर्शी व्यक्ति था वह ऐसी असावधानी नहीं कर सकता। दूसरी ओर इलाहाबाद आगरा और दिल्ली दोनों

(शेषांश पृष्ठ १२९ पर)

वीरेन्द्र मिश्र के दो गीत

[१]

समुद्र-संदर्भ : सिन्धु-स्नान

कितना अच्छा हुआ—
सिन्धु-स्नान करके ये अधिक मधुर गीत
ज़रा खारे तो हुए

०

भीग नहीं पाते तो
एक रंग एक रस-प्रधान रह गये होते
कुछ सीमित नदियों में
कागज़ की नावों के साथ बह गये होते
कितना अच्छा हुआ–
तीर्थों की डुबकी से गोते अपरूप
ज़रा न्यारे तो हुए

०

यहां नहीं आते तो
मिल पातीं कैसे ये मधुवंती संध्याएं
जल से बादल उठना
बादल की वर्षा होने की सब मुद्राएं
कितना अच्छा हुआ—
मछली की टोह में गये प्रगीत कुछ-कुछ
मछुआरे तो हुए

०

सम्भव होता कहां
ऐसा संवाद कूल के प्रसन्न पेड़ों से
ऐसा साक्षात्कार
अपने जीवन जैसी लहर के थपेड़ों से
कितना अच्छा हुआ—
रेत, हवा, नाव और माझिन के साथ
कुछ इशारे तो हुए

[२]

वर्षा संदर्भ : हवाएं

भरे-पुरे मेघों के पास मुस्कराकर
जुहू के समंदर में डुबकियां लगाकर
वर्षा के मेघराग छेड़कर तरन्नुम में
वह देखो
व्योम की सभाओं में छा गयीं हवाएं
आ गयीं हवाएं

०

लाईं वे भीगा लावण्य नई लहरों का
माथा ठंडा हुआ जले-भुने शहरों का
तना एक इन्द्रधनुष हंसी एक बिजली
मोर एक नाच उठा उड़ी एक तितली
हुआ तरोताज़ा मन
बादल बादल होकर
शिरा-शिरा बरस उठीं
शीत की विधाएं
आ गयीं हवाएं

०

सुना गयीं हमको वे
नदियों की लोक धुनें
लगा, उन्हें और सुनें, और सुनें, और सुनें
जंगल के सन्नाटे आ गये सड़क पर
हर मन के सूनेपन गले मिले खुल कर
कोयल! पंचम छेड़ो
हमें धन्य कर दो
तुम्हीं कहो ऐसे में और कहां जाएं?
आ गयीं हवाएं

—कृष्णकुंज, ३ दादाभाई क्रासरोड, विलेपार्ले (प.) बम्बई–५६—

फ़िल्मी दुनिया के बदलते रंग

दर्शन लाड

फ़िल्म की लुभावनी दुनिया, इस दुनिया से इतनी अलग क्यों है ? फ़िल्म में जीने वाले हर पात्र की ज़िंदगी आम ज़िंदगी से बेमेल क्यों और कैसे हो जाती है? उनका प्रेम, उनकी वासना, उनका जीना, उनका मरना सब कुछ अनोखा-सा क्यों लगता है ? और फिर इन सवालों के जवाबों को टालते हुए निष्कर्ष पर पहुंचने वाले बुद्धिजीवी आमतौर पर यह कहते सुनाई देते हैं कि फ़िल्मी जीवन एक धोखा है और कोई भी समझदार व्यक्ति धोखे को सत्य मानने का भ्रम नहीं पाल सकता। दूसरे शब्दों में बुद्धिजीवी वर्ग सारे फ़िल्मी जगत को एक तमाशा समझता है और उस जगत में रहनेवाले लोगों की अपनी ज़िंदगी में और जो ज़िंदगी वे फ़िल्मों में दिखाते हैं उसे भी एक खूबसूरत छलावे से अधिक महत्व नहीं देता।

बुद्धिजीवी वर्ग के विपरीत करोड़ों की संख्या वाला एक वर्ग वह भी है जो बिना कोई फ़िल्म देखे जैसे जी नहीं सकता। महीने में कम से कम चार फिल्में और संभव हो तो अधिक भी, वह देखना उतना ही आवश्यक समझता है जितना खाना और कपड़े पहनना। इस तरह सिनेमा हॉलों में गुज़ारे हुए बीसियों घंटे उसकी रोज़मर्रा की ज़िंदगी के वे अद्भुत, रोमांचक असंख्य क्षण होते हैं जिसे अनुभव करके वह अपने आप को कहीं न कहीं सार्थक समझने लगता है।

और इन सबसे प्रभावित वह किशोर और युवा वर्ग है जो गांव-क़स्बों से लेकर बड़े-बड़े महानगरों तक फैला है, जिसकी नज़र में ख़ूबसूरत, रंगीन चित्रों से सजी, अजीब-अजीब, अफ़वाहों से लबरेज़ फ़िल्मी पत्रिकाओं से बढ़कर पठनीय सामग्री और कोई नहीं है। सस्ती (किन्तु क़ीमत में महंगी) फ़िल्मी पत्रिकाओं की भरमार इस सत्य की साक्षी हैं।

हर वर्ग का हर परिवार कहीं न कहीं फ़िल्म से प्रभावित है, और यही कारण है कि हमारे देश के विचारकों को इस नतीजे पर पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होती कि फ़िल्मों ने आज के युवा वर्ग को बिगाड़ कर रख दिया है। समाज को विकृत करने वाली बहुत-सी बुराइयों की जड़ कहीं न कहीं फ़िल्मों में छुपी है।

अक्सर देखा गया है कि नतीजों पर आसानी से पहुंच जाना बहुधा धोखे भरा होता है। अपने आपको कठिनाइयों से

बचाये रखना मानव-स्वभाव का अंग है। जिस निष्कर्ष को पाने के लिए अधिक सर न खपाना पड़े उससे आसान निष्कर्ष कोई हो ही नहीं सकता इसलिए वे माता-पिता, पालक और बुजुर्ग जो आज की तड़पती-तड़कती युवा पीढ़ी से मेल बिठाना टेढ़ी खीर समझते हैं, उनकी सामना करने की प्रवृत्ति को बिगड़ी रुचिवाली फ़िल्मों की देन समझते हैं। इतना ही नहीं उनकी सौंदर्यप्रियता और सर्व सुलभ प्रेम की उन्मुक्तता को वे फ़िल्मों की हूबहू नक़ल समझ कर सारे ही युवा वर्ग के प्रति मन में विद्वेष की भावना पालते रहते हैं।

यह सत्य किसी भी संवेदनशील अन्वेषक की आंखों से ओझल नहीं रह सकता कि आज के समाज में कहीं न कहीं विकृति गहरे पैठ गयी है। पीढ़ियों में समन्वय का अभाव है, जहां अपवाद दिखाई देते हैं वे इस सत्य को सिद्ध ही करते हैं कि हर पीढ़ी के लिए आज का जीवन दुरूह होता जा रहा है और सहारा और समवेदना जैसी वस्तु किसी से किसी को उपलब्ध नहीं। संबंधों में तनाव एक आम बात बन गयी है और 'नैतिकता' और 'उत्तरदायित्व' जैसे शब्द अर्थहीन होकर शब्दकोशों की शोभा बढ़ाने के लिए रह गये हैं।

स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है— फ़िल्मों से इस स्थिति का क्या संबंध है? बुजुर्ग पीढ़ी के लिए तो ये तथ्य प्रमाण का काम देते हैं। 'फ़िल्मों ने रिश्तों और भावनाओं को तमाशा बनाकर रख दिया है,' 'चोरी डकैती, धोखाधड़ी और बलात्कार जैसी समाज विरोधी प्रवृत्तियां फ़िल्मों ही के कारण पनप रही हैं', 'आज पांच-सात बरस का बच्चा भी अश्लील फ़िल्मी गाना गाता है, सोच लीजिए उसका भविष्य क्या होगा?' जैसी फ़ब्तियां आपको हर कहीं सुनाई दे सकती हैं। यह असंभव है कि सुननेवाले के मन में तर्क-वितर्कों से छनकर ये बातें धारणा बनकर न बैठ जायें।

क्या यह सब सत्य नहीं है? शायद किसी को ऐसा लगे कि इन बातों को इस तरीक़े से प्रस्तुत करके प्रच्छन्न तौर पर यहां फ़िल्मों के पक्ष में बात कही जायेगी। परन्तु विश्लेषण में पक्ष-विपक्ष का कोई अर्थ नहीं होता। हमें जानना और समझना होगा कि जीवन में इतनी बड़ी जगह बना लेने वाली फ़िल्म की असली सूरत क्या है?

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य क्या वही दिखाता है जो समाज में हो रहा होता है? नहीं, शायद साहित्य की यह व्याख्या अपूर्ण है। यह साहित्य का एक पहलू अवश्य है। साहित्य की परिभाषा, उसके शाब्दिक अर्थ को परिष्कृत करके यदि की जाय तो 'साहित्य वह है जो सबके हित का हो।' यदि इस कसौटी पर कसा जाये तो आज हमें उपलब्ध होने वाला अधिकतर साहित्य न समाज का दर्पण है न सबके हित के लिए है। क्या यही कसौटी हम फ़िल्म के लिए नहीं आज़मा सकते?

फ़िल्म ने कई जगह कई बार साहित्य का उत्तमोत्तम उपयोग और प्रयोग किया है।

परन्तु साहित्य और फ़िल्म का रिश्ता अधिकतर टूटा-फूटा और अपरिभाषित रहा है। चन्द नामी उपन्यासों और कहानियों के फ़िल्मीकरण ने फ़िल्म जगत में कोई क्रांति नहीं की। तथाकथित 'ऊंची' फ़िल्मों की श्रेणी में वे फ़िल्में अवश्य रख दी गयीं।

तो सोचना होगा कि समाज से, साहित्य की ही तरह फ़िल्मों का रिश्ता, उसे किस हद तक प्रभावित करता है? लेकिन यह बात हम नज़र-अन्दाज़ नहीं कर सकते कि हमारे देश की साक्षर जनता की तुलना में निरक्षरों की संख्या कई गुना अधिक है और फ़िल्मों के दर्शक, साहित्य के पाठकों की संख्या को काफ़ी पीछे छोड़ देते हैं।

आज और अभी की फ़िल्मों के चरित्र और उनके दर्शक वर्ग पर पड़ने वाले वृद्धिगत प्रभाव को नापने की कोशिश करते हुए हमें फ़िल्म के छोटे-से इतिहास पर भी एक नज़र डालनी होगी। मूक फ़िल्मों का युग छोटा था और उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना सवाक् फ़िल्मों का युग था और है। सन १९३०–३२ से लेकर पिछले लगभग पचास वर्षों में भारतीय फ़िल्मों ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे। नाटक की तकनीक को अपनाने वाली तीसवीं दशक की फ़िल्में धीरे-धीरे अनजाने ही पचास वें दशक तक आते-आते जीवन की स्वाभाविकता को प्रतिबिंबित करने की कोशिश करने लगीं। १९३२ की 'आलम आरा' और १९५२ की 'दो बीघा ज़मीन' में ज़मीन आसमान का अन्तर था।

बंगला साहित्य और बंगाली निर्माता-निर्देशकों ने फ़िल्म को जो गरिमा दिलाई वह फ़िल्म के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगी। आम दर्शक इन फ़िल्मों को गंभीरता से लेने लगा था। पचासवां दशक भारत के लिए भी संक्राति का युग था। स्वतंत्रता के बाद जन के मन में जो अपेक्षाएं जागीं, उनकी पूर्णता का प्रयत्न इस युग में होने को था। परन्तु धीरे-धीरे जन का मन बदलता गया, अपेक्षाएं अधूरे सपनों की तरह टूटने लगीं। स्वतंत्रता-संघर्ष जिन मूल्यों के लिए और मूल्यों को लेकर शुरू हुआ था वे मूल्य हवा के क़िलों की तरह देखते-देखते बिखरने लगे। जन का मन पहले चकित फिर आतंकित हुआ और फिर आधुनिकता के पागलपन की ऐसी आंधी आयी कि देश के प्रति सम्मान, और अपने गौरव और अस्मिता का स्वाभिमान सब एक साथ ध्वस्त हो गये।

मूल्यों की अचानक गिरावट का परिणाम जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ा। फ़िल्में इससे अछूती कैसे रहतीं? जीवन-मूल्यों को उचित स्थान देने वाली फ़िल्मों का निर्माण घाटे का सौदा सिद्ध होने लगा। साठ का दशक फ़िल्म की बदलती प्रवृत्ति का इंगित शुरू से ही करने लगा। ऐतिहासिक युग का

बाना पहना कर मनोरंजन और प्यार को उकसाने वाली 'मुगले आज़म' जैसी करोड़ों के ख़र्च से तैयार की गयी फ़िल्मों के ज़रिए हर किसी की रुचि को तृप्त करने का उद्देश्य सामने रखकर, दृश्य-श्रव्य प्रलोभन की यह बानगी जी भर कर लुटाई गयी। मद्रास में निर्मित होने वाली तथाकथित पारिवारिक फ़िल्मों ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया।

नीति और राजनीति में मूल्यों का ह्रास साठ के दशक का अन्त होते-होते अपने निम्नतम स्तर तक आ चुका था। इस देश में जीवन का उद्देश्य येनकेन-प्रकारेण सुख-सम्पदा हासिल करता रह गया। सुख का एक महत्वपूर्ण अंग मनोरंजन भी है इसलिए फ़िल्मों का भी मुख्य उद्देश्य भी केवल मनोरंजन देना ही रह गया। मनोरंजन के नाम पर डाकुओं की फ़िल्में भी इस युग की विशेषता थी।

पलायनवादी साहित्य की तरह पलायनवादी फ़िल्मों का निर्माण इस सदी के आठवें दशक की मुख्य विशेषता सिद्ध हुई। जन का जीवन सुख और चैन के लिए भटकने लगा, यही हाल फ़िल्मों का था। राजेश खन्ना जैसे 'सुपर स्टार' का उद्भव और पतनोन्मुखी प्रवृत्ति जैसे युग के प्रवाह का ही प्रतिबिंब था।

आठवें दशक में ही फ़िल्मों में कुछ उत्साही नवयुवकों ने 'नवयुग' की शुरुआत करने की कोशिश की। पूना के फ़िल्म इंस्टीटयूट से निकले नवदृष्टि संपन्न कुछ लोगों ने फ़िल्म की 'मनोरंजक प्रवृत्ति' को बदलकर उसे विचार-प्रधान बनाने की चेष्टा की, लेकिन दिग्भ्रमित जन ने उसे कोई विशेष महत्व दिया हो ऐसा दिखाई नहीं दिया।
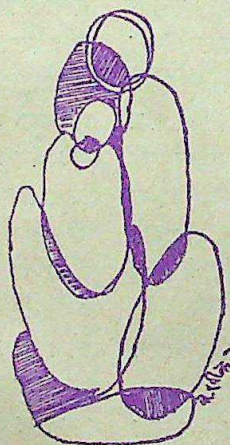
'एंग्री यंगमैन' की अभिताभ बच्चन की छवि इसी दशक में दर्शकों के सामने आयी और उन्हें मोह गयी। इस चमत्कारी कलाकार के उभरते ही फ़िल्म, बदले और मारधाड़ की पर्याय बन गयी। उधर परिस्थितियों से असन्तुष्ट जन का संयम भी अब टूटने लगा था। अब उसे हिंसा को देखकर राहत मिलने लगी थी। फ़िल्मों के तरह-तरह के 'फ़ॉर्मूले' घुल-मिलकर हिंसा और द्वेष की मंज़िलों तक फ़िल्मों को पहुंचाने लगे और जन उन्हें अधिक से अधिक बढ़ावा देने लगा। आंधी आयी और जन को मनोरंजन के नाम पर जो कुछ मिला वह टूटन, बिखराव और हिंसा-प्रतिहिंसा के सिवा और क्या हो सकता था?

इस तथ्यात्मक विश्लेषण के बाद

सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण प्रश्न यही उभरता है– फ़िल्मों ने जन-जीवन को और समाज को विकृत करने की भूमिका निभाई या देश की नीति और राजनीति की पतनोन्मुखी प्रवृत्ति ने? दर्शक की रुचि को सुरुचि बनाने की ज़िम्मेदारी स्वयं दर्शकों की है या फ़िल्म बनानेवालों की? दर्शक समाज का ही अंग है तो क्या यह ज़िम्मेदारी समाज की नहीं है? और फिर समाज जब देश से भिन्न नहीं है तो अन्तिम उत्तरदायित्व देश का ही है कि वह अपनी फ़िल्मों को सुरुचि-संपन्न बनाये। क्या यह तर्क तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता?

दर्शकों की रुचि को विकृत करने की ज़िम्मेदारी से फ़िल्म बच नहीं सकती यह भी उतना ही सच है जितना यह सच कि देश की नीति और राजनीति के ह्रास का उत्तरदायित्व देश और उसके कर्णधारों पर है।

आज की शिक्षानीत्ति, अर्थनीति और राजनीति न्यस्त स्वार्थों की दासी हो गयी है। आज के विकृत माहौल में पलकर जवान होने वाली युवा पीढ़ी फ़िल्मों और दिशाहीन मूल्यों को अपने जीवन में प्रतिबिंबित करने लगे तो इसमें आश्चर्य कैसा?

तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग जैसे राजनीति से किनारा करने लगा है वैसे ही फ़िल्मों के कारण पनपने वाली प्रवृत्तियों से भी उदासीन है। यह बुद्धिजीवियों का कर्त्तव्य है कि वे ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों और ह्रास की ओर ले जाने वाली फ़िल्मों के विरुद्ध एक साथ आवाज़ उठायें। यदि बुद्धिजीवी अपने खोल से बाहर आने की हिम्मत न जुटा पायें तो यह कर्त्तव्य प्रबुद्ध युवा वर्ग का है। दर्शक यदि सुरुचि-सम्पन्न फ़िल्मों के लिए सच्चे मन से मांग करेगा तो उस मांग की पूर्ति फ़िल्म को करनी ही होगी क्योंकि फ़िल्म केवल मनोरंजन ही नहीं, व्यवसाय भी है।

परन्तु पहले हमें एक और भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न से जूझना होगा– देश और समाज की स्वार्थी, हृदयहीन पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए हम सब क्या कर सकते हैं?

–१०५, सुंदरनगर, कालीना, बंबई-९८

□

(पृष्ठ १२३ का शेषांश)

से बहुत दूर है। २–मथुरा में महाराष्ट्र समाज नहीं के समान रहा है दूसरी ओर इलाहाबाद में आज भी महाराष्ट्र जन का बहुतायत से निवास रहा है। उनका अपना एक सुदृढ़ संगठन है। यहां अपने पुत्र के संरक्षण का भार किसी विद्वान ब्राह्मण को सौंपना शिवाजी की दृष्टि में निश्चित ही उचित लगा होगा। महाराष्ट्र समाज के कारण उसकी सुरक्षा की अधिक चौकसी भी संभव रही।

– ७३ छोटी वासुकि, दारागंज, इलाहाबाद – ६

□

बाल-चित्रकार क्लिंट की शेष स्मृति

हसरत उन गुंचों पे हैं, जो बिन खिले मुरझा गये

'अम्मा, मैं शायद सो जाऊं और तुम बुलाओ तो शायद न बोलूं। घबड़ाना नहीं। मैं सिर्फ सो रहा हूंगा।' क्लिंट ने कहा। ठीक एक घंटे बाद वह अचेत था। फिर वह कभी नहीं जागा। दूसरे रोज़ वह मर गया। अज्ञात अंधेरी दुनिया में रंगों का राजकुमार विलीन हो गया! तारीख थी—१५ अप्रैल १९८३।

क्लिंट एडमॉण्ड टॉमस केवल छह बरस का था जब वह मरा, और उस जीवन में उसने कई हज़ार चित्र या रेखाचित्र बनाये। तेरह प्रतियोगिताओं में भाग लिया और अपनों से तीन गुनी उम्र वाले प्रतियोगियों को हराकर स्वर्ण-पदक जीते। तेरहवीं प्रतियोगिता में उसके आठ हज़ार प्रतिद्वंद्वी थे। उसने वह तेरहवीं प्रतियोगिता जीती जो अंतिम थी।

कोचीन स्थित सेंट्रल इंस्टीटयूट ऑफ फिशरीज़ टेक्नोलाजी के एक एकाउंट्स क्लर्क के एकलौते बेटे क्लिंट ने रेखा खींचना उस दिन शुरू किया था जिस दिन घुटनों के बल चलना। फर्श और दीवारें उसके कैनवास थे। भोर होते ही वह खिड़की पर खड़ा आकाश के लज्जारुण चेहरे को निहारता रहता था। वह रंगों का दीवाना था। अपने जीवन में पहले कुछ प्रश्न—'आकाश इतना रंगबिरंगा कैसे हो जाता है?' या 'यह रंग बन कैसे जाते हैं?' उसने पूछे थे!

क्लिंट : स्मृति शेष

एम. टी. जोसेफ ने अपने पुत्र को वह सब दिया था—वह सर्वोत्तम जो एक बाप दे सकता था—समझदारी और सहारा। चाक के टुकड़ों से क्लिंट ब्रश और स्केचपेन की ओर अग्रसर हुआ। ड्राइंग की कुछ किताबों, दुनिया भर के बच्चों की चित्रकला के कुछ नमूनों और पिता के दफ्तर के एक आर्टिस्ट और पड़ोसी के पथप्रदर्शन ने क्लिंट को केरल का एक अनोखा बालक बना दिया था।

'वह अति उदीयमान है' कुछ लोग कहते थे। कुछ तो विश्वास ही नहीं करते थे कि वे क्लिंट की कलाकृतियां हैं। लेकिन जब खुले मैदान में क्लिंट ने हज़ारों
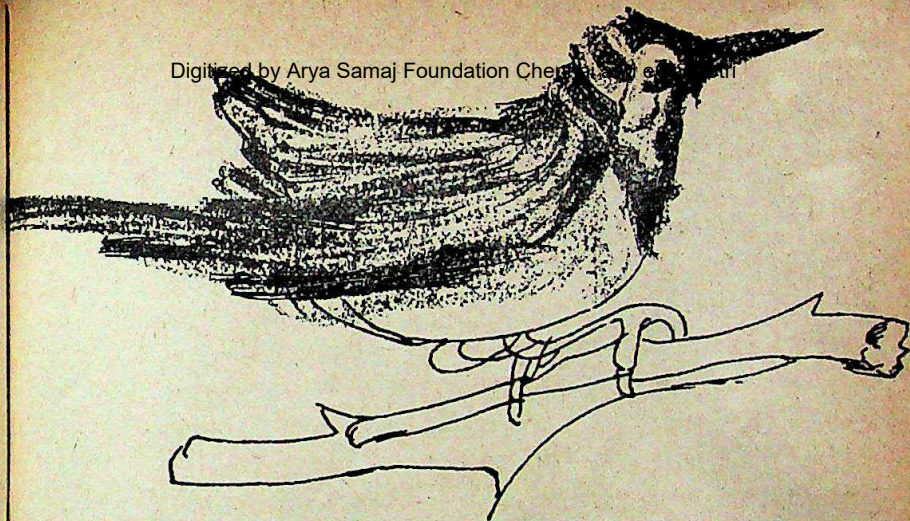
बाल-चित्रकार क्लिट रचित एक चित्र

दूसरे प्रतियोगियों को पछाड़ दिया जिसमें कुछ अट्ठारह वर्ष की आयु के थे, तब संदेह करने वाले लोगों की आवाज़ें बंद हो गयीं।

वह बच्चा अपनी आयु से अधिक परिपक्व था। वह बादल-बिजली से कभी डरा नहीं। वह खिड़की पर खड़ा प्रकृति के विकराल रूप भी देखता था और देखता था बादलों की आग उगलती भिड़ंत। फिर दो-चार दिन वह कागज़ पर उतारता रहता था वह सब जो उसने देखा था। बहुत से लोग देख-देखकर चित्र बनाते हैं पर क्लिट अपनी याददाश्त से ही सब चित्रित कर देता था। एक-दो लकीरें यहां-वहां और क्लिट एक ऐसी शक्ल तैयार कर देता जो जानदार चलती-फिरती दिखती थी।

हालांकि क्लिट ईसाई था पर मंदिर जाना भी उसे प्रिय था।

वह बाइबिल, रामायण और महाभारत से परिचित था। गणपति और अभिमन्यु भी उसके प्रिय विषय थे। उसकी सैकड़ों ड्राइंग गणपति की हैं जिनमें गणपति आधुनिक व्यंजनों का भी मजा ले रहे हैं।

घर पर वह कभी नहीं रोता था। पर एक वह समय आ गया था जब वह सफेद कपड़ों में किसी महिला को देखकर धाड़ मारकर रोने लगता था। वह अस्पताल की नर्सों से बहुत डरता था।

तीन बरस की आयु से छह बरस तक गुर्दों के रोग के कारण वह एक बीमार बच्चा था, और उसके मां-बाप उसे बाहर की दुनिया दिखाने अक्सर नहीं ले जा पाते थे। चूंकि उसकी बहुत-सी ज़िंदगी खिड़की पर आकाश और पक्षी ताकते बीती थी इसलिए यही दोनों उसके प्रिय विषय बन गये थे। क्लिट की रचनाओं में बहुत-सी ड्राइंग चिड़ियों की हैं, जिनमें से बहुत-सी

चिड़ियां अकेली-अकेली हैं। वह भी तो अपने खयालों में खोया हुआ एक बीमार बच्चा था—अकेला-अकेला !

'घर-बनाओ' बच्चों के खेल के सामान से क्लिट ने अपने मरने के ठीक एक दिन पहले एक कब्र और एक क्रास बनाया था। उस कब्र को कुछ देर वह ताकता रहा फिर ताबड़तोड़ अपने हाथों से सब तोड़ डाला। फिर नयी कब्र और नया क्रास और फिर टुकड़े-टुकड़े ! क्या वह कब्र के साथ खेलवाड़ कर रहा था, जब मौत ने उसके साथ खेलना शुरू कर दिया था ? मां ने वह सब देखा था — कब्र और क्रास का बनाना और बिगाड़ना और उसे टोका था—'क्रास से ऐसा खेल मत करो।'

'ठीक है,' कोमल आवाज़ में उसने उत्तर दिया।

उसी शाम बच्चों की पत्रिका 'बालरमा' से 'अंत्येष्टि' कहानी पढ़कर सुनाने का उसने मां से आग्रह किया था। 'समय के रथ पर सवार मैं स्वर्ग सिधार रहा हूं' इस गीत के माने भी उसने अपने पिता से पूछे थे। अचेत होने से पहले वह 'जीसस' नाम की चित्रकथा निकाल लाया था और सूली चढ़ने के समय का विवरण मां से पढ़ने को कहा था—

'जीसस अपने राज्य में तू मेरी याद रखना।'

'आज तू मेरे साथ स्वर्ग में होगा' जीसस ने उत्तर में कहा था.

यह सुनने के बाद रंगों का राजकुमार क्लिट बोला—'अम्मा ! यह फिर पढ़ो। बार-बार पढ़ो।'

और फिर सदा के लिए उसने अपनी आंखें मूंद लीं !

[मैक्सवेल फर्नांडिस के एक आलेख का सुमन चंदेल द्वारा हिंदी रूपांतर]

□

एक बार तथागत भ्रमण कर रहे थे। गड़रिया भेड़ बकरियों समेत मार्ग पर जा रहा था। तथागत की आंखें टिक गयीं एक मेमने पर। लंगड़ाकर घिसट रहा था वह। महाभिक्षु ने उसे उठा लिया और चल पड़े उसी दिशा में।

'अगर मेमने के पैदल चलने से आप द्रवित हैं, तो पूरे झुंड के बलिदान से आपको कैसा लगेगा ? महाराज अजातशत्रु के महायज्ञ में ये आहुति चढ़ेंगे।' गड़रिया बोला।

भिक्षु भी यज्ञस्थल की ओर ही मुड़ गया। अजातशत्रु देखते ही हतप्रभ हो बोला, 'प्रायश्चित का अनुष्ठान अनंत बलिदान देकर कर रहा हूं।'

'फिर मेरी बलि क्यों नहीं देते ?' तथागत के मुंह से शब्द फूटे, 'वहां पहुंचकर धर्मराज की अदालत में तुम्हारे पक्ष में कुछ बोल भी सकूंगा, ये निरीह मूक पशु क्या कर पायेंगे ?' बलि-अनुष्ठान बंद हो गया। पशु मुक्त कर दिये गये।

—डा० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

□

बाल कहानी :

हीरे का दिल

□ रवीन्द्र गिन्नौरे

बहुत समय पहले की बात है। सुलतानपुर नामक गांव में एक निर्धन कुम्हार रहता था। उसके चार पुत्र और तीन पुत्रियां थीं। परिवार बड़ा होने के कारण उसका निर्वाह बड़ी कठनाई से होता था। वह हर समय काम में व्यस्त रहता था। ताकि उसको तथा उसके परिवार वालों को भरपेट भोजन मिल सके।

वह रोज जंगल में जाता और बर्तन बनाने के लिए वहां से अच्छी मिट्टी खोद कर लाता। एक दिन वह बोरे में मिट्टी भर रहा था, तो देखा कि मिट्टी के साथ एक चमकदार पत्थर भी है। उसे वह पत्थर बड़ा आकर्षक लगा और उसने उसे अपने गधे के गले में बांध दिया।

एक दिन जब वह मिट्टी के बर्तन लाद कर शहर की ओर जा रहा था, तो एक

जौहरी की नज़र उस हीरे पर पड़ी, जो गधे के गले में बंधा था। उसने झट कुम्हार को पुकार कर कहा–'अरे भाई, जरा इधर तो आना।' कुम्हार अपने गधे को हांकते हुए उसके पास पहुंचा।

जौहरी ने गधे के गले में बंधे हीरे की ओर इशारा करते हुए पूछा–'क्यों भाई इस पत्थर की क्या कीमत लोगे ?'

कुम्हार बोला, 'मैं तो इसका मूल्य नहीं जानता, आप जो चाहें दे दें।'

जौहरी ने पूछा–'तुम दिनभर में कितना कमा लेते हो ?'

'बड़ी कठनाई से दिनभर में चार-छः आने कमा लेता हूं।' कुम्हार ने उत्तर दिया।

जौहरी ने अपनी तिजोरी से तुरंत एक रुपया निकाला और उसे कुम्हार को देते हुए कहा–'लो एक रुपया और वह चमकीला पत्थर और पूरे बर्तन मुझे दे दो।'

कुम्हार इस सौदे से बड़ा प्रसन्न हुआ कि आज उसे दुगनी-तिगुनी आमदनी हो गयी। खुशी से रुपया लेकर वह अपने भाग्य को सराहता हुआ अपने घर चला गया।

कुम्हार के जाने के बाद जौहरी ने बड़ी खुशी में भरकर कुम्हार से प्राप्त बर्तनों
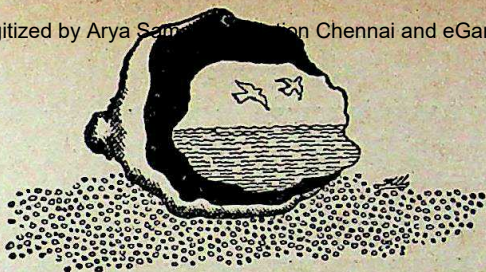
को लात मार-मारकर वहीं फोड़ दिया और हीरे को लेकर घर के अंदर चला गया। हीरे को तराशकर उसने उसे स्वच्छ मखमली डिब्बे में रख दिया। हीरा अब पहले से अधिक चमकने लगा था। उसे देखकर जौहरी में अनुमान लगाया कि इसकी कीमत अब दस लाख रुपये से कम नहीं है। इसे बेचकर मैं मालामाल हो जाऊंगा।

कुछ दिन बाद एक ग्राहक आया। जौहरी ने बढ़-चढ़कर हीरे की तारीफ की और कहा–'मैं उसे दस लाख रुपये से कम में नहीं दूंगा।'

'ठीक है दस लाख रुपये ले लेना, पर, मैं उसे देखूं तो।' ग्राहक ने कहा।

जौहरी ने हीरे की डिब्बी उठायी तो देखता है कि उस दुर्लभ हीरे के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। जौहरी की आंखों में आंसू आ गये। वह उदास हो गया और सोचने लगा कि मैंने इसे कुम्हार के गधे से लेकर मखमल की डिब्बी में रखा था, जब यह गधे के गले में बंधा था, तब क्यों नहीं फूटा?

जौहरी की चतुरतापूर्ण बातों को सुनकर उस हीरे से आवाज़ आयी और उसने जौहरी को फटकारते हुए कहा–'मैं चाहता था कि कुम्हार मेरी बदौलत धनवान हो जाये; परंतु कुम्हार तो मूर्ख था, उसे मेरी कीमत का पता नहीं था। तुमने मेरे बदले उसे जो दिया, उसने स्वीकार कर लिया और साथ में उसके पूरे बर्तन ले लिये जो तुमने लात मार-मारकर फोड़ दिये। मेरा दिल उसी समय टुकड़े-टुकड़े हो गया था जब हर्षोन्मत्त होकर तुम उसके बर्तन फोड़ रहे थे। हीरे के पारखी होते हुए तुमने मेरी कीमत एक रुपये से कम लगायी, भला मेरा दिल इसे कैसे बर्दाश्त करता? और बार-बार तुमने मुझे पत्थर कहा।'

हीरे की बात सुनकर जौहरी दंग रह गया। वह अपनी धूर्तता पर खीजने लगा और रोने लगा। हीरे के साथ कुम्हार का भाग्य जुड़ा था, जो उसने छीन लिया था। काश, यदि वह कुम्हार को हीरे की सही कीमत दे देता तो उसके साथ मेरा भाग्य भी बनता। उसके साथ मेरा भाग्य जुड़ा था। परंतु वह अपने लालच को काबू में नहीं रख सका, जिसके कारण लाखों रुपये उसके हाथ में आते-आते रह गये।

–'पर्णकुटीर', गांधी मंदिर रोड,
भाटापारा, म. प्र.

□

(पृष्ठ ५१ का शेषांश)

दो स्थलों पर आये विवरण के आधार पर भी यह नहीं कहना चाहते हैं कि सिरसा कवि का जन्मस्थल होने का दावा नहीं रखता। हम तो यह चाहते हैं कि महाकवि कालिदास के काव्यों के आधार पर निष्पक्ष निर्णय लिया जाये कि जिन-जिन स्थलों का वर्णन कवि ने किया है वे स्थल कहां हैं? उनकी भौगोलिक स्थिति क्या है? और किन स्थलों के प्रति कवि का जन्म-भूमि वाला अपनत्व और ममत्व प्राप्त होता है। गहन मनन-चिंतन कर निष्कर्ष निकाला जाये। यह उचित नहीं लगता कि महाकवि के एक-एक पद को लेकर उनके काव्य को या वर्णित स्थलों को नोचा-खरोंचा जाये। विद्वता की थाह नहीं होती। हम इन विद्वानों का पर्याप्त आदर भी करते हैं पर भौगोलिक सत्य को झुठला-कर विद्वता की कोरी धाक जमाना किसी विद्वान के लिए भी श्रेयस्कर नहीं समझते।

हमने पहले ही कहा कि हम दुराग्रह नहीं कर रहे हैं परंतु सत्य से भी पीछे नहीं हटना चाहते। महाकवि ने मालवा में रहकर गढ़वाल हिमालय की हर कंदरा, हर नदी-नाले, पर्वत-शृंखला और स्थान-स्थान का जितना सरस और हृदयग्राही ममत्वपूर्ण वर्णन किया है उतना किसी भी स्थान का नहीं किया। मातृभूमि से दूर रहकर मातृभूमि की जो तड़प उनके काव्य में गढ़वाल हिमालय के लिए है, वह अन्य किसी स्थान के लिए नहीं मिलता। मालवा में उनके रहने को सभी स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में मालवा, उज्जयिनी, विदिशा और अन्य स्थानों का आंखों देखा वर्णन करना कठिन नहीं है। कठिन तो कनखल से ऊपर और कैलास से नीचे के हर पग-पग का वर्णन करना है। यदि कवि उन स्थानों से परिचित और जन्मभूमि का भाव नहीं रखता तो वह ऐसा सुंदर और सरस वर्णन कैसे कर सकता था?

मातृभूमि से कवि का निर्वासन हुआ—वह जीवनपर्यंत अपनी पहाड़ियों, घाटियों, नदी-कंदराओं में पुनः लौट न सका। उन नदियों, घाटियों, नदी-तटों और गुफाओं में बिताये हुए क्षणों को वह अपने स्मृतिपटल से जुदा न कर सका। उनके काव्य में वही स्थल जीवन्त होकर काव्य की निधि बन गये हैं। प्रत्येक बदरी-केदार का यात्री यातायात के साधन उपलब्ध हो जाने पर आज भी बड़ी कठिनाई से उस क्षेत्र में जाने में सफल होता है। जबकि कवि के काव्य में वहां की पहाड़ियों की चोटियों पर स्थित तालों का, रास्ते से हटकर दुर्गम चट्टानों पर प्राकृतिक ढंग की गुफाओं का, पहाड़ की चोटी पर पैरों के चिह्नों का, नदी घाटी के स्थलों का, फूल-घाटियों का, गुफाओं के आगे बादलों के दरवाजे बन जाने का, पहाड़ के मकानों की छतों पर धुवां निकलने के मार्ग 'धुंवारों' का, केदारनाथ के समीप नदी-पर्वत का, रामबाग के पास वाले झरने का और गौरी-

कुंड आदि का जो आंखों देखा सूक्ष्म वर्णन आज भी मिलता है, वह स्वयं सिद्ध करता है कि महाकवि इस घाटी के मूल निवासी थे। यदि वे गढ़वाली न होते तो जब लोग इस क्षेत्र में जाने की कल्पना भी नहीं करते थे तब कवि ने ऐसे स्थलों का सजीव वर्णन किस प्रकार किया ? अन्यत्र ऐसे स्थलों की कल्पना भी नहीं की जा सकती जबकि यातायात सुलभ हो जाने पर हर भारतीय नागरिक 'मेघदूत', 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'कुमारसंभव' एवं 'विक्रमोर्वशीयम' आदि रचनाओं में वर्णित स्थलों को गढ़वाल में आज भी हूबहू उसी रूप में देख सकता है।

अस्तु, हमारा कहना है कि महाकवि कालिदास गढ़वाली थे। परंतु यदि उनके साहित्य के आधार पर कुछ और मान्यता विद्वान कर सकें तो हम स्वागत करेंगे परंतु तथ्यों को तोड़-मरोड़कर और भौगोलिक सत्यता को झुठलाकर यदि कोई निर्णय लिया गया तो वह महाकवि कालिदास के साथ घोर अन्याय होगा। महाकवि कालिदास ने भारत को अपने हिमालयी साहित्य के माध्यम से हिमालय से भी ऊंचा गौरव प्रदान किया है।

हमारा विनम्र आग्रह है कि गढ़वाल हिमालय के इस वरदपुत्र का सम्मान, भारत-हिमालय जैसी ऊंची विचारणा और गंगा जैसी निर्मल भावना से करेगा, ताकि केदार और गंगा-मंदाकिनी के इस बेटे (महाकवि कालिदास) को 'गढ़वाल' का होने का गौरव प्राप्त हो सके।

—१ कालिदास मार्ग, लखनऊ, उ. प्र

□

(पृष्ठ ६२ का शेषांश)

रामायण में गहरी आस्था रखते हैं, इस प्रभाव को सुव्यक्त करने वाली पांडुलिपियों, कलाकृतियों आदि को प्राप्त करने और उन्हें मंदिर में प्रदर्शित करने के प्रयास भी चल रहे हैं। मंदिर के सामने बने उद्यान में स्विट्जरलैंड से आयातित एक पुष्पघड़ी को रखा जायेगा।

राजधानी से १९० किलोमीटर तथा हरिद्वार से सप्त सरोवर मार्ग पर ४ किलोमीटर पर निर्मित हो रहे इस मंदिर की ऊंचाई १७७ फुट होगी, तथा प्रत्येक तल का आकार ८०' × ४०' होगा।

मंदिर से लगी 'समन्वय कुटीर' में निःशुल्क छात्रावास पुस्तकालय, अन्नभंडार, अतिथिगृह, संत-निवास आदि की व्यवस्था भी होगी। छात्रावास में रहने वाले संस्कृत के छात्रों को निःशुल्क भोजन, वस्त्र, औषधि तथा पुस्तकें आदि प्रदान की जायेंगी। मंदिर का कार्यसंचालन एक सेवा-न्यास करेगा। मंदिर में आने वाले साधु-संतों को निःशुल्क भोजन तथा निवास देने की भी व्यवस्था की जायेगी।

भारतमाता जिन तत्त्वों, आदर्शों तथा मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है, उन सबकी प्रतीकात्मक तथा सात्विक अभिव्यक्तियां इस मंदिर में दर्शनार्थ उपलब्ध रहेंगी।

□

नवनीत : आपकी निगाह में

□

नवनीत जून '८३ का अंक पढ़कर मन तृप्त हो गया। मेरे पास शब्द नहीं जो मैं **नवनीत** के बारे में कह सकूं। इसका कवर, कागज़, छपाई और सामग्री सब उच्च कोटि के हैं। **नवनीत** एक सुंदर व प्रेरणादायक पत्रिका है।

—स्वामीशरण सतसंगी, लुधियाना, पंजाब

०००

आकर्षक आवरण के साथ **नवनीत** का अगस्त १९८३ का अंक बहुत ही रोचक, मनोरंजक, प्रेरणादायक, शिक्षाप्रद एवं उपयोगी रहा। 'बुढ़ापा और आंखें,' 'तीर्थाटन और सांस्कृतिक परंपरा', 'भारतीय अस्मिता के वैतालिक तुलसीदास', 'एक झांकी आसाम की' रचनाएं विशेष अच्छी लगीं। 'तीर्थाटन और सांस्कृतिक परंपरा' लेख महत्वपूर्ण है। निश्चय ही भारत के तीर्थ, पवित्र नदियां, विशाल पर्वत, सांस्कृतिक परंपराएं, धार्मिक आख्यान, देवता तथा महापुरुष आदि प्राचीन काल से देश की भावात्मक एकता के आधार रहे हैं।

—शकुनचंद विशारद, रायबरेली, उ. प्र.

०००

जबसे आपके **नवनीत** का प्रकाशन आरंभ हुआ है, तभी से मैं उसका नियमित रूप से पाठक एवं प्रशंसक रहा हूं। मैंने पिछले अंकों का संग्रह भी किया है। मई अंक में 'आनंद के आयाम' श्रीप्रकाश त्रिपाठी द्वारा लिखित एक बहुत ही सुंदर और चिंतन प्रधान लेख है। आज के संदर्भ में ऐसे ही लेखों की आवश्यकता है। 'तनाव से बचो सुख से जियो' लेख भी उपयोगी है। जून '८३ के अंक में डा. रघुवंश द्वारा लिखित 'हमारा मूल्य निरपेक्ष व्यक्तिवाद' विद्वातापूर्ण लेख है। जहां **नवनीत** जुलाई '८३ में 'आत्मा, जीवात्मा तथा पुनर्जन्म' जैसा लेख छपा है, वहीं 'ये बीयर बार कन्याएं' और 'तलाश के हाशिये' जैसा कथा साहित्य **नवनीत** जैसी पत्रिका के लिए कलंक ही है। कथा-साहित्य की सार्थकता यथार्थ को उजागर करने में ही नहीं, परंतु आदर्श मूल्यों की स्थापना में है।

— बालस्वरूप गुप्त, आगरा, उ. प्र.

०००

नवनीत समस्त भारत का प्रतिनिधित्व करनेवाली उत्कृष्टतम पत्रिका है। जुलाई '८३ का अंक तो सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट है। पत्रिका की उत्तरोत्तर स्तर-वृद्धि के लिए शुभकामनाएं।

—आचार्य लेखराम शर्मा, सोलन, हि. प्र.

०००

नवनीत में प्रकाशित सभी सामग्री सुरुचिपूर्ण, ज्ञानवर्द्धक, ओजपूर्ण तथा विचारणीय होती है। गवेषणात्मक जान-

कारी हेतु प्रत्येक भारतीय को यह पत्रिका अवश्य ही नियमित पढ़नी चाहिये।

—राकेशकुमार शर्मा, बलिया, उ. प्र.

०००

जुलाई '८३ का **नवनीत** एक संग्रहणीय दस्तावेज़ लगा। 'अतींद्रिय चेतना' जैसे लेख पढ़कर अनेक नवीन जानकारियां हुईं, वहीं एक आत्मशक्ति का अनुभव भी हुआ। मुंशी प्रेमचंद का लेख 'हिंदू संस्कृति और लोकहित' तो वाकई एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इसे पढ़कर कहानी-सम्राट के हृदय के छिपे हुए देश-भक्तिपूर्ण आध्यात्मिक विचारों का एक नये रूप में अनुभव हुआ।

—राजनारायण बोहरे, गुना, म. प्र.

०००

नवनीत का अगस्त '८३ में 'आड़ू का पेड़' अस्मिता का तलस्पर्शी आत्मसाक्षात्कार है। विष्णु प्रभाकरजी का निबंध सांस्कृतिक परंपरा से मिथकीय परंपरा के शीर्षक में कैसे पहुंच गया! डॉ. आर. के. कपूर और इंदुभूषण पांडेय अपनी रचनाओं के लिए अभिनंदनीय हैं। शिव-कुटीलाल वर्मा की कविता हृदयस्पर्शी है।

—ओंकारनाथ मिश्र, लखीमपुर-खीरी, उ. प्र.

०००

नवनीत जुलाई '८३ का अंक पढ़ा। हर माह इतनी सुंदर व सरस पठनीय सामग्री अन्य पत्रिकाओं में दुर्लभ है। यदि कहानियों की संख्या बढ़ा दी जाये तो उचित होगा। डॉ. विद्यानिवास मिश्र का 'सूर की भाव-भाषा' ने काफी प्रभावित किया। निर्मल कुमार की कहानी 'अंध-विश्वास' का शीर्षक 'विश्वास' होता तो तो ज़्यादा उपयुक्त रहता।

—डॉ. ओ. पी. भट्ट, बड़ीसादड़ी, राजस्थान

०००

नवनीत जुलाई '८३ अंक में 'पाब्लो पिकासो : होक्स या जीनियस' शीर्षक से प्रकाशित देवेंद्र इस्सर का जीवनी-परक लेख महान कलाकार पिकासो के बारे में कई नवीन जानकारियां देता है। लेखक को बधाई। पाब्लो पिकासो का पूरा नाम पाब्लो दियेगो जोस फ्रांसिस्को दे पाला जुआन नेपोमुसोनो मारिया दे लो रेमेदियोअ सिप्रियानो दे लो सान्तिसिमा त्रिनिदाद था। मृत्यु के समय पिकासो की कुल संपत्ति थी—आठ अरब रुपये। पिकासो का कहना था—'बहुत-से चित्रकार सूरज की प्रतिकृति बनाकर चाहते हैं, वह सूरज की तरह दिखे। मैं एक पीला धब्बा बनाता हूं और चाहता हूं कि सूरज उसकी तरह दिखे।'

—तुलसी नीलकंठ, मुजफ्फरनगर, उ. प्र.

०००

नवनीत का पुराना पाठक हूं। उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह कम ही है। जून '८३ अंक में प्रकाशित अनेक रचनाएं मुझे बेहद पसंद हैं। इस अंक में प्रकाशित विनोद शंकर शुक्ल का लेख 'शोधं शरणं गच्छामि' विशेष रुचा। लेकिन, रवींद्रनाथ की पंक्तियां जिस प्रसंग में उद्धृत की

गयी हैं, उसमें व्यंग्य की बातें ही अधिक लगती हैं, वैसे पंक्तियां हैं अत्यंत सार-गर्भित। साहित्यकार की सबसे बड़ी सफलता है अपने पाठक पर उसका प्रभाव। इस दृष्टि से विमल मित्र की कहानी काफी सफल कही जा सकती है। एम. आर. गुप्त के चुटकुले में 'सुई गिरने की आवाज भी कानों को सुनायी न दे' में 'न' का प्रयोग ज्यादा लगता है। पृष्ठ ३ पर 'गलती पर न झुकने वाले विवाहित होते हैं।' इसमें 'न' शब्द पहले आना चाहिये; तब पंक्ति होगी 'न गलती पर (भी) झुकने वाले विवाहित होते हैं।' आशा है **नवनीत** पत्रिका आनेवाले वर्षों में और भी अधिक लोकप्रिय होगी।

—हृषीकेश, मुजफ्फरपुर, बिहार

०००

नवनीत आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक चिंतन में कीर्तिमान स्थापित करता जा रहा है। हिंदी में वर्तमान में **नवनीत** ही पठनीय पत्रिका है। जुलाई '८३ के अंक में डॉ. रामलोचन सिंह की भेंट अत्यंत सटीक व्यावहारिक व सत्य है। समस्याओं का समाधान भारतीय संदर्भों एवं मूल्यों में खोजा जाये तो अच्छे परिणाम अवश्य उपलब्ध होंगे। भविष्य में भी ऐसी उपयोगी रचनाएं प्रकाशित करते रहें।

—मधुसूदन व्यास, जालोर, राजस्थान

०००

मैं **नवनीत** का कई वर्षों से नियमित पाठक हूं। जुलाई '८३ का अंक बहुत पसंद आया। इस अंक में कथाकार प्रेमचंद का 'हिंदू संस्कृति और लोकहित' तथा दीवान रामचंद्र कपूर का 'आत्मा, जीवात्मा तथा पुनर्जन्म' हमारी संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले अच्छे लेख हैं। कु. मनीषा वियाला द्वारा लिखित 'ये बीयर बार कन्याएं' आज के नारी जीवन की विवशता की यथार्थ झलक प्रस्तुत करता है। **नवनीत** में पिछले अंकों से लगातार सुधार देख रहा हूं।

—परमानंद शर्मा, नाहन, हि. प्र.

०००

नवनीत का जुलाई '८३ अंक पढ़ा। डॉ. विद्यानिवास मिश्र के लेख 'सूर की भाव-भाषा' को काल्पनिक धरातल पर लें तो ऐसा लगता है कि जैसे टी. वी. देख रहे हों, और वास्तविक धरातल पर लें तो लगता है लेखक ने यह सब अपनी आंखों से देखा है। ऐसे लेख ही **नवनीत** की प्रगति में वृद्धि कर चार चांद लगा सकते हैं।

—शैलेंद्रनाथ त्रिवेदी, सनावद, म. प्र.

०००

नवनीत साहित्य, संस्कृति, अध्यात्म, विज्ञान और दर्शन के अभिनव आयामों को जिस तरह से प्रस्तुत कर रहा है, वे आज की आस्थाहीन दिशाहारी स्थितियों में जी रही मानवीय नियति के लिए तपन में शीतल मंद बयार है। **नवनीत** का प्रत्येक अंक भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल और गरिमामय पक्ष को जिस एकात्म

भाव से प्रकट कर रहा है, वह वंदनीय है।

—डा. श्याम सुंदर दुबे, हटा, दमोह

०००

मैं **नवनीत** का गत दो वर्षों से नियमित पाठक हूं। प्रथम दर्शन में ही मैंने इसे अपना जीवन-साथी मान लिया था। कदाचित् भरसक प्रयत्न के बाद भी जब अंक उपलब्ध नहीं हो पाता तो बड़ी निराशा होती है। उसका प्रत्येक अंक सुरुचिपूर्ण ज्ञानवर्धक व संग्रहणीय होता है। निःसंदेह **नवनीत** अंतरराष्ट्रीय स्तर की श्रेष्ठ पत्रिका है। जुलाई '८३ का अंक पढ़ा। 'अंधविश्वास' एवं हेमिंग्वे की कहानी 'तितली और टैंक' अच्छी लगीं। 'क्या हम शिक्षित हुए हैं?', 'सूर की भावभाषा' तथा 'पन्ना आद्य एवं आद्यतन' श्रेष्ठ लेख हैं। **नवनीत** को इस स्तर तक पहुंचाने के लिए आपको कोटिशः धन्यवाद।

—आचार्य सूरज प्रसाद शुक्ल, खंडेह, हमीरपुर, उ. प्र.

०००

नवनीत का नवंबर १९८२ से नियमित पाठक हूं और इसका हर अंक सुरक्षित रूप से मेरे पास रखा हुआ है। **नवनीत** के लेख, ऐतिहासिक तथ्य, लोगों के संस्मरण तथा जीवन-गाथा मेरे लिए संतुष्टिदायक हैं और ऐसी सामग्री से ज्ञान-भंडार में नयी जानकारियों का समावेश होता है। जुलाई '८३ अंक में डॉ. रामलोचन सिंह से भेंट में प्राप्त तथ्य सत्य का उद्‌बोध करते हैं और इनके द्वारा सुझाये कदम निःसंदेह अनुकरणीय हैं। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का लेख स्थिति का बेबाक विवेचन करता है। एक शिकायत भी है कि **नवनीत** के कुछ अंक कभी-कभी विलंब से मिलते हैं। कृपया ऐसा प्रयास करें कि इसकी प्रति हमें प्रत्येक माह की १० तारीख तक मिल सके। साथ ही स्वास्थ्य चर्चा को नियमित करें व मानव की नवीन उपलब्धियों के विषय में भी जानकारी देनेवाले कुछ पृष्ठ **नवनीत** में शामिल करें।

—ए. के. जैन, मथुरा

०००

नवनीत से मुझे शुरू से ही लगाव रहा। इसका हर अंक बड़े प्रयासों से सजा मिलता है। जुलाई '८३ के अंक में 'हिंदू संस्कृति और लोकहित' भारतीयों को श्रेष्ठतर व नींद में से झिंझोड़ने तथा 'क्या हम शिक्षित हुए हैं' शिक्षकों व समाज का भंडाफोड़ करनेवाली रचनाएं हैं। तीसरी कक्षा तक की कुंजियां और 'ऑल इन वन' लिखना एवं धड़ाधड़ छप रहा घासलेटी साहित्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'ये बीयर बार कन्याएं' समाज की छवि निखारने वाली है तो 'तलाश के हाशिये' नारी पर तरस के आंसू बहाने वाली रचना है। पत्रिका की सामग्री का संकलन प्रशंसा योग्य है।

—छगनलाल व्यास, समदड़ी, बाड़मेर, राजस्थान

□

भारतीय विद्या भवन

पुस्तक बिक्री विभाग

भवन के चुने हुए हिन्दी प्रकाशन

शीर्षक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१–कृष्णं वन्दे जगद् गुरुम् (कलात्मक सज्जा, सचित्र : प्लास्टिक आवरण के साथ : रियायती मूल्य)	घनश्यामदास बिरला	१२३	रु. १०-००
२–बापू की प्रेम प्रसादी (चार खंडों में : कड़े कपड़े की जिल्द : रियायती मूल्य) (प्रथम खंड अप्राप्य)	"	१-५१५ २-४१८ ३-४०८ ४-४९२	रु. १०-०० प्रत्येक खंड
३–भगवान स्वामिनारायण के वचनामृत	अनुवाद : रामवल्लभ शास्त्री	६४२	६०-००
४–श्रीवेणुगीतम्	आर. कलाधर भट्ट	२८७	३५-००
५–योग और विद्यार्थी	योगाचार्य हंसराज यादव	२०४	१२-५०
६–राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल	आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री	२६०	१०-००
७–विश्वनागरी	रामेश्वर कन्हैयालाल लोहिया	८२	१५-००
८–भारतीय विद्या	डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर	१२६	६-००
९–विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर	इलाचन्द्र जोशी	२८२	४-००
१०–प्राचीन भारतीय मनोरंजन	मन्मथ राय	३३९	५-२५
११–भारतीय संस्कृत और इतिहास	डा. बैजनाथ पुरी	२५२	५-००
१२–भारतीय संविधान के सिद्धान्त	चन्द्रभान अग्रवाल	३५७	१०-००
१३–रवीन्द्र रत्नाकर	रघुवंशलाल गुप्त	१८४	५-००
१४–बद्रीनाथ की ओर	क. मा. मुन्शी	६६	१-००
१५–गीता का प्रेरक तत्व जीवन योग	काका साहेब कालेलकर	३८	१-००
१६–महानता के दृष्टान्त	योगाचार्य हंसराज यादव	१३२	३-००

प्राप्ति स्थान :

भारतीय विद्या भवन, कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई–४०० ००७

तथा उसके सभी केन्द्रों पर

कब्ज़

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन उठते ही शौच जाना चाहिए। यह एक अत्यावश्यक कार्य है और दैनिक जीवन का एक अंग है।

जिन व्यक्तियों की पाचनक्रिया बिगड़ जाती है, तो पेट में वायु पैदा होने लगती है और यह वायु आंतों में संचित मल को सुखा देती है जिससे कि कब्ज की शिकायत पैदा होती है और जब यह शिकायत निरंतर अधिक समय तक बनी रहती है तो अन्य अनेक उपद्रव पैदा हो जाते हैं।

उपद्रव : पेट में वायु की शिकायत, पेट का फूलना, भूख न लगना, अरुचि, जी मिचलाना, खट्टी डाकरें आना या वायु की डकार आना, शरीर में शिथिलता, काम में मन न लगना, निरुत्साह और बेचैनी तथा मुंह में छाले आदि अनेक शिकायतें पैदा हो जाती हैं।

उपाय : ऐसी स्थिति में प्रातःकाल उठते ही एक गिलास रात का रखा हुआ पानी पीना चाहिए और रात को सोते समय एक गिलास गरम दूध पीना चाहिए इसमें मुनक्का भी डाल सकते हैं।

औषधियों में हरड़ को एरंड तेल में अच्छी तरह तलकर सुखाकर चूर्ण बनाकर रख लें। एक चम्मच की मात्रा रात को सोते समय गरम पानी के साथ प्रयोग करें।

सनाय की पत्तियों का चूर्ण आधे चम्मच की मात्रा से गरम पानी के साथ लेवें।

एक गिलास गरम पानी में आधा नींबू का रस मिलाकर प्रातःकाल लेवें।

गुलकंद एक या दो चम्मच की मात्रा में खाकर ऊपर से गरम दूध पी लेना चाहिए।

एरंड तेल एक-दो चम्मच की मात्रा से गरम दूध में मिलाकर लेने से भी कब्ज दूर हो जाता है।

हरड़ का चूर्ण एक चम्मच, ईसबगोल की भूसी एक चम्मच मिलाकर गरम पानी के साथ लेना चाहिए।

☐

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क.मा. मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-[illegible] में मुद्रित।

Regd. No. BYW 203

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

सितंबर : १९८३
मूल्य : रु. २.७५

हिन्दी डाइजेस्ट

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया

भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :

कमलाक्ष शेणै

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३२; अंक : ९

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

सितंबर १९८३

चित्र-सज्जा : वी. एन. ओके, कमलाक्ष शेणै, नीता वैद्य, टी. ए. राणा, पवन-कुमार जैन, दिनेश सिसौदिया।

भारत की चमत्कारिक विजय

□ हरि

खेलों की दुनिया में ऐसा अविश्वसनीय और रोमांचक उलटाव शायद ही कभी देखने को मिला हो, जैसा हाल ही में तब देखने को मिला, जब भारत जैसी कमज़ोर क्रिकेट टीम ने, सब आशाओं से विपरीत, विश्व के सभी क्रिकेट-देशों को मात देकर, विश्व-विजेता पद प्राप्त किया।

'एक करिश्मा !'
'पूरब का जादू !'
'न भूतो, न भविष्यति !'
'अकल्पनीय एवं अविश्वसनीय !'

इन उद्‌गारों के साथ भारत ही नहीं, दुनिया भर के समाचारपत्रों ने हाल में इंग्लैण्ड में संपन्न हुई क्रिकेट की प्रूडैन्शियल विश्व कप प्रतियोगिता में भारत की चमत्कारिक एवं अविश्वसनीय तथा अकल्पनीय विजय का स्वागत किया था।

और यह विजय सचमुच इन उद्‌गारों और विशेषणों की हक़दार थी। खेलों की दुनिया में ऐसा अविश्वसनीय उलटाव कभी देखने को नहीं मिला था।

इस हैरत-अंगेज़ विजय को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए, हमें एकदम आरंभ से शुरू करना होगा।

१९७५ में इंग्लैण्ड की एक बीमा कंपनी—प्रूडैन्शियल बीमा कंपनी के तत्त्वावधान और प्रायोजन में प्रथम क्रिकेट विश्व कप प्रतियोगिता का आयोजन हुआ था। इसमें भारत के अलावा, इंग्लैण्ड, वेस्ट इंडीज, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया और पाकिस्तान ने भाग लिया था। इस प्रतियोगिता में फाइनल में वेस्ट इंडीज विजेता-पद पर आसीन हुआ था। १९७९ में हुई दूसरी विश्व कप प्रतियोगिता में भी विश्व कप का विजेता-पद वेस्ट इंडीज को ही मिला। और, इस तीसरी विश्व कप प्रतियोगिता में भी सबको वेस्ट इंडीज के ही विजयी होने की पूरी आशा थी। दांव लगाने वाले वेस्ट इंडीज की सर्वशक्तिशाली टीम के पक्ष में ६०-१ का दाव लगा रहे थे।

पिछली दो विश्व कप प्रतियोगिताओं में भारत का प्रदर्शन अत्यन्त शोचनीय रहा था। वह सिर्फ़ एक बार, पूर्व अफ्रीका जैसी नौसिखिया टीम को ही हराने में सफल हो सका था। इस बार, जब कपिलदेव के

नेतृत्व में भारतीय क्रिकेट दल विश्व कप प्रतियोगिता में गया, तो कुछ लोगों को आशा बंधी थी कि इस बार भारतीय दल का प्रदर्शन पहले से बेहतर रहेगा। इस आशा का आधार यह था कि कुछ महीने पूर्व, भारत ने वेस्ट इंडीज के दल को स्वयं वेस्ट इंडीज में एक दिन के मैच में पराजित कर क्रिकेट-प्रेमियों को चकित कर दिया था; इससे पूर्व, विश्व के किसी भी क्रिकेट दल ने वेस्ट इंडीज के शक्तिशाली और विजेता दल को एक दिन के सीमित ओवरों वाले मैच में पराजित नहीं किया था। इस सनसनीखेज़ विजय के आधार पर ही, १९८३ की विश्व कप प्रतियोगिता की शुरूआत से पहले, आस्ट्रेलिया के कप्तान किम ह्यूज ने संभावना व्यक्त की थी कि '१९८३ की विश्व कप प्रतियोगिता में भारत 'डार्क हॉर्स' (अनपेक्षित अभ्यर्थी) सिद्ध हो सकता है। किम की इस संभावना को दिलेर भारतीय खिलाड़ियों ने सच्चा कर दिखाया।

कपिलदेव विश्व कप के साथ

पहले ही मैच में विजय

इस प्रतियोगिता में भारत जिस लीग में था, उसमें उसके अलावा, वेस्ट इंडीज, आस्ट्रेलिया और जिम्बाब्वे की (जो पहली बार इस प्रतियोगिता में भाग ले रहा था) टीमें थीं। भारत को पहला मैच वेस्ट इंडीज से ही खेलना था, और सब यहीं आशा कर रहे थे कि भारत इस मैच में अवश्य हारेगा। किन्तु, भारत ने वेस्ट इंडीज को हराकर एक सनसनी मचा दी। पराजित कप्तान लॉयड ने इस पराजय को एक 'दुःस्वप्न' बताते हुए कहा कि 'इसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी।'
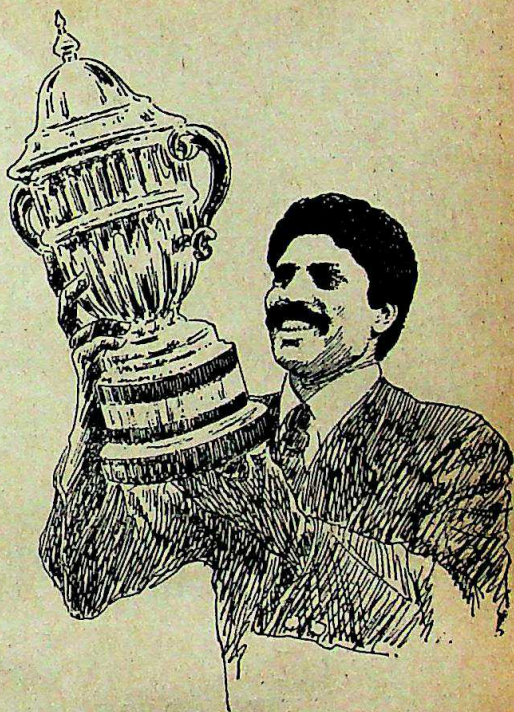
भारत ने अपना दूसरा मैच, जो जिम्बाब्वे के साथ था, बड़ी आसानी से जीत लिया। भारत की ही भांति अपने पहले ही मैच में अपनी प्रतिद्वन्द्वी टीम—आस्ट्रेलिया की

टीम—को अप्रत्याशित रूप से हराने वाली ज़िम्बाब्वे की टीम ने भारत के साथ जी-तोड़ संघर्ष किया, लेकिन उसे पराजित करने में असफल रही ।

मगर, इन दोनों जीतों से भारतीय टीम के जो हौसले बढ़े थे, वे अगले दो मैचों में मिली क़रारी हारों से पस्त हो गये । तीसरे मैच में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध भारत का प्रदर्शन अत्यन्त निर्जीव रहा । न उसके बल्लेबाज़ चमक पाये, और न गेंदबाज़ ।

इससे पूर्व, जो दो विश्व कप प्रतियोगिताएं आयोजित हुई थीं, उनमें प्रत्येक टीम ने अपनी प्रतिद्वन्द्वी टीम से सिर्फ़ एक-एक मैच खेला था । लेकिन तीसरी विश्व कप प्रतियोगिता में ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि प्रत्येक टीम अपनी प्रतिद्वन्द्वी टीम से दो-दो मैच खेले ।

इस व्यवस्था के अनुसार, जब भारत ने वेस्ट इंडीज के विरुद्ध अपना दूसरा प्रतिवर्ती मैच खेला, तो उसके खिलाड़ियों ने संघर्षपूर्ण खेल खेला, और यदि उसके मोहिन्दर और वेंगसरकर जैसे चोटी के बल्लेबाज़ घायल होकर खेलने में असमर्थ न हो जाते, तो अनेक निष्पक्ष खेल-समीक्षकों के अनुसार, भारत वेस्ट इंडीज को दुबारा हरा सकता था ।

ज़िम्बाब्वे के विरुद्ध भारत का प्रतिवर्ती मैच बड़ा नाटकीय और रोमांचक रहा । इस मैच ने सिद्ध कर दिया कि क्रिकेट कितना अनिश्चित खेल है, और उसमें पूर्वानुमान सदा काम नहीं करते ।

इस मैच में भारत ने पहले बल्लेबाज़ी शुरू की, लेकिन देखते ही देखते, उसके पांच विकेट सिर्फ़ १५ रनों पर उखड़ गये । जब तक कप्तान कपिलदेव पारी को कुछ संभालें, स्कोर सात विकेटों पर ७८ रन हो चुका था । किसी को भारत की जीत की आशा नहीं रही, और सबने यह मान लिया कि इस पराजय के बाद, भारत इस प्रतियोगिता से बाहर हो जायेगा, क्योंकि तब तक उसे दो मैचों में विजय प्राप्त कर, केवल ८ अंक प्राप्त हुए थे, जो उसे सेमीफाइनल तक पहुंचाने के लिए पर्याप्त नहीं थे ।

'करो या मरो' प्रदर्शन

लेकिन, इस मैच में कप्तान कपिलदेव ने अपने जीवन का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन करके, शानदार १७५ रन, अविजित रह कर, बनाये, और विश्व कप प्रतियोगिता में बल्लेबाज़ी का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया । छह छक्कों और १६ चौक्कों वाली इस चमकदार पारी के बारे में कप्तान कपिल ने बाद में कहा, 'मैदान में आते ही, मैंने तय कर लिया था कि यह मेरा 'करो या मरो' प्रदर्शन रहेगा। मैंने ठान लिया था कि मैं अकेले ही अपनी टीम को सुरक्षित स्थान पर ले जाऊंगा ।'

ज़िम्बाब्वे को हराने के बाद, सेमीफाइनल में प्रवेश करने के लिए भारत के लिए अनिवार्य था कि वह अपने अंतिम लीग प्रतिवर्ती मैच में आस्ट्रेलिया को भी हराये । वैसे, यदि भारत हार भी जाता,

तो भी उसे आस्ट्रेलिया को समान ८ अंक ही मिलते, लेकिन प्रति ओवर में बेहतर रन बनाने की दर के कारण, आस्ट्रेलिया को सेमी फाइनल में प्रवेश मिल जाता। लेकिन, एक और शानदार प्रदर्शन करके भारत ने आस्ट्रेलिया को प्रतियोगिता के न्यूनतम स्कोर–१२९–पर आउट करके तथा स्वयं उनसे सौ से अधिक रन बनाकर, सेमी फाइनल में प्रवेश किया, जहां उसका मुकाबला इंग्लैण्ड से, जिसके विश्व कप जीतने की भविष्यवाणी अनेक जानकार क्रिकेट-विशेषज्ञों ने की थी, और जो अब तक खेले गये ६ मैचों में से सिर्फ़ एक मैच–न्यूज़ीलैण्ड के विरुद्ध–हारा था, होना था।

इस मैच में भी भारत के जीतने की आशा कपिलदेव और उसके साथियों को छोड़ कर, किसी को न थी। लेकिन अपने शौर्यपूर्ण प्रदर्शन के बल पर, भारतीय टीम ने एक और चमत्कारिक प्रदर्शन किया, और बड़े रोमांचक ढंग से इंग्लैण्ड पर विजय प्राप्त कर, इंग्लैण्ड के लाखों समर्थकों की आकांक्षाओं को ध्वस्त कर दिया। उन दाव लगाने वाले व्यापारियों की भी भारी हानि हुई, जो ६०-१ से इंग्लैण्ड की विजय की राशि स्वीकार रहे थे।

और अंत में . . . हारी बाजी जीती !

लगातार दो मैचों में विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली टीमों–आस्ट्रेलिया और इंग्लैण्ड–को निश्चयात्मक ढंग से पराजित कर, भारत को फाइनल में वेस्ट इंडीज से जूझना था। दाव लगाने वाले वेस्ट इंडीज पर ४० और भारत पर १ का दाव लगा रहे थे। वेस्ट इंडीज के कप्तान क्लाइव लॉयड ने घोषणा की कि उनकी टीम तीसरी बार विश्व कप जीतकर, 'हैट-ट्रिक' करके दिखायेगी।
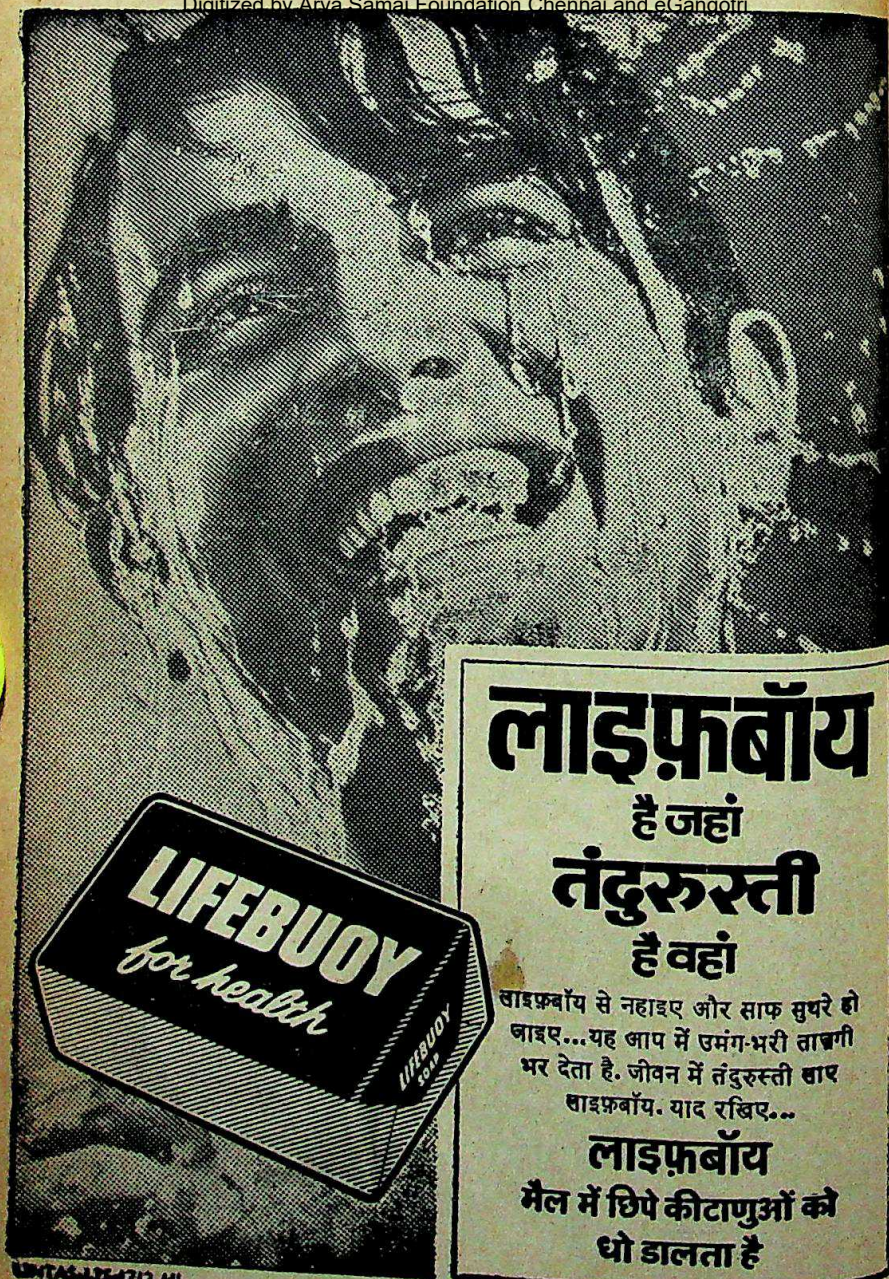
जब भारत की सारी टीम सिर्फ़ १८३ के मामूली से स्कोर पर (जिसमें श्रीकांत नाम के नवोदित खिलाड़ी द्वारा बनाये गये ३८ रन का स्कोर दोनों टीमों के किसी भी खिलाड़ी द्वारा बनाया गया सर्वोच्च स्कोर सिद्ध हुआ) आउट हो गयी तो लार्ड्स के मैदान में बैठे हज़ारों दर्शकों तथा इस मैच को भारत में दूरदर्शन पर देखने वाले, तथा रेडियो पर 'रनिंग कमैन्ट्री' सुनने वाले लाखों दर्शकों में शायद ही किसी को यह उम्मीद रही हो कि भारत यह मैच जीत पायेगा। लेकिन वेस्ट इंडीज के पहले खिलाड़ी, और चोटी के बल्लेबाज ग्रीनिज को सिर्फ़ १ के स्कोर पर सीधे बोल्ड करके, मध्यम गति के गेंदबाज़ संधु ने आशा की एक मंद सी ज्योति जलायी। और ग्रीनिज के बाद तो, विकेटों के पतन का क्रम ऐसा आरंभ हुआ कि अंत तक नहीं टूटा। हेन्स, रिचर्ड्स, लायड्स, गोम्स और बॉकस जैसे मंजे हुए बल्लेबाज क्रमशः १३, ३३, ८, ५ और ८ के अल्प स्कोर पर आउट होकर वापस पैवेलियन चले गये।

कपिल ने बाद में कहा, 'जब वेस्ट इंडीज का स्कोर ६ पर ७६ था, तो मुझे लगा कि हम जीत सकते हैं।' गेंदबाजों और क्षेत्ररक्षकों को भी ऐसा ही लगने लगा।

दुर्जो (२५) और मार्शल (१८) ने मिलकर ४३ रन अवश्य बनाये, लेकिन, उन दोनों के आउट होते ही शेष खिलाड़ी कुल ७ रन ही और बटोर पाये, और सारी आशाओं और आकांक्षाओं के विपरीत वेस्ट इंडीज की 'विश्व-विजयी' टीम सिर्फ ५२ ओवरों में १४० के, विश्व कप प्रतियोगिता के अपने अल्पतम स्कोर पर आउट होकर, भारत से ४३ रन से हार गयी। भारत को क्रिकेट का विश्व-विजेता बनने का अकल्पित गौरव प्राप्त हुआ।

क्रिकेट के मैदान में यह भारत का सर्वोत्तम प्रदर्शन था।

इस सारी प्रतियोगिता में सुनील को छोड़ कर (जिन्हें एक भी मैच में खेलने का अवसर नहीं मिला) सभी खिलाड़ियों ने भारत को विश्व-कप जितवाने में अपना योगदान दिया।

फिर भी कप्तान कपिलदेव, उप-कप्तान अमरनाथ, बिन्नी, मदनलाल, यशपाल शर्मा और किरमानी के व्यक्तिगत प्रदर्शन अविस्मरणीय रहेंगे।

□

खोज का पुरस्कार

आचार्य जगदीशचंद्र बसु को पौधों में जीवन के विश्लेषक होने का श्रेय है। उन्होंने सबसे पहली बार बताया कि पौधे भी हमारी तरह, बढ़ते-पनपते हैं, सांस लेते हैं, जीते हैं और मरते हैं। पौधे भी दुःख-दर्द अनुभव करते हैं। इसका पता लगाने के लिए उन्होंने 'क्रेस्कोग्राफ' यंत्र बनाया।

उनके प्रयोगों की सारे संसार में धूम मच गयी। उन्हें अपने प्रयोगों के प्रदर्शन के लिए दुनिया भर की प्रयोगशालाओं से निमंत्रण मिलता।

बात इंग्लैंड की है। उन्हें इस प्रयोग का प्रदर्शन करना था कि पौधे भी हमारी तरह पीड़ा अनुभव करते हैं। प्रयोग देखने के लिए ढेर सारे वैज्ञानिक एवं जिज्ञासु नर-नारी आये। बसु ने एक पौधे को इंजेक्शन द्वारा ज़हर दिया। सिद्धांततः पौधे को क्षण भर में मुरझा जाना था। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ।

बसु के लिए यह कठिन घड़ी थी। 'पौधे को विष देने से हानि नहीं हुई इसका मतलब है कि वह विष मुझे भी नहीं मार सकता' कहकर उन्होंने ज़हर की शीशी उठाकर पी ली। विस्मय से लोग चिल्ला उठे और सभा में हाय-तोबा मच गयी।

इसी बीच एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और सभा को शांत करते हुए उसने स्वीकार किया कि उसने ज़हर के बदले उसी रंग का पानी शीशी में भर दिया था। फिर क्या था, बसु ने पौधे को पुनः विष का इंजेक्शन दिया। देखते ही देखते पौधा मुरझा गया। सभी के चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी। आचार्य बसु ने गर्व से आंखें उठाकर भीड़ पर नज़र डाली, मानो उन्हें अपनी खोज का पुरस्कार मिल गया हो।

—शुकदेवप्रसाद

□

विवेकी राय की दो महत्वपूर्ण कृतियां

'सोनामाटी'; उपन्यासकार : डॉ. विवेकी राय; प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली; नब्बे रुपये।

सामाजिक और रचनात्मक जीवन को गांव के प्रति समर्पित करने वाले कथाकार विवेकी राय की औपन्यासिक कृति 'सोनामाटी' एक निश्चित परिवेश की समाज-व्यवस्था की कटु वास्तविकता पर आधारित है। गांव की जनता के साथ अपने निजी जीवन को एकाकार कर, कथाकार ने आसपास की गंदगी को बेपर्द किया है। नव-युग के नव-मानव के साथ जीवन-संघर्ष की जो संश्लिष्ट स्थितियां पैदा हुई हैं, उनकी संपूर्ण संतुलित पहचान बनकर उभरी प्रस्तुत कृति नये बनते मूल्यों की दिशाओं और संभावनाओं पर तीव्र रोशनी फेंकती है। वस्तुत: सामाजिक ढांचे की व्यापक जड़ता को व्यंग्य के केंद्र में लेकर लिखी गयी कृति ही—वस्तु और रूप—दोनों की संकीर्ण-परिधि को तोड़कर अपने पूरे समय की सही तस्वीर उभारने की अधिकारिणी बनती है—'सोनामाटी' जो ऐसी ही रचना है जिसमें परिस्थितियों की गहरी पकड़ है। डॉ. राय का कथाकार, अपने जिये जाते समाज के अंत:-वाह्य परिवर्तनों के प्रति जाग्रत और समर्पित है। एक किसान-अध्यापक-साहित्यकार जिस निष्ठा से अपने समाज को देख-परख सकता है, एक सामान्य की ज़िंदगी, जिसे व्यवस्था की चिंतन-परिधि से ठोकरें मार-मारकर निकाल फेंका गया है—उन सबके प्रति सहज सरोकार और उन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने की तरफदारी 'सोनामाटी' को महत्वाकांक्षी जीवनगाथा के रूप में स्थापित करती है और कृतिकार के व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देती है।

'सोनामाटी' में अभावग्रस्त किसानी-संस्कृति की बेबाक प्रस्तुति है। खेत-खलिहान, माल-मवेशी, डेरा-झोपड़ी और इनसे जुड़े लोगों की बाहरी-भीतरी ज़िंदगी को बदलते युग की कसौटी पर कसा गया है। प्रकृति और ग्राम्य संवेदना के बिम्बों-प्रतीकों द्वारा विशिष्ट क्षेत्र के पिछड़ेपन, गरीबी, अशिक्षा और प्राकृतिक बाढ़-अकाल जैसी आपदाओं से टूटती-कराहती ज़िंदगी की नग्न तस्वीर उभारी गयी है और यही तस्वीर कथाकार की निजी ज़िंदगी की भोक्तृता को प्रमाणित करती है। यातायात विहीन, रूढ़िग्रस्त, भाग्यवादी मानसिकता को बदलने के लिए 'पूर्वांचल विकासमंच', 'गठिया-महुआरी रोड का उद्घाटन' और 'आधुनिक साहित्य की प्रासंगिकता' जैसे सांस्कृतिक आयोजनों के प्रति कथाकार संकल्पित है और इनके

द्वारा परंपरित सड़ी-गली रीति-परिपाटियों से अपने समाज को बाहर निकालने के लिए तत्पर है, किंतु जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् वाले उपजे गांव के नवभूस्वामियों—हनुमानप्रसाद उर्फ करइल महाराज, दीनदयाल, नवीन बाबू, काली बाबू, जमुना प्रसाद, विश्वनाथ पाण्डेय और दयानंद जैसे असंख्य गोल-गिरोहबंद, ज़ोरदार-असरदार, पंच-सरदारों से आम जनता के शोषण को कौन बचा सकता है? इन सबके द्वारा गांवों में उपजी अशांति और पेचीदगी को विभिन्न कोणों से उभारा गया है। इनकी आंखें बराबर कंचन (भूमि) और कामिनी पर लगी रहती हैं जिससे आये दिन गांवों में ऐसी समस्याएं पैदा होती हैं कि रहना दूभर हो गया है। मंदिर-देवालय, शिक्षण-संस्था, कोर्ट-कचहरी, थाना-पुलिस, ब्लाक-तहसील, नेता-मंत्री—सभी इनकी स्वार्थ पूर्ति में साधक हैं अथवा उन्हें प्रोत्साहन देते हैं।

हनुमानप्रसाद के राक्षसी-व्यक्तित्व की सशक्त पहचान कराकर कथाकार ने ज़माने-साज़ तबके की दुरंगी चाल के प्रति सावधान किया है। इनकी हैवानियत की अनापेक्षित पीड़ा-भोग इनका दामाद स्वयं झेलता रहता है। दीन-ईमान के इन हत्यारों से समाज का कोई धंधा छूटा नहीं है, यदि छूटा भी है तो अपने योग्य उत्तराधिकारी की तलाश में लगे रहते हैं। हनुमानप्रसाद को तो उनका एकलौता बेटा भुवनेश्वर मिल जाता जो एम. एल. ए. बनकर रही-सही कोर-कसर को पूरा करता है। मिथ्या स्वाभिमान और अस्तित्वबोध को महत्त्व देने वाले इस युग में श्वसुर और निकटवर्ती मित्र वर्मा—रामरूप से पृथक अस्तित्व बनाते हैं। रामरूप जीवन में सफलता के लिए समझौता नहीं कर पाता, जो ज़माने के लिहाज़ से ज़रूरी है, फलतः टूटता है, बिखरता है परंतु पाठक बराबर सोचता रहता है कि उसकी यह असफलता क्या निष्फलता है? अथवा खोरा, सुग्रीव, खुबवा, अच्छेलाल, वर्मा, नवीन बाबू की पदोन्नति कितनी सार्थक है? यह टीस वर्तमान को चीरती हुई—सार्वभौम अनुभूति बन जाती है।

समीक्ष्य कृति में सांस्कृतिक जीवन की पहचान कराने वाले अनेक स्थल व स्तर हैं—प्रेम के चार-पांच जोड़ों के परिप्रेक्ष्य में पुरुष पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व विशेषतः हनुमान-कोइली प्रसंग गिरावट वाले समकालीन यथार्थ को ध्वनित करता है। विधायक वर की शादी और कमली के वैवाहिक प्रकरणों से क्रमशः संपन्न-विपन्न समाज की झांकी प्रस्तुत हो जाती है। आज के समाज के आईने के रूप में वर्णित मेला-प्रसंग युग-सत्य की उत्तेजना से मंडित है। इसी प्रकार शिक्षण संस्थाओं, अफसरशाही, नेतागिरी आदि में व्याप्त भ्रष्टाचारों को झेलती सीधी-सादी गांव की जनता बहुत कठिन स्थितियों में जीवन बिताने के लिए विवश है—जो आज के ग्रामोत्थान के नाम पर कलंक है। इन सामाजिक

अन्यायों-अत्याचारों को उद्घाटित करने वाली भाषा सांकेतिक और असरदार है। और कृति को सामाजिकता के ऊंचे मान-मंच पर प्रतिष्ठित करने वाली है। गांवों के उठा-पटक के बहाने राष्ट्रीय अशांति की झलक कृति की उपलब्धि बन गयी है।

०००

'बेटे की बिक्री'; लेखक : डॉ. विवेकी राय; प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली; बीस रुपये।

ग्रामीण फलक पर, समकालीन जीवन के विविध पक्षों और संदर्भों से परिचित, संवेदित और उत्तेजित करने वाली अट्ठारह कहानियों का संकलन 'बेटे की बिक्री' कहानी संग्रह है। कथाकार विवेकी राय के मन में उपजा व्यंग्य व्यवस्था को अपरिवर्तनशील अवस्था से टकराता है और कहानियां जन्म ले लेती हैं। साथ ही ये कहानियां दबाव में जिये जाते समकालीन जीवन की पहचान बन जाती हैं। साधारण घटनाओं से तीव्र वैचारिक चोट उत्पन्न करने की कला में कथाकार सिद्धहस्त है, फलतः कहानीपन की मिठास सर्वत्र बनी रहती है।

इस संग्रह की कहानियों को सुविधा की दृष्टि से तीन कोटियों में रखा जा सकता है। प्रथम, विवाह-संदर्भों से जुड़ी कहानियां जैसे-'मांग', 'विद्रोह', 'परंतु,', 'बेटे की बिक्री'–जिनसे दहेज की विज्ञापनी सभ्यता पर तीखे व्यंग्य का स्वर मुखरित हुआ है, साथ ही सड़ी-गली नैतिकता पर भी प्रहार है। दूसरा, सामाजिक अंतर्विरोध जैसे 'सुमित्र', 'दादा कह गये', 'सारे जहां से अच्छा', 'नये वर्ष का पहला दिन', 'अव्वल चीज़', 'हिरन की सींग' आदि। इस संग्रह की कहानियों के द्वारा गांव की पेचीदगी को नये-नये कोणों से उभारा गया है किंतु, सबका लक्ष्य या निशाना एक ही है–वर्तमान जीवन-संघर्षों की संश्लिष्टता को उद्घाटित करना। तीसरा, गांव की गरीबी और सरकारी लूट की पृष्ठभूमि पर रची कहानियों में–'पुराने गुलाब नये गांव', 'सुमित्र', 'मित्रहानि', 'सभा' और 'प्लास्टिक के जूते' आदि प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त 'भड़क दो चित्र', 'नदी नाव संयोग', 'इंद्रधनुष' कहानियों द्वारा प्रकृति के साथ मनुष्य के संघर्ष को उभारा गया है।

ये कहानियां छोटी-छोटी किंतु समकालीन रंग-बोध से अनुप्राणित हैं। यथार्थ का तीखा दंश उत्पन्न कराने वाली भाषा बहुत धारदार है। 'चेहरा जैसे सनातन अ-मुस्कान का मकबरा,' 'यह दुनिया राख, धुवां मलबे का ढेर' और 'भूख की अन्हेरिया में अंजोरिया' जैसे भाषायी प्रयोगों से समकालीन जीवन की जड़ता और ठहराव संकेतित होता है। आज की संत्रासपूर्ण स्थितियों को प्रभावोत्पादकता देने में भाषा-शिल्प ने कथाकार का सदा साथ दिया है, इन कहानियों से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है।

–डॉ. रामजी सिंह

□

पुस्तक - समीक्षा

□

'बिंधा हुआ आदमी'; रचयिता : सच्चिदानन्द सिंह समीर; प्रतीक्षा प्रकाशन, बम्बई-७८; १८ रुपये ।

सच्चिदानंद सिंह समीर, ने अपने ८१ नवगीतों के संग्रह 'बिंधा हुआ आदमी' में भ्रष्ट व्यवस्था में पिसते हुए आम आदमी के दुःख-दर्द की गाथा को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है । कवि ने आम आदमी के जीवन की त्रासदियों को बहुत गहरे पैठकर अनुभव किया है । संग्रह में कवि का मुख्य स्वर व्यवस्था विरोध का है, जिसे कवि ने नवगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

इन गीतों के कवि की आत्मा देश के वातावरण से क्षुब्ध है। असंगतियों-विसंगतियों के बीच घिरा कवि देखता है कि सारा समाज असत्य और फरेब के शिकंजे में जकड़ गया है । अंधेरा ही रोशनी को खा गया है । सत्ता के शेरों की भूख ने समाज की नैतिक शक्तियों को लुंज-पुंज कर दिया है ।

बुझ गई है आंख की रोशनी कहीं
बिक गई है आदमी की आत्मा कहीं
बन गये हैं आदमी में रेत के मकान
खा रहे हैं देश को मौसमी मसान ।

ऐसी स्थिति में कवि के गीतों में असंतोष के साथ आक्रोश का स्वर भी उभरता है। वह भ्रष्ट व्यवस्था की सारी साजिशों को बेनकाब करता हुआ, उसके खिलाफ मोर्चाबंदी करता है । अपना सारा सामर्थ्य, शक्ति संजोकर जूझता है ।

कवि जिस प्रकार सड़ी, गली एवं भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन नहीं करता, उसी प्रकार परम्परागत खोखली रूढ़ियों का पोषक भी नहीं है । कालक्रम से असंगत एवं अतार्किक बन गयी रूढ़ियों को वह नकारता है और उसके बुर्जुवा समर्थकों पर प्रहार भी करता है :—

गिरती दीवार की रंगाई क्या करें
सड़े हुए कोट की सिलाई क्या करें
जिसके दिमाग में हो कोयले की खान
उनके दिमाग की सफाई क्या करें !

समीर के गीतों में मन की गहराई से उठने वाली संवेदना उभर कर सामने आती है। उनके अधिकांश गीतों में सामयिक परिवेश के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति सशक्त व्यंग्य के माध्यम से हुई है। यही व्यंग्य उनकी रचना को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करता है। व्यंग्य की इतनी अधिक बहुलता अन्य नवगीतकारों में दृष्टिगोचर नहीं होती, अतः समीर की यह 'टोन' उसे न केवल अन्य नवगीतकारों की भीड़ से अलग ही करती है, अपितु उसकी अपनी एक विशिष्ट पहचान भी बनाती है।

— हरजिंदर सिंह सेठी
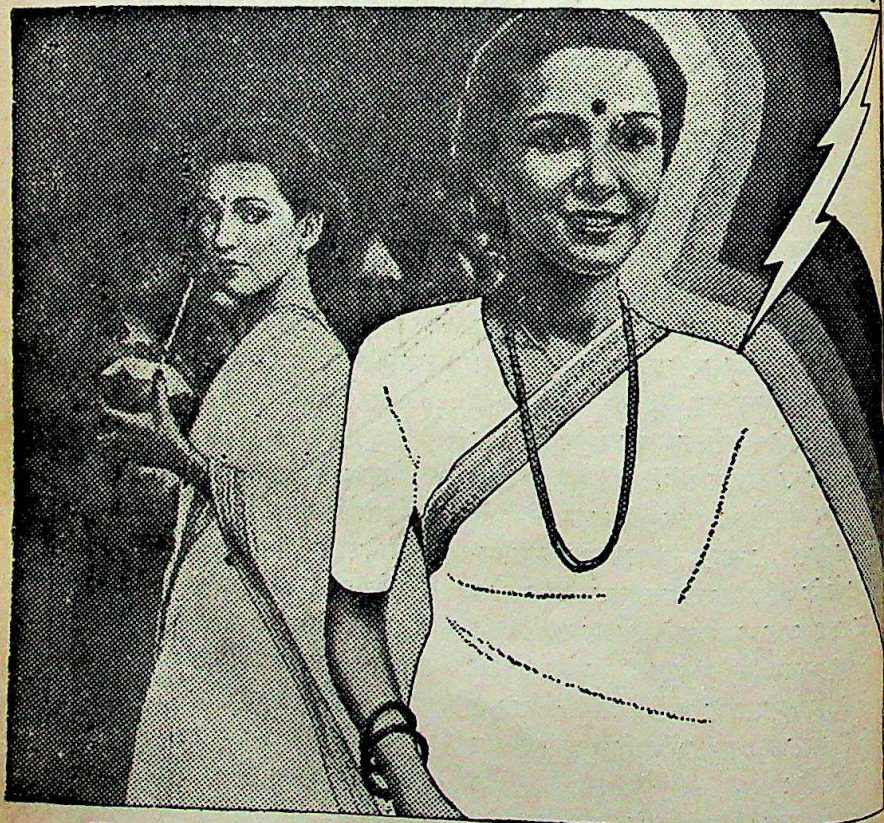
'नपुंसक'; डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री; प्रकाशक : इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के ७१, कृष्णा नगर, नयी दिल्ली-५१; पृष्ठ ११२; १५ रुपये।

आधुनिक हिंदी कहानी में डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री का नाम बहुचर्चित है। अपनी कहानियों में वे जीवन की गहन समस्याओं को उठाती हैं और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन करती हैं।

'नपुंसक' उनकी ११ कहानियों का संग्रह है। ये सभी कहानियां सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं और उनमें मनोवैज्ञानिक पुट भी है। 'चातकी' में दहेजरूपी शोषण के कारण उसकी मां स्वाति को नाना प्रकार की यंत्रणाएं भोगनी पड़ती हैं। 'समापन' में आर्य समाज की प्रधान सोनल को अपनी कर्मठता, ईमानदारी और अनुशासन के कारण भ्रष्टाचारियों का कोपभाजन होना पड़ता है और वह अपने पद से त्यागपत्र दे देती है। 'एक कर्नल की वापसी' में कर्नल मीरचंदानी के दो चेहरे जब प्रकाश में आ जाते हैं तब उन्हें अपमानित होकर पुरानी जगह से हट जाना पड़ता है। 'अनुत्तर' कहानी में विनोद और शीला के माध्यम से यह दिखाया गया है कि कैसे पुरुष एक भोलीभाली लड़की को, अपने को कुंवारा बताकर ठगता है, उससे शादी करता है, फिर भी वह पति के नाम पर पूर्ण समर्पित रहती है। यद्यपि अंत में उसे कालगर्ल बन जाना पड़ता है। 'नपुंसक' कहानी में अभय और शीला दोनों सहपाठी और टीचर हैं। अभय की सुविधाओं का वह बहुत ध्यान रखती है। अभय का न तो ट्रांसफर ही हो पाता है और न वह स्टोर ही चला पाता है। अंत में निराश होकर वह एक धनी की लड़की सुषमा से शादी कर लेता है। साहस और आत्मविश्वास की कमी के कारण वह उलझा ही रहता है। 'प्लेटफार्म पर' इस संग्रह की अंतिम कहानी है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री की इस संग्रह की सभी कहानियां सुंदर बन पड़ी हैं। उनमें बदलते परिप्रेक्ष्य की समकालीन विसंगतियों को बड़ी ईमानदारी से रेखांकित किया गया है। विघटित होते जा रहे जीवन-मूल्यों के कारण आज का व्यक्ति कितना एकाकी और असहाय बन जाता है और कभी-कभी दिखावे के जीवन-व्यापार के कारण उसे कितना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है? यही इन कहानियों की विशेषता है। **—रामलाल शुक्ल**

□

समुद्र की ओर बही जा रही नदी अपने नाम और रूप को त्यागकर समुद्र में विलीन हो जाती है, उसी तरह ज्ञानी नाम-रूप का त्याग कर दिव्य पुरुष में लीन हो जाते हैं।

—मुंडकोपनिषद

□

रोगहर जीवन - जल : शिवाम्बु

□

जे. डब्लू. आर्मस्ट्रांग

स्व-मूत्र चिकित्सा का उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी है–जहां इसे शिवाम्बु कहा गया है–और बाइबिल में भी–जहां इसे जीवन-जल की संज्ञा दी गयी है । लेकिन, क्या यह सिर्फ़ एक विश्वास है, या स्व-मूत्र चिकित्सा-विज्ञान में रोगों को दूर करने की क्षमता भी है ? लेखक के अपने अनुभव सुनिये, और स्वयं निर्णय कीजिये ।

इससे पहले कि मैं स्व-मूत्र-चिकित्सा के अपने अनुभवों के बारे में आपको बताऊं, इस चिकित्सा-विज्ञान के बारे में प्राचीन और आधुनिक विशेषज्ञों के विचारों से अवगत होना ठीक रहेगा ।

पिछली सदी के अंत में, ब्रिटेन में प्रकाशित 'वन थाउज़ंड नोटेबल थिंग्स' में कहा गया था, 'हर प्रकार की बाह्य और आंतरिक अस्वस्थता के लिए स्व-मूत्र-पान एक उत्तम औषधि है । रोज़ सुबह नौ दिनों तक इसे पीने से शरीर हल्का और चुस्त हो जाता है, और स्कर्वी जैसे रोग दूर हो जाते हैं । पीलिया और जलंधर रोगों में भी इसे लाभकारी पाया गया है । कानों को गुनगुने स्व-मूत्र से धोने से कानों के बहुत से रोग दूर हो जाते हैं । आंखों को स्व-मूत्र से धोने से दृष्टि तेज होती है, और दुखती आंखें स्वस्थ हो जाती हैं । उससे हाथ धोने पर हाथों की सूजन और कठोरता समाप्त हो जाती है । ज़ख्मों और खाज पर इसे लगाने से तत्काल लाभ होता है । बवासीर की भी यह अक्सीर दवा है ।'

१६९५ में लिखी गयी 'सोलोमंस इंग्लिश फिज़ीशियन' में मूत्र की प्रशंसा इन शब्दों में की गयी है : 'स्त्री या पुरुष का मूत्र पीलिया और जलंधर जैसे रोगों में बहुत उपयोगी है । प्लेग जैसे घातक रोगों में भी इसे लाभकारी पाया गया है । गुनगुने मूत्र को त्वचा पर लगाने से त्वचा स्वच्छ और निरोग होती है, तथा फोड़े, घाव आदि शीघ्र ठीक हो जाते हैं । गंजे व्यक्तियों को स्व-मूत्र के सेवन से बालों का लाभ मिला है । कोई अंग सुन्न हो जाये, या उसमें कंपन होता हो, तो उस पर स्व-मूत्र का सेंक लाभ पहुंचाता है । स्व-मूत्र में मिले वाष्पशील लवण अम्लों को जज़्ब करके अधिकांश रोगों की जड़ों को ही समाप्त कर देते हैं । रक्त की शुद्धि कर, वे गठिया, मिरगी और घुमड़ी जैसे रोगों को दूर करते हैं । ल्यूकोरिया

जैसे अनेक स्त्री-रोगों में भी इसका सेवन उपयोगी पाया गया है। पथरी के रोगी भी, स्व-मूत्र-पान से लाभान्वित हो सकते हैं।'

वशीकरण पेय

आपको यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि १८ वीं सदी के एक फ़ारसी दंत-चिकित्सक ने स्व-मूत्र की मुख-धावन के रूप में सिफारिश की थी। और अब अनेक आधुनिक डॉक्टर इस सिफारिश से सहमत हैं।

अब आइये, मूत्र-चिकित्सा-विज्ञान के बारे में सुनें आधुनिक चिकित्सकों के विचार।

'कैन्डाइड' नामक प्रतिष्ठित पत्रिका में विश्व-विख्यात चिकित्सक ज्यां रोस्तेंद लिखते हैं, 'हाल के एक आविष्कार ने हारमोनों के अध्ययन में एक क्रांति सी ला दी है। वह आविष्कार यह है कि बहुत से हारमोन गुर्दे से छनकर मूत्र में आकर मिल जाते हैं। परीक्षणों से पता चला है कि मूत्र में साधारणतया, अनेक महत्त्व-पूर्ण और उपयोगी हारमोन विद्यमान होते हैं। चिकित्सकीय दृष्टि से देखा जाये तो मूत्र में मौजूद ये महत्त्वपूर्ण हारमोन मानव की संघटित शरीर-रचना को काफ़ी प्रभावित करने में समर्थ हैं।'

हमारे पूर्वजों के समान ही अनेक आधुनिक विशेषज्ञ मूत्र को 'वशीकरण पेय' मानते हैं। ऐसे ही एक विशेषज्ञ हैं एलिस बार्वर जो कहते हैं—'हमारे शरीर से आसवित होकर, अनेक आश्चर्यजनक औषधियां, रोग-प्रतिकारक और सीरम मूत्र में आते हैं।' एक दूसरे विशेषज्ञ डाक्टर टी. विल्सन डीकमॅन, एम. डी. कहते हैं, 'यद्यपि मूत्र के तत्त्वों की मात्रा व्यक्ति की रोगात्मक स्थिति पर निर्भर करती है, तो भी यह सच है कि अंग-भंग जैसी अवस्थाओं को छोड़कर, मूत्र का सेवन प्रायः हर रोग में लाभकारी है। अकेले मूत्र में तीन हज़ार के करीब औषधियों के से गुण हैं। जिन रोगों को शारीरिक शक्तियां दूर नहीं कर पातीं, उन्हें शरीर के बाहर की शक्तियां दूर कर सकती है।'

एवरेस्ट-आरोही, स्वयं एक प्रमाण

एवरेस्ट-आरोही मॉरिस विल्सन, जिसने एवरेस्ट - आरोहण का एकाकी किंतु असफल प्रयास किया था, स्व-मूत्र-चिकित्सा के एक जीते-जागते प्रमाण हैं। अपने एवरेस्ट-संबंधी संस्मरणों में उन्होंने कहा है—'एवरेस्ट-आरोहण के दौरान, मैं स्व-मूत्र-पान और मूत्र को हिम से प्रभावित अंगों पर रगड़कर स्वस्थ और चुस्त रहता था।'

हिमाचल-वासी योगियों और तिब्बत के अनेक लामाओं ने विल्सन को बताया था कि उनकी दीर्घायु का एक रहस्य स्व-मूत्र-चिकित्सा ही है। स्व-मूत्र का सेवन करके उन्होंने अनेक ऐसे रेगिस्तानों को पार किया, जिनका पार करना साधारण मानव के बस की बात नहीं।

१८६० से १९७० तक की अवधि में दुनिया के अनेक डॉक्टरों ने पीलिया के इलाज के लिए स्व-मूत्र-पान की सिफारिश

करने का साहस दिखाया है। मेरे एक रोगी ने मुझे बताया था कि बचपन में जब उसे पीलिया हो गया था, तब उसके पितामह ने चार दिनों तक उसे उसका मूत्र पिलाकर स्वस्थ कर दिया था।

भारत में गोमूत्र का प्रयोग विभिन्न मानवीय रोगों के लिए अर्से से होता रहा है। जिप्सी लोग भी कई रोगों के लिए स्व-मूत्र का सेवन करते हैं। प्राचीन यूनानी ज़ख्मों पर मूत्र लगाते थे। एस्किमोवासी आज भी ऐसा करते हैं।

स्व-मूत्र चिकित्सा की शानदार सफलता के एक जीते-जागते नमूने थे, ब्रिटेन के स्वर्गीय डब्ल्यू. एच. बैक्सटर जे. पी., जिन्होंने काफ़ी लंबी आयु पायी। उनका दावा था कि स्व-मूत्र को सीधे पीने और उसे कैंसर से प्रभावित अंग पर लगा-लगाकर उन्होंने कैंसर के विकास को रोकने में सफलता पायी थी। उनका कहना था कि मूत्र सर्वोत्तम रोगाणुरोधक है। वे रोज़ ३ गिलास स्व-मूत्र पीते थे। वे उसका प्रयोग आंखों के लोशन और हजामत के बाद के लोशन के रूप में भी करते थे। सूजनों, फोड़ों और घावों पर वे उसका लेप करते थे।

निराधार आपत्तियां

बहुत दिन नहीं हुए उस क़ीमती, रोग-हर और लोकप्रिय टालकम साबुन के प्रचलन को, जिसके निर्माण में रूसी किसानों और हरी घास खाने वाली गायों के मूत्र का प्रयोग होता था। आजकल भी फैशनेबुल महिलाएं जो क्रीम चेहरे पर लगाती हैं, उनमें से अधिकांश में मूत्र से निकले हॉरमोन मिले रहते हैं।

स्व-मूत्र-पान का विरोध करने वाले प्रायः यह एतराज़ उठाते हैं कि यदि स्व-मूत्र-पान नैसर्गिक विधि होती, तो आदमी इस नैसर्गिक वृत्ति के साथ पैदा भी हुआ होता। लेकिन इस एतराज़ में कोई दम नहीं है। क्या प्राणायाम-विधि, जिसकी स्वास्थ्यदायक उपयोगिता से कोई इंकार नहीं कर सकता, नैसर्गिक-वृत्ति है? हठयोग भी आदमी की नैसर्गिक-वृत्ति नहीं है, लेकिन उसकी सहायता से योगी सैकड़ों वर्षों तक जीते हैं।

एक और एतराज़ यह उठाया जाता है कि प्रकृति जिस चीज़ को शरीर से बाहर फेंकना चाहती है, उसे दुबारा शरीर में प्रवेश कराना कहां तक उचित है? इस एतराज़ का उत्तर प्रकृति की ही एक और 'आदत' का उल्लेख करके दिया जा सकता है। प्रकृति जिन 'मृत' पत्तियों को वृक्षों से अलग कर देती है, उन्हीं की बनी खाद से वृक्षों का विकास होता है। इन 'मृत' पत्तियों में अनेक ऐसे तत्त्व, जैसे पोटाश होते हैं, जो वृक्षों और पौधों के विकास के लिए आवश्यक हैं।

मूत्र के संघटक

डाक्टरों द्वारा मूत्र की जांच करवाना एक आम बात है। इस जांच से किसी वास्तविक या कल्पित रोग के लक्षणों का पता कम, इस बात का पता ज़्यादा लगता

है कि रोगी ने क्या खाया-पिया था । मूत्र में ज्यादा चीनी की मौजूदगी भी मधुमेह का अचूक लक्षण नहीं है । मूत्र में अत्यधिक सफ़ेदी का होना, ब्राइट्स रोग जैसे रोगों का लक्षण नहीं माना जा सकता, यह नवीनतम वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुका है।

मूत्र के विश्लेषण से पता चला है कि उसमें निम्न संघटक होते हैं : यूरिया एन (नायट्रोजन) ६८२ । यूरिया १४५९ । क्रियेटिनाइन ९७.२ । यूरिक एसिड ३६.९ । एमिनो एन ९.७ । एमोनिया एन ५.७ । सोज्यिम २१२ । पोटेशियम १३७ । कैल्शियम १९.५ । मैग्नेशियम ११.३ । क्लोराइड ३१४ । कुल सल्फेट ९१ । इनआर्गेनिक सल्फेट ८३ । इन आर्गेनिक फास्फेट १२७ । पी. एच. ६.४ । कुल अम्लता : सी. सो. एन. १० । एसिड २७.८ ।

यदि सोज्यिम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नेशियम, एलोन्टिन जैसे अनावश्यक तत्त्वों को मूत्र शरीर से बाहर फेंक देता है, तो फिर जीव-रसायन शास्त्री उनके सेवन की सलाह क्यों देते हैं ? और जो लोग यह मानते हैं कि मूत्र में विषैले तत्त्व होते हैं, उनसे यह पूछा जा सकता है कि सागर में भटक जाने वाले नाविक जब अपना मूत्र ही पीकर जीवित रहते हैं, तो वे इन विषैले तत्त्वों के कारण मर क्यों नहीं जाते? जिन लोगों ने अभी तक स्व-मूत्र-पान नहीं किया है, उन्हें यह बताना आवश्यक है कि उसका स्वाद एप्सम साल्ट के स्वाद से मिलता है । प्रातःकाल के मूत्र का स्वाद थोड़ा तीखा और नमकीन होता है। मगर, खाने और पीने की वस्तुओं के गुणानुसार और पान की आवर्तिता के अनुसार, यह स्वाद बदलता रहता है ।

गंभीर रोगों से ग्रस्त रोगियों का मूत्र देखने में अप्रिय और आपत्तिजनक लग सकता है, लेकिन वास्तव में उतना आपत्ति-जनक होता नहीं, जितना लगता है ।

वर्षों के स्व-मूत्र-पान के अनुभव के बाद मैं कह सकता हूं कि पीने के बाद मूत्र छनकर, शुद्ध हो जाता है । उसमें थोड़ा नल का पानी मिलाने से उसकी शुद्धि की मात्रा और अधिक बढ़ जाती है।

शरीर के अंदर जाकर स्व-मूत्र सर्व-प्रथम शरीर की सफ़ाई करता है, रक्त-प्रवाह में बाधा पहुचाने वाले तत्वों को दूर करता है, और अंत में रोगों से जर्जरित टूटे-फूटे अंशों का पुनर्निर्माण करता है ।

क्षय और वृहदांत्र-शोथ आदि घातक और गंभीर रोगों से नष्टप्रायः हुए फेफड़ों, मस्तिष्क, हृदय, यकृत, आमाशय आदि को पुनर्जीवित करता है । प्राकृतिक चिकित्सा में आस्था रखने वाले जिस उप-वास और फलों के रस के सेवन से आंतरिक शुद्धि पर इतना अधिक बल देते हैं, स्व-मूत्र-चिकित्सा उससे कहीं अधिक, व्यापक और गहरी आंतरिक शुद्धि कर डालती है ।

मुझे हुए लाभ

स्व-मूत्र-चिकित्सा की प्रशंसा करते मैं

इसलिए नहीं थकता कि मैंने उसके चमत्कारिक लाभों को स्वयं अनुभव किया है। इस चिकित्सा-विधि से ही मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ। स्वयं लाभान्वित होकर अब मैं दूसरों को इससे लाभान्वित करना चाहता हूं।

जब पिछला महायुद्ध आरंभ हुआ था, तब मेरी आयु ३४ वर्ष थी। फ़ौज में भर्ती होने के लिए जब मैं डाक्टरी जांच के लिए गया, तो डाक्टरों से पता चला कि मैं क्षय रोग से पीड़ित हूं। एक विशेषज्ञ ने मेरी पूरी जांच करके कहा कि मुझे क्षय इतना नहीं, जितना नज़ला-जुकाम है। उसने मुझे खुली हवा, धूप और पौष्टिक आहार का नुस्खा बताया, और कहा कि यह नुस्खा मुझे शीघ्र ही स्वस्थ और निरोग कर देगा। और सचमुच उसके इस नुस्खे से एक वर्ष में मेरा वज़न २८ पौंड बढ़ गया। लेकिन, रोग के लक्षण मौजूद थे। इसलिए, मैंने एक अन्य विशेषज्ञ से अपना परीक्षण करवाया। उसने जांच करके कहा, 'भले ही पहले विशेषज्ञ ने कुछ भी कहा हो, तुम्हारे दोनों फेफड़े क्षय से ग्रस्त हैं। अपनी शक्ति क़ायम रखने के लिए तुम्हें स्टार्च और चीनी-युक्त आहार लेते रहना चाहिए।' उसकी सलाह का नतीजा यह हुआ कि मुझे मधुमेह हो गया। उसे दूर करने के लिए अब मुझे सप्ताह में चार दिन उपवास रखना पड़ता था। शेष तीन दिनों में मैं जो खाना खाता था, उसे काफ़ी चबाकर खाना पड़ता था, जिससे मेरे मसूड़े, दांत, मुंह और जीभ सभी काफ़ी सूज गये। इस कष्ट के अलावा, मैं अनिद्रा-रोग, चिड़चिड़ेपन, और स्वाभाविक दुर्बलता आदि से भी पीड़ित था।

यद्यपि मेरा नज़ला-जुकाम गायब हो गया था, तथापि इलाज मुझे रोग से बेहतर नहीं लगता था। दो वर्षों तक डाक्टरों की सलाह पर चलने के बाद, मुझे अब डाक्टरों से घृणा हो गयी थी, और मैं अब अपना इलाज खुद करने के बारे में सोचने लगा।

बाइबिल में कहा गया है : 'अपने कुंड का पानी पियो।' इस उक्ति की याद मुझे तब आयी, जब मैंने कहीं पढ़ा कि एक पिता ने रोहिणी रोग से पीड़ित अपनी युवा पुत्री को उसका ही मूत्र पिलाकर, चार दिनों में उसे पूरी तरह स्वस्थ कर दिया था। मूत्र-चिकित्सा से पीलिया के सफल इलाज की कुछ घटनाएं भी मैंने सुनी थीं। उनसे इस चिकित्सा-विधि के प्रति मेरी श्रद्धा सहसा जाग गयी।

इस चिकित्सा के बाद, जैसे मेरा नया जन्म हुआ। मेरा वज़न तब १४० पौंड था, और मैं अपनी आयु से ११ वर्ष कम आयु वाले व्यक्ति के समान स्वस्थ और चुस्त अनुभव कर रहा था। मेरी त्वचा कोमल और स्वच्छ हो गयी थी।

आज भी मैं अपने मूत्र की एक-एक बूंद पीता हूं, और पूर्णतया स्वस्थ और रोग रहित हूं। मैं दूसरों का इस चिकित्सा-विधि से इलाज भी करता हूं।

('संडे मिडडे' से साभार उद्धृत)

□

हिन्दुओं का चिकित्सा - विज्ञान

नासिका प्रत्यारोपण : एक भारतीय आविष्कार

□

आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। प्राचीनकाल में नाक काट लिये जाने का दंड प्रचलित था। पति-वंचक नारियों को यह दंड सामान्यरूप से भोगना पड़ता था। आक्रमणकारी सैनिक भी अपने शत्रुओं की नाक काट लिया करते थे। अक्सर डाकू भी इसी प्रकार लोगों को आतंकित किया करते थे। एक ऐतिहासिक उदाहरण सन १७६७ का मिलता है। पृथ्वी नारायण शाह एक गुरखा सरदार था। जब उसने हिमाचल प्रदेश के एक स्थान कीर्तिपुर को जीता, तो उसने अपने सैनिकों को यहां के सभी ८६५ पुरुषों के नाक-कान-ओंठ काट लेने के आदेश दिये। ऐसा करके उसने अपने भाई को अंधा किये जाने का बदला लिया। तभी से कीर्तिपुर को नकटों का शहर कहा जाने लगा। स्पष्ट है कि इसी प्रकार कटी हुए नाकों को ठीक करने के उद्देश्य से नाक की प्लास्टिक सर्जरी का आविष्कार हुआ होगा।

इस प्रकार के आपरेशन का प्रथम विवरण हम सुश्रुत संहिता (६०० ई. पू.) में पाते हैं। ऋषि सुश्रुत प्राचीन प्लास्टिक सर्जरी के जनक हैं। उन्होंने गाल के चमड़े को काटकर नाक पर प्रत्यारोपित करने का वर्णन किया है। ऋषि सुश्रुत ने इस प्रकार के प्रत्यारोपण के संदर्भ में अपने से और भी प्राचीन चिकित्सकों का उल्लेख किया है। इन-साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार—'ईसा से एक हज़ार साल पहले भारत में कुम्भकार जाति के लोग कटी हुई नाकों को जोड़ने का कार्य करते थे।'

सुश्रुत संहिता में वर्णित नासिका प्रत्यारोपण विधान का विस्तार चौथी शताब्दी में वाग्भट्ट द्वारा किया गया। प्राचीन भारतीय प्रत्यारोपण विज्ञान के विकास में दूसरा महत्वपूर्ण योगदान वाग्भट्ट की ही कृति है। अब गाल से चमड़ी काटने के बजाय माथे से चमड़ा निकालने की विधि विकसित हुई। इस विधि के अनुसार नासिका-दोष को पहले मोम पर चित्रित किया जाता था। तत्पश्चात् इसे स्याही से माथे पर उतारा जाता था। माथे पर इस प्रकार चिह्नित चमड़ी को केवल तीन ओर से काटकर चौथी ओर नीचे इस तरह घुमा दिया जाता था कि वह नासिका-दोष को ढंक ले। इस प्रकार नासिका-दोष

को ठीक करते हुए सावधानी पूर्वक टांके लगा दिये जाते थे । लगभग तीन महीनों में रोगी पूर्णतया स्वस्थ हो जाता था ।

डा. नरेंद्र जे. पंडया के अनुसार, जो अमेरिकन सोसाइटी आफ प्लास्टिक सर्जन्स के एक सदस्य हैं—नासिका प्रत्यारोपण का आधुनिक तरीका भी लगभग वैसा ही है जैसा हमारे पूर्वजों ने सैकड़ों साल पहले खोज लिया था । इसका कारण यह है कि माथे का रंग नाक के रंग से पूरी तरह मेल खाता है । आधुनिक शल्य चिकित्सक कभी-कभी इस प्रत्यारोपण के लिए पेट अथवा भुजा से भी चमड़ा काटते हैं ।

कांगड़ा के नासिका-शल्यक

अनेक शताब्दियों तक भारत के कुछ ही घरानों में यह ज्ञान गुप्तरूप से सुरक्षित था । नासिका-शल्यकों का ऐसा ही एक घराना क़ांगड़ा में था जो राजा शंकर चंद्र प्रथम (सन १४४०) के शासनकाल से इस वैज्ञानिक कला का अभ्यास करता आ रहा था । इस घराने के शल्यकों के पास मुगल सम्राट अकबर, जहांगीर, शाहजहां और आलमगीर शाह के प्रमाण पत्र थे । इस चिकित्सक घराने के अंतिम शल्य - चिकित्सक थे हकीम दीनानाथ जिन्होंने सन १९३७ में रावलपिंडी के एक व्यक्ति रावियां जत्ती की नासिका का प्रत्यारोपण किया था ।

हकीम दीनानाथ ने यह कला अपने चाचा हकीम सुंदर लाल से सीखी थी । उस समय भी इस ज्ञान को किस प्रकार गोपनीय रखा जाता था इसका एक उदाहरण यह है—शल्यक्रिया संपादित करते समय वे लोग अपनी बहू को तो सहायक के रूप में साथ रखते थे परंतु अपनी लड़की को नहीं । भय था कि लड़की विवाहोपरांत पराई होकर इस गोपनीय ज्ञान को दूसरे घराने में पहुंचा देगी । उनके अधिकांश मरीज़ उत्तर पश्चिमी सीमा के लड़ाकू जाति के लोग होते थे जिनमें भी महिलाओं की संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती थी । वीने नामक एक फ्रांसीसी यात्री ने कांगड़ा आते-जाते समय अनेक व्यक्तियों को इस प्रकार अपनी नई नाक लगवाकर लौटते हुए देखा था । एम. एस. रन्धावा नामक एक आई. सी. एस. अधिकारी एवं इतिहासकार ने, जो कांगड़ा में निवास करते थे, लिखा है—कांगड़ा अपनी चित्रकला के लिए भी उतना ही प्रसिद्ध है जितना कि कटी हुई नाक और कान की शल्य-चिकित्सा के लिए ।

ईस्ट इंडिया कंपनी के दो चिकित्साधिकारियों ने पुणे के कुमार नामक स्थान पर एक मराठा शल्य - चिकित्सक को भारतीय पद्धति (माथे से चमड़ी काटने की विधि) से नासिका प्रत्यारोपण उपचार करते हुए देखा था । सन १७९३ के मद्रास गज़ट में शल्य - चिकित्सा के इस विशेष उदाहरण का 'एक मात्र ऐसा आपरेशन' के रूप में उल्लेख हुआ है । यह आपरेशन, कोवसजी नामक एक बैलगाड़ीवान का हुआ था जो अंग्रेजी सेना में नौकर

था। टीपू सुल्तान के साथ हुई एक लड़ाई में वह बंदी बनाया गया था और उसकी नाक काट ली गयी थी। इस आपरेशन का वर्णन सन १७९४ में लंदन से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'जेंटलमैंस मैगज़ीन' में भी छपा था।

भारतीय विधि से नासिका प्रत्यारोपण उपचार करने वाले चिकित्सकों में डा. त्रिभुवन दास मोतीचंद शाह का नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होंने १९ वीं शताब्दी में ४०० ऐसे आपरेशन सफलतापूर्वक किये थे। डा. शाह डाकू पीड़ित क्षेत्र जूनागढ़ में मुख्य चिकित्साधिकारी थे। उनकी ख्याति का अनुमान उस क्षेत्र में प्रचलित इस कहावत से लगाया जा सकता है–'कालू डाकू काटे नाक, जोड़े उसको त्रिभुवन-दास।'

इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति के बारे में योरोपवासी १५ वीं शताब्दी तक अनभिज्ञ थे, जब सिसली ब्रांका नामक एक व्यक्ति ने गाल का चमड़ा निकालकर नाक जोड़ना शुरू किया। उसका पुत्र एंटोनियों इस प्रकार के आपरेशन के लिए रोगी की भुजा से चमड़ा निकालता था। यहां भी भारतीय प्रभाव माना गया है। बुरियन ने एक स्थान पर लिखा है–'इटालवी प्लास्टिक सर्जरी भी अपने मूलरूप में भारतीय विद्या ही है जो नाविकों और व्यापारियों के माध्यम से यहां आयी।'

इसके पश्चात् १९ वीं शताब्दी के अनेक जर्मन शल्य-चिकित्सकों ने भारतीय और इटालवी दोनों पद्धतियों को लेकर इस चिकित्सीय कला को आगे बढ़ाया। आज सब क्षेत्रों के समान इस क्षेत्र में भी काफी प्रगति हुई है। अब तो नाक की प्लास्टिक सर्जरी चेहरे की सुंदरता बढ़ाने के लिए भी की जाती है। कुछ भी हो विश्व के चिकित्सा-विज्ञान को भारत का यह अपूर्व ऋण मानना पड़ेगा। और हमें भी यह विचारना चाहिये कि जब हज़ारों साल पहले भारतीय विज्ञान इतना समुन्नत था तो आज हम क्यों पिछड़ गये हैं?

('द इलस्ट्रेटेड वीकली' से साभार)

रूपांतरकार : हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

□

प्रवासी नीला कबूतर

बात अगस्त १९३१ की है। वियतनाम की राजधानी सैगोन में एक बहुत सुंदर कबूतर था जिसका रंग नीला था। कुछ लोगों को यह कबूतर इतना पसंद आया कि उन्होंने चोरी से उसे पकड़ लिया और उसे लेकर फ्रांस जानेवाले एक जहाज पर सवार हो गये। उसे कोई देख न सके अतः एक अंधेरे केबिन में डाल दिया गया। जब जहाज़ आरास पहुंचा तो वह कबूतर निकाला गया। निकालते ही वह कबूतर हाथों से फिसलकर फुर्र हो गया और २५ दिन की अनवरत यात्रा में ७२०० मील पार कर सही-सलामत फिर अपने स्थान पर पहुंच गया।

–सुधीर निगम

□

गुलाबदास ब्रोकर का संस्मरणात्मक लेख

□

मेरे जीवन पर मेरी माता का प्रभाव

मेरे जीवन पर मेरी मां का क्या प्रभाव पड़ा, अगर यह सोचने जाता हूं तो जिसे मैं अलग कर कुछ कह सकूं ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है। पर मेरे सारे जीवन पर मेरी माता छायी हुई हैं। मेरे जीवन का कोई भी महत्वपूर्ण कालखंड नहीं दिखायी पड़ता जिसमें मुझे मेरी माता की खुशी-नाखुशी का ख्याल न आया हो। एक भी प्रसंग ऐसा नहीं मिलता है जिसमें मेरे मन में विचार न आया हो कि मेरी मां को अमुक घटना से कितना सुख या दुःख पहुंचेगा या पहुंचता। इसका कारण यह है कि हम दोनों एक-दूसरे के जीवन में इतने समा गये थे कि वर्षों तक एक को दूसरे से अलग कर सोच नहीं सकते थे।

ऐसा इसलिये हुआ, क्योंकि जब मैं नौ या दस वर्ष का था तब मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया। हमारे समग्र परिवार के लिए यह एक अत्यंत करुणामय दिवस था। १९१८ का वर्ष था। इंफ्लुएंजा महारोग के रूप में फैल गया था। रोज़ कितनी जिंदगियों का भोग लेता था। हम लोग पोरबंदर में रहते थे। हमेशा बंबई में रहने वाले पिता भी पोरबंदर में आये हुए थे। एक दिन उनको ज्वर आया। मुझसे तीन साल बड़ी बहन को भी बुखार चढ़ा। डॉक्टरों ने इंफ्लुएंजा बताया। हम सबके हाथों के तोते उड़ गये।

तीन-चार दिनों के बाद एक दिन सुबह आठ बजे मेरी बहन की मृत्यु हो गयी। वे जिस कमरे में थी उसके साथ वाले कमरे में मेरे पिता का बिस्तर था। मां बिचारी एक कमरे से दूसरे कमरे के चक्कर लगाती रहतीं। पुत्री मर गयी फिर भी वे रो नहीं सकती थीं, क्योंकि दूसरे कमरे में पड़े पिता उसके विषय में बराबर पूछते रहते थे!

शव को उठाने के लिए लोग आ गये। ज़रा भी आवाज़ न हो ऐसा सबने ख्याल रखा। मेरी मां के शब्दों में अगर कहूं तो, 'जैसे घर से कुत्ता निकालते हैं वैसे घर से बिचारी लड़की को निकाल फेंका।' पिता बराबर पूछते रहे, 'कैसी है वह?' मां मुंह पर ज़बरदस्ती हंसी लाने का प्रयत्न करके कहती रहीं कि, 'आज ठीक है वह, तुम चिंता मत करो।'

चिंता करने के लिए पिता ज्यादा देर रुके नहीं। चार घंटों के बाद दोपहर करीब बारह बजे वे भी चले गये। घर में रह गयी उनकी एक विधवा पत्नी जिसने एक ही दिन में पति तथा पुत्री दोनों खो दिये थे, और नौ-दस वर्ष का नासमझ बालक

में, जिसे रिश्तेदार अपने घर ले गये थे। बड़ी बहन बंबई में ससुराल में थी। बड़े भाई बंबई में ही स्कूल में पढ़ते थे।

रोना हुआ होगा, पीटना हुआ होगा। छाती फट जाये ऐसा दृश्य हुआ होगा घर में। क्योंकि पिता चालीस के भी नहीं थे और बहन तो सिर्फ बारह-तेरह वर्ष की ही थी। पर इन सब बातों की मुझे कोई याद नहीं है। मुझे तो सिर्फ उस रात की खबर है जब सब बाहर के लोग चले गये थे और मैं घर आया था। तब मेरी माता ने मुझे अपनी गोदी में लिटाकर आंखों में आते आंसुओं को बलपूर्वक रोक कर स्नेहसिक्त आवाज़ में कहा था— 'तुझे घबड़ाने की जरूरत नहीं है। आज से मैं तेरी मां और पिता दोनों हूं।'

उस वक्त का उनका चेहरा ... ऐसे दुःख को भी हटा दे ऐसी थी उस चेहरे पर दृढ़ निश्चयात्मकता और था निःसीम प्रेम। आज इतने बरसों के बाद भी वह चेहरा मेरी नज़रों के सामने स्पष्ट रूप से तैर रहा है और वह मुझे एक अजीब आश्वासन दे रहा है। मेरे जीवन में मेरे पिता का अभाव मुझे कभी महसूस नहीं हुआ है, उसका मुख्य कारण मैं मानता हूं शायद यह माता, और उनके संस्कार पाकर बड़े हुए उनके पुत्र, मेरे बड़े भाई हैं।

पिता थे तब भी मैं ज्यादातर मां के साथ ही रहा। पिता बहुधा बंबई में ही रहते थे। थोड़े महीने गांव में आते थे। कभी-कभी हम लोग भी बंबई जाते थे। पर बाकी वक्त तो मैं और मेरी मां गांव में ही रहते थे।

मां सुबह उपासना-गृह में जाती थीं। मैं भी जाया करता था। रात को अगर जैन साध्वियां गांव में हों तो मैं भी मां के साथ जाता था। अगर हम वहां नहीं जाते थे तो मां की महिला-मंडली घर पर आती थी। इन लगभग अनपढ़ स्त्रियों की गोष्ठियों को मैं बहुत रसपूर्ण ढंग से सुनता था। ये सब देख-सुन कर मेरे जीवन की एक बड़ी और अटूट श्रद्धा हो गयी है कि कोई अनपढ़ है इसलिये अज्ञानी नहीं है।

मैं अपने जीवन में बहुत शिक्षित स्त्रियों के संपर्क में आया हूं, इसलिये मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि, मेरी मां, मेरी छोटी काकी, मेरे पिता की बुआ, और मेरे भाई की सास वगैरह स्त्रियां पढ़ी-लिखी कुछ नहीं थीं पर जीवन विषयक ज्ञान में हृदय की कोमलता में और जगत के प्रति वे लोग इन पढ़ी-लिखी स्त्रियों से किसी भी तरह कम नहीं थीं।

मां बचपन से ही कटौती करना सीख गयी थीं। पति कमाते थे पर सादगी से जीना दोनों जीवन का ध्येय मानते थे।

इससे बहुत लोग मां को कंजूस कहते थे। मैं देखता था यह बात काफी हद तक गलत नहीं है।

साड़ी फटी होती थी तो सीकर पहनती थीं। परोसते वक्त अगर घी

गिर जाता था तो उसे वे जमने देती थीं। और जब जम जाता था तो वापिस उसके ही बर्तन में उठा लेती थीं। बेकार के पैसे अगर खर्च होते थे तो बहुत नाराज़ होती थीं—इसीलिये कंजूस सही, पर दूसरी तरफ कंजूस भी नहीं थीं। मणिलाल कोठारी बारडोली की निधि के लिए सौ रुपये मांगने आये तो उन्हें दो हज़ार रुपये इन्होंने दिये थे। हमारे रिश्ते की एक गरीब बहन बहुत मायूस होकर पैसों के लिए रो पड़ी तो अपने निजी धन में से चुपके से उस बहन को दो हज़ार रुपये दे दिये– यह रकम कभी नहीं वापस मिलने वाली है यह जानते हुए भी।

यह मैंने देखा है इसलिये उनका कहा हुआ एक सूत्र मुझे अच्छी तरह याद है। 'फटे और सिले हुए कपड़ों से मनुष्य को शर्म नहीं आनी चाहिये, पर अगर कोई आगे हाथ फैलाकर मांगने आये तो उसे इंकार कर देने में लज्जा आनी चाहिये।'

पुराने ज़माने की मेरी मां थीं और उनके रीति-रिवाज़ भी पुराने थे। शुरू-शुरू के गांधी उन्हें पसंद नहीं थे। 'अछूतों को घर में घुसाते हैं, लोगों को नास्तिक बनाते हैं। इस लंगोटी वाले से इतनी बड़ी सरकार भाग जायेगी क्या?' ऐसी अनेक बातें वे गांव की स्त्रियों के साथ हमेशा करती थीं। मैं गांधीवालों के साथ संबंध रखूं यह उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था। मुझे मना भी करती थीं। पर इनका कहना न मानकर हमारे गांव की बड़ी कपड़े की दुकान के आगे सत्याग्रह करने के लिए जब मैं अपने अन्य साथियों के साथ सीधा लेट गया तब यह खबर सुन कर वे फलांगते हुए मेरे पास आ गयीं। मेरे मन में हुआ कि सबके सामने मुझे वापस ले जाने की ज़िद न करें तो अच्छा हो। मेरे पास आकर वे झुक गयीं। मेरे कान के पास अपना मुंह लाकर बोलीं–'अब ख्याल रखना, बेटा, जो होगा होने दो। अपने बाप का नाम नहीं उछालना।'

'अपने बाप का नाम नहीं उछालना।' बस। उनके मन में सारी ज़िंदगी जो पात्र छाया रहा वह यही 'तेरा बाप....।'

नौ-दस वर्ष की उम्र में पिताहीन हो कर मुझे पिता के बारे में क्या खबर होगी? पर मेरे मन में जो मेरे पिता की तेजस्वी, रोबदार, विद्या प्रेमी, गुप्त-दानप्रिय, कुटुम्ब-वात्सल्य मूर्ति झलकती रही है वह मेरी मां से सुनी-सुनायी बातों द्वारा।

मां से पति-भक्ति क्या होती है जानने को मिली, पर शायद निर्भयता भी उनके ही जीवन से जानी होगी। कभी वे ज़्यादा घबराती नहीं थीं। चाहे कोई भी सामने आ जाये, जो बात उन्हें सच्ची लगती थी वह कहने से वे हिचकिचाती नहीं थीं। और किसी से भी डरती नहीं थीं।

इसीलिये वे यम से भी नहीं डरी होंगी। वे मरणासन्न थीं। १९३५ में। डबल निमोनिया उन दिनों साध्य रोग नहीं था।

उस दिन मेरा एक मित्र आया था

उनकी ऐसी स्थिति देखकर उसने कहा कि मांजी, घबराइये नहीं आप ठीक हो जायेंगी।'

ऐसी श्वास की असहनीय तकलीफ में भी वे हंस पड़ीं— निर्मल हंसी और बोलीं, 'भाई, मैंने क्या पाप किया है जिससे मैं घबड़ाऊं।'

और उसी दिन वे चली गयीं।

बहन ने पूछा, 'मां, भाई को गांव से बुला लूं।'

मेरे बड़े भाई तब थोड़े दिनों के लिए गांव गये हुए थे। मां और बहन मेरे साथ बंबई में रहती थीं।

'मेरा किसी में भी अभी मन नहीं रहा है। मैं किसी को भी बुलाना नहीं चाहती।'

मेरे जीवन पर ऐसी मेरी मां का जो प्रभाव पड़ा है उसको अलग कर मैं क्या बता सकता हूं? मैं सिर्फ इतना कह सकता हूं कि मेरे जीवन के हर क्षण में मैं उनका अनुभव कर सकता हूं। इसीलिये मेरी 'कुंडी' नामक कहानी में मुझसे लिखा गया है कि 'मां..मां, सभी तुम्हें भूल गये हैं, पर मैं...मैं जब तक जीवित हूं तब तक. . . .'

अब मेरे पास भी ज़्यादा जीने का समय नहीं है और इसलिये मुझे पक्का विश्वास है कि भले ही मैंने अपने जीवन में अनेक प्रतिज्ञाएं ली हों और तोड़ी हों, पर यह एक प्रतिज्ञा तो अगर मैं चाहूं तो भी मुझसे टूटेगी नहीं।

मेरी पहली पुस्तक 'लता और अन्य

अप्प दीपो भव

'अप्प दीपो भव' (अपने दीपक स्वयं बनो।)

यही सीख एक फ़कीर ने अपने एक शिष्य को एक निराले ढंग से दी।

वह शिष्य फ़कीर की झोपड़ी में बैठा था। अंधेरी रात थी। जब जाने का समय आया, तो उसने फ़कीर से कहा, 'कृपया एक दीपक जला कर मुझे दे दें, नहीं तो मैं इस अंधेरे मार्ग को तय नहीं कर पाऊंगा।'

फ़कीर ने एक दीपक जला कर, शिष्य के हाथ में थमा दिया, और उसके पीछे-पीछे चलने लगा। शिष्य झोपड़ी से कुछ दूर आगे ही गया था कि फ़कीर ने फूंक मारकर दीपक को बुझा दिया। शिष्य आश्चर्य से फ़कीर की ओर देखने लगा।

फ़कीर ने कहा—'आगे के मार्ग को प्रकाशित करने के लिए तुम्हें अपना दीपक खुद जलाना होगा। और वह दीपक ऐसा होगा, जो न किसी के द्वारा छीना जा सकेगा, न बुझाया जा सकेगा। अपना दीपक ही अपने साधना-पथ का सर्वोत्तम पाथेय है।'

कहानियां' मां को समर्पित करते हुए मैंने लिखा था कि 'मैं चाहता हूं कि हर जन्म में मैं तेरा शिशु होऊं और तू मेरी मां।'

जब यह लिखा तब मैं २९ वर्ष का था। आज ७४ वें वर्ष में भी यही कहना है कि—'मैं चाहता हूं कि हर जन्म में मैं तेरा शिशु होऊं और तू मेरी मां।'

[गुजराती से अनुवाद : प्रमिला राजे]
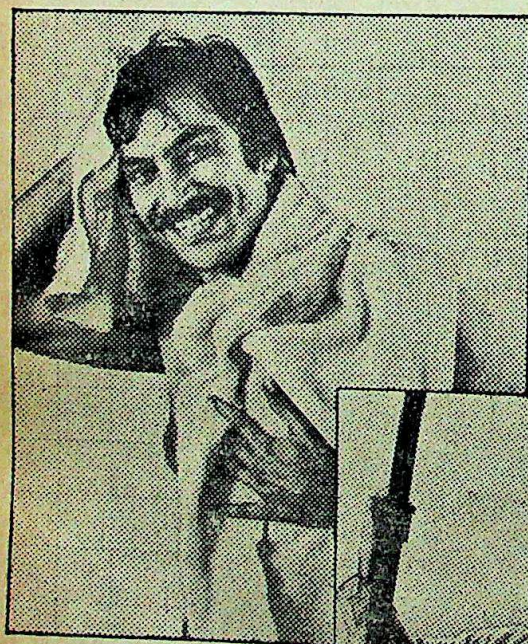
□

एक अल
जा
कर

अनेक गुह्
जिसका अ
कभी-कभी
रहते हैं,

अपने
शेक्स
'इस पृथ्वी
नी वस्तुए
दार्शनिक
शेक्सपि
थोड़ा अ
इसमें को
वर्षों से
नानी पु
बल पर,
मौजूद र
कि
रहते हैं,
सिर्फ़ इस
है। पर,
१९८३
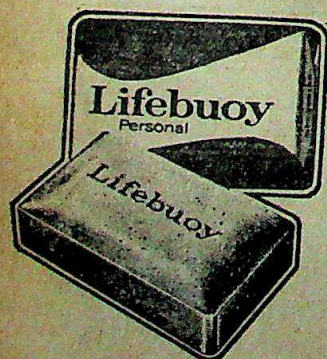
एक अलौकिक रहस्य :

जाने-पहचाने लोगों को आत्मसात् करने वाला एक अनजाना लोक

□ हंस

अनेक गुह्यविद्या-विशारदों की मान्यता है कि एक ऐसा अनजाना, अदृश्य लोक भी है, जिसका अस्तित्व उस जाने-पहचाने लोक के समांतर ही है, जिसमें हम रहते हैं। कभी-कभी इस अनजाने लोक के अनजाने लोग हमारे लोक में आकर, ऐसे उपद्रव करते रहते हैं, जिन पर सहसा विश्वास नहीं होता। ऐसे ही कुछ अविश्वसनीय उपद्रवों की सच्ची कहानियां यहां प्रस्तुत हैं।

अपने सुविख्यात नाटक 'हैमलेट' में, शेक्सपियर ने एक स्थान पर कहा है—'इस पृथ्वी और उसके स्वर्ग में ऐसी बहुत-सी वस्तुएं हैं, जिनकी कल्पना भी हमारे दार्शनिक नहीं कर सकते।'

शेक्सपियर के इस कथन को आप थोड़ा अतिरंजनापूर्ण भी मान लें, किन्तु इसमें कोई अतिरंजना नहीं है कि हज़ारों वर्षों से विश्व के प्रायः सभी सभ्य देशों के ज्ञानी पुरुष, उन अलौकिक शक्तियों के बल पर, जो प्रत्येक प्रज्ञावान् व्यक्ति में मौजूद रहती है, इस तथ्य से सुपरिचित थे कि उस दुनिया के, जिसमें हम-आप रहते हैं, एक ऐसी दुनिया भी है, जिसे हम सिर्फ इसलिए नहीं जानते कि वह अदृश्य है। पर, अदृश्य होने के बावजूद, उसका अस्तित्व है, एक ऐसे आयाम में, जिससे हम अभी तक अपरिचित हैं।

पृथ्वी पर रहने वाले हम-आप तो इस अनजाने लोक में किसी भी भांति प्रवेश नहीं कर सकते, किंतु इस बात के असंख्य निर्विवाद प्रमाण मौजूद हैं कि इस लोक के लोग हमारी पृथ्वी पर आकर समय-समय पर ऐसे उपद्रव करते रहते हैं, जिन पर सहसा विश्वास नहीं होता।

ऐसे ही कुछ उपद्रवों की जो इस अनजाने लोक के लोगों द्वारा पृथ्वी के लोगों के अपहरण से संबंधित हैं, कुछ सच्ची घटनाएं आगे प्रस्तुत हैं। इन घटनाओं के बारे में यूं तो अनेक देशों की सरकारों को पक्की जानकारी है तथापि वे अभी तक प्रकाश में इसलिए नहीं आयीं, क्योंकि

ये सरकारें कुछ 'गुप्त कारणों' से इन घटनाओं पर पर्दा डाले रहना ज़्यादा पसंद करती हैं।

हिटलर के बारे में सर्वाधिक विवादास्पद पुस्तक 'द ऑकल्ट रीख' (जिसमें सप्रमाण यह दिखाया गया है कि हिटलर तांत्रिकों की सहायता से विश्व-विजय करना चाहता था) के लेखक जे. एच. ब्रेनन ने अपनी नयी पुस्तक 'द अल्टीमेट एल्सव्हेयर' में ऐसी सैकड़ों घटनाओं का वर्णन किया है। इतना ही नहीं, उसने इस अनजाने लोक से पृथ्वी पर आकर रहने वाले कुछ असाधारण 'प्राणियों' का आंखों देखा वर्णन भी किया है।

अपनी इस निराली पुस्तक के, जो विश्व के अग्रणी परा-मनोवैज्ञानिकों के अलावा, अलौकिक रहस्यों में रुचि रखने वाले करोड़ों लोगों द्वारा भी काफ़ी सराही गयी है, एक अध्याय में, ब्रेनन ने दुनिया-भर के देशों की पुलिस-फाइलों से लिये गये ऐसे अनेक मामलों का वर्णन किया है, जिनसे सिद्ध होता है कि अनेक वर्षों से बहुत से लोग, बिना कोई सूत्र-संकेत छोड़े चुपचाप ग़ायब हो जाते हैं। ब्रेनन ने पुस्तक में यह स्थापित करने की कोशिश की है कि वे गायब नहीं होते, अनजाने लोक के लोगों द्वारा उनका अपहरण कर लिया जाता है।

गायब हुए लोग

१८८५ में आज का वियतनाम फ्रेंच इंडोचीन कहलाता था, क्योंकि वह फ्रांसीसियों के अधिकार में था। इसी वर्ष एक दिन ६०० फ्रांसीसी सैनिकों के एक दल ने अपनी छावनी से सेगांव नगर के लिए कूच किया। पर, जब यह दल सेगांव से कुल १५ मील की दूरी पर ही था, तो राहगीरों के देखते ही देखते, दल के सारे सैनिक न जाने कहां गायब हो गये। उन्हें न किसी ने पकड़ा, न किसी से उनकी भिड़ंत हुई। वे सहसा, इस प्रकार लुप्त हो गये, जैसे कभी वहां थे ही नहीं।

खोज के दौरान, न तो ६०० में से एक भी सैनिक का पता लगा, न उनके हथियारों का।

१० दिसंबर, १९३९ को दक्षिण नानकिंग में जमा ३००० के करीब चीनी सैनिक भी इसी प्रकार देखते ही देखते ग़ायब हो गये। दोपहर को तीन बजे उन्हें देखा गया था, पर जब शाम के पांच बजे उनका बुलावा आया, तो उनका कहीं पता न था। उनकी खोज करने के लिए जिन सैनिकों को भेजा गया, उन्हें इन ३००० सैनिकों के हथियार तथा दूसरा सामान तो मिला, मगर स्वयं इन सैनिकों का कोई अतापता न था। उनका पता कभी नहीं लग पाया।

उन दिनों जापान ने नानकिंग पर आक्रमण कर रखा था। इसलिए, आरंभ में उनके सेनाधिकारियों ने यही समझा कि शायद जापानियों ने उन सब सैनिकों को बंदी बना लिया है। किंतु, आक्रमण की समाप्ति पर, जब जापानी रेकार्ड देखे गये

तो पता चला कि जापानियों ने कभी नानकिंग में इतने अधिक चीनी सैनिकों को बंदी नहीं बनाया था । और यदि जापानियों ने सचमुच उन्हें बंदी बनाया होता, तो वे उनके हथियारों को वहां कभी न छोड़ते ।

गांव की पूरी आबादी ही गायब

ऐसी ही एक घटना स्पेन में भी घटी थी, स्पेन के 'राज्यारोहण-युद्ध' के दौरान, जब पायरैनीस नामक स्थान में ४००० के करीब सैनिक, अपने साथियों के देखते ही देखते न जाने कहां अंतर्धान हो गये ।

अगस्त - सितंबर १९३० की अवधि में एक दिन आर्कटिक की बंजर भूमि पर स्थित अंजिकुनी नामक एक गांव की, जहां एस्किमो रहते थे, पूरी की पूरी आबादी, न जाने कहां गायब हो गयी, इसका पता आज तक नहीं चल सका है । कनाडा के चर्चिल नामक पुलिस थाने से प्रायः ५० मील की दूरी पर स्थित इस गांव में, जो १९३० तक मानचित्रों पर अंकित था, आज भी कोई एस्किमो नहीं रहता ।

आश्चर्य का विषय यह है कि गांव के लोग गायब होने से पहले अपने साथ न कोई सामान ले गये, न कोई जानवर । इस बात का पता लगाने के लिए कि कहीं उन्होंने सामूहिक रूप से आत्महत्या न कर ली हो, गांव की सब कब्रों को भी खोदा गया । तब यह देखकर खोज करने वालों का आश्चर्य और भी बढ़ गया कि कब्रें भी खाली थीं, अर्थात्, अनजाने लोक के वे लोग कब्रों में सोये मृत लोगों को भी ले गये थे ।

क्या इस अनजाने लोक में गया कोई पृथ्वीवासी आज तक वापस भी लौटा है ? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रेनन कहते हैं, 'ऐसे सिर्फ़ एक पृथ्वीवासी का उदाहरण अभी तक सामने आया है । वह है, १८२८ की एक शाम को न्यूरेमबर्ग (जर्मनी) की एक सड़क पर बदहवास हालत में घूमता पाया गया कैस्पर हॉसर नाम का एक युवक, जिसके बारे में उसकी मृत्यु तक किसी को पता नहीं चल सका कि वह कौन था, और कहां से आया था । जिस समय उसे लोगों ने सड़क पर देखा, उस समय उसके पांव सूजे हुए थे, और रोशनी की वजह से उसकी आंखें चौंधिया रही थीं । उसे न अपने नाम का पता था, और न इस बात का कि वह न्यूरेमबर्ग में कैसे और कहां से आया । उससे बात करना इसलिए कठिन था कि उसे न जाने किस अनजानी भाषा के सिर्फ़ दस शब्द आते थे, जिन्हें वह तोते की भांति दोहराता रहता था ।

जब उसे खाने को दिया गया, तो उसने ज़रूरत से ज्यादा खाया, मगर उसे पानी और दूध की कोई पहचान न थी । आग को भी उसने ऐसी निगाहों से देखा, जिससे लगा वह उसे पहली बार देख रहा है ।

१४ दिसंबर, १८३३ को, जब वह एक पार्क में घूम रहा था, न जाने किसने उसकी हत्या कर दी । हो न हो, उसका हत्यारा अनजाने लोक का अदृश्य वासी ही रहा होगा ।

□

सूर्य-बीज झर रहे...

सूर्य-बीज
झर रहे हैं
हंस पड़े सूरजमुखी
क्षितिज के कछारों में।

उजासों के सेतुबंध
छा गये दिगंतों तक
व्यस्त हुई वनश्री मंगल अभिषेकों में
काल-चक्र नाप रहा
मानव का कर्म-लोक
खोज रहा संस्कृति पुरातन अभिलेखों में।
नीड़-पंख
खुल रहे हैं
धूप ने समेट कर अंधेरे
रख दिये बैंगनी दरारों में।

तापसी पहाड़ों के
भाल रची पूजा
बैठे समाधिस्थ गैरिक सु-वस्त्रों में
धरती-आकाश के
शुभ-लग्न मंडप में
भोर ने मांड दी सप्तपदी हरित भोजपत्रों में।

मलयज-क्षण
वह रहे हैं
किरणों की पालकी लिये
होड़ है नियति के कहारों में।

क्रौंच युगल कण-कण हो जाता

जाने क्या
मन को हो जाता
कोई सपना-सा उग आता
नील कमलिनी के अधरों पर
जब कोई फागुन झुक जाता।
अभिज्ञान शाकुंतल-सा फिर
संदर्भ उभर आता सुधियों में
अमराई लिखती जब पाती
खोई तरुणाई छवियों में।

कण-कण
क्रौंच युगल हो जाता
घनानंद-सी पीर जगाता
किंशुक पहने पाग केसरी
द्वार-झरोखे जब रुक जाता।
किस विराट की सृजन-तूलिका
भित्तिचित्र रंगती सदियों से
सुर्ख गुलाबों से भीगे क्षण
पूछ रहे रोमिल कलियों से।
रीतिकाल
पछुआ हो जाता
गीतगोविंदम् काव्य रचाता
जब अल्हड़ मुग्धा सरसों का
घूंघट रह-रह कर उठ जाता।

—सावित्री परमार
श्रीमहावीर उ. मा. विद्यालय, सी-स्कीम, जयपुर, राजस्थान

□

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

ओऽम् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नम उक्तिं विधेम ।।

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्, ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हमें धर्मयुक्त मार्ग पर चलाओ। आप हमारे सब कर्मों को जानते हो। हमें पाप कर्मों से दूर रखो। हम सब आपकी स्तुति किया करें।

अ. १–१८९–१

संस्कृति का चरम - बिंदु

□

नानी पालखीवाला

०००

भारतीय संस्कृति ने प्रज्ञा के परिष्कार को प्रोत्साहित किया है। बाजार में बिकने वाली प्रज्ञा के नहीं, उस प्रज्ञा के, जो सत्यान्वेषी मन द्वारा आनंद में डूबी रहती है।

०००

मानव-इतिहास के कतिपय सर्वाधिक ज्योतिर्मय काल वे थे, जिनमें अनेक सभ्यताएं भारत में फूली-फली थीं।

उपनिषद दार्शनिक विवेचना की आदि-निधि हैं, तथा उनमें ब्रह्म के स्वरूप और ब्रह्म-आत्मा की एकता को अनेक रूपों में वर्णित किया गया है। उनका संदेश है कि जीवन का ध्येय मात्र भौतिक सफलता नहीं है, और सफलता के अर्थ मात्र धन संग्रह नहीं है। अनंत सत्य की अनंतशोध ही मानव की चरम नियति है। उपनिषद उन तीन अति प्राचीन प्रश्नों के स्मरणातीत उत्तर देते हैं, जिन्हें टी. एस. ईलियट ने अपनी एक कविता में इन शब्दों में उठाया है :

'कहां है वह जीवन, जिसे हमने जीने में खो दिया ?
कहां है वह प्रज्ञा, जिसे हमने ज्ञानार्जन में खो दिया ?
कहां है वह परम ज्ञान, जिसे हमने सूचना-संग्रह में खो दिया ?'

पश्चिम के देशों में जो असंख्य मानस-रोग-विशेषज्ञ दिखायी देते हैं, वे इस घिनौनी हक़ीक़त के सूचक हैं कि भौतिक सभ्यता कभी आत्मा की प्यास को नहीं बुझा सकती। प्रख्यात मनोविद् कार्ल गुस्ताव जुंग ने एक बार कहा था कि ६० वर्षों की अवधि में जब तक वे मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रैक्टिस करते रहे, उन्होंने पाया कि सच्ची धार्मिक श्रद्धा और शक्ति से युक्त व्यक्ति को कभी मानस-रोग-विशेषज्ञ के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जब जीवन स्वयं अपनी ही रोशनी से जगमग हो जाता है, और जीवन परमात्मा की विराट शक्ति का अक्षय आगार बन जाता है, तब सारे तनावों से मुक्ति मिल जाती है, और उन्हें दूर करने के लिए शामकों की

आवश्यकता नहीं पड़ती।

'हमारी संस्कृति' (भारतीय विद्या भवन का 'अवर कल्चर' नाम का प्रकाशन) में उसके लेखक चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने एक महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि अन्य देशों की तुलना में भारत ही संभवतः एकमात्र देश है, जहां एक प्रभावी सरकार से दूसरी प्रभावी सरकार के बीच, दीर्घतम अंतराल देखने को मिलते हैं। इन दीर्घ और महान अंतरालों में लोगों पर शासन करने के लिए, न कोई केन्द्रीय सरकार थी, न कोई प्रादेशिक सरकार।

'इन अंतरालों में, जिन्हें अ-सरकार वाले अंतराल भी कहा जा सकता है, सामाजिक जीवन की धारा निर्विरोध और शांत ढंग से इसलिए निरंतर प्रवाहित होती रही कि हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत के रूप में आत्मानुशासन, संयुक्त परिवार और जाति का अनुशासन प्राप्त हुआ था। इन अनुशासनों के कारण ही, न केवल शांति और व्यवस्था बनी रही, अपितु कला और वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्रों के अतिरिक्त ललित कलाओं, और कुटीर-उद्योगों के, जिनके उत्पादन दैनिक जीवन के लिए अनिवार्य थे, क्षेत्रों ने भी शानदार प्रगति की। समाज पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा कि उस पर ऊपर से कोई शासन नहीं कर रहा है। नाममात्र का राजा शासक का कर्त्तव्य निभाने के लिए काफ़ी था। कभी-कभी तो ऐसे नाममात्र के राजा की भी आवश्यकता नहीं होती थी।...... यह शासक-विहीन राष्ट्र न टूटा, न खंडित हुआ, अपितु जातियों, संयुक्त परिवारों, और राष्ट्रीय धर्म की बदौलत अखंडित रहा। सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर पर कुलधर्म, जातिधर्म तथा भारत-धर्म का पालन करते हुए, सदाचारी लोगों ने देश को एकता के सूत्र में बांधे रखा। इतनी लंबी अवधि तक, भारत के अलावा विश्व का अन्य कोई देश और समाज शासक-विहीन रहकर निरन्तर सुखी और शांत रहते हुए भी, निरन्तर प्रगति-पथ पर चलता रहा हो, ऐसा कोई उदाहरण सुनने या पढ़ने को नहीं मिलता।'

आत्मानुशासन पर भारतीय धर्म में बहुत बल दिया गया है। उसने अमीरों को ग़रीबों के, समर्थों को असमर्थों और ताक़तवरों को कमज़ोरों के प्रति करुणावान होना सिखाया। उसने लोगों के मन में यह बात बैठायी कि शाश्वत सुख के स्थान पर क्षणिक सुखों के पीछे भागने का कोई मूल्य नहीं है, और राष्ट्रीय प्रगति तथा गौरव से अधिक लाभप्रद और कुछ नहीं।

और सर्वोपरि, भारतीय संस्कृति ने प्रज्ञा के परिष्कार को प्रोत्साहित किया है, बाज़ार में बिकने वाली प्रज्ञा के नहीं, उस प्रज्ञा के जो सत्यान्वेषी मन द्वारा अनुभूत आनंद में डूबी रहती है।

[प्रस्तुति : हरि]

☐

जैन और बुद्धकालीन सौन्दर्य-प्रसाधन

□

मालिनी बिसेन

सौंदर्य एक नैसर्गिक देन है और हर व्यक्ति के साथ सौंदर्य की परिभाषा बदलती रहती है। सौंदर्य के अभिवर्द्धन में प्रसाधन विशेष महत्व रखते हैं। प्रसाधन-प्रेम एक सहज प्रवृत्ति है जो केवल मनुष्य मात्र तक ही सीमित नहीं है। स्वयं प्रकृति अपने आपको समय-समय पर सजाती-संवारती रहती है। वसंत की वासंती विभा और सावन की सावनी शाम क्या उसी तथ्य को व्यक्त नहीं करते? वृक्षों को हरीतिमा देकर ही प्रकृति संतुष्ट नहीं होती, उन्हें मोहक फूलों से और मधुर फलों से सजा भी देती है। पुष्पों के रंगों से आकर्षित होकर उनकी सुगंध से मतवाले भ्रमर उनका रस लेते हुए पराग परिवहन करते हैं। तभी तो कहा है–

पयसा कमलं कमलेन पयः
पयसा कमलेन विभाति सरः

प्रकृति ने ही मानव को प्रसाधन-प्रेम दिया है, प्रसाधन का अधिकार और अलंकार को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने की युक्तियां सिखलायी हैं तभी तो मानव में प्रसाधन की, अपने आपको अलंकृत करने की प्रवृत्ति स्वयंभू है, स्वाभाविक है।

प्रसाधन से सहज सौंदर्य और भी निखर उठता है। वैदिक काल में श्रृंगार और सौंदर्य-वृद्धि प्रसाधन के मुख्य उद्देश्य रहे, किंतु जैन और बुद्ध काल में शारीरिक विकास और स्वास्थ्य भी इसमें सम्मिलित हो गये। आयुर्वेद साहित्य में–जिसके आधारभत ग्रंथ–चरक, सुश्रुत और अष्टांग श्रृंगार संग्रह हैं–भी प्रसाधन और अलंकार का उल्लेख थोड़ी-बहुत मात्रा में मिलता है परंतु बौद्ध-साहित्य में इनका काफी अधिक उल्लेख मिलता है।

आंखों में अंजन लगाने से आंखें अधिक सुंदर तो लगती ही हैं, पर साथ में नेत्र की ज्योति को भी लाभ पहुंचता है। शरीर का सौंदर्य कुछ स्वाभाविक होता है और कुछ प्रयत्नशील, तभी तो आक-

र्पण और सुंदरता बढ़ाने की सभी साधन-शैलियां प्रसाधन शब्द के अंतर्गत आ जाती हैं।

गुप्तकाल, जो सातवीं सदी तक रहा, देश की समृद्धि तथा वैभव का युग था और भारत के इतिहास में इसे स्वर्णकाल माना जाता है, गुप्त राजा यद्यपि शिव और विष्णु के उपासक थे, फिर भी संकीर्ण विचार के नहीं थे। बौद्ध और जैन धर्म भी इसी समय फूले-फले। अजंता गुफा की चित्रकारी इसी समय में हुई थी। दैनिक जीवन की क्रियाओं के चित्रण चित्रों द्वारा अजंता में दिखलायी देते हैं। दर्पण को हाथ में लेकर अपना प्रसाधन करती हुई स्त्री, वादकों के साथ नृत्य करती हुई नर्तकी, राजा का जुलूस, योद्धा के वेष में सिपाही—अजंता में बहुत सौंदर्यपूर्ण ढंग से चित्रित हैं।

बौद्धकाल के विषय में जानकारी जातक और विनयपिटक से मिलती है। ग्रंथ 'ब्रह्मजाल सूत्र' के अनुसार परिवेश के अंतर्गत अनेक वस्तुएं आ जाती हैं जैसे (१) उत्सादन : सुगंधित वस्तुओं का शरीर पर लेप करना, (२) परिमर्दन : मलना, दबाना, (३) स्नान : सभी अंग प्रत्यंगों को धो डालना, (४) आदर्श : दर्पण या आईने में मुख देखना, (५) अंजन : आंखों में सुरमा या काजल लगाना, (६) माल्य-विलेपन : माला धारण करना, (७) मुख चूर्ण : मुंह पर पावडर लगाना, (८) मुखालेपन : मुख पर सुगंधित लेप करना, (९) हस्तबंधन : हाथों में कंकण पहनाना, (१०) शिखा बंधन : कंघी करके बालों को संवारना, (११) मणि : रत्न धारण करना, (१२) उदातानी-दिग्दर्शनी : सोने या चांदी के तारों का बना कलाबत्तू के काम वाला परिधान पहनना।

उत्सादन से रंग निखरता है और चेहरा सुंदर हो जाता है, परिमर्दन या उद्घर्षण से शरीर का मोटापा कम होता है। नीचे लिखा श्लोक इसे स्पष्ट करता है।

'उत्सादनाद् भवेत्स्त्रीणां विशेषात् कांतिमद् वपुः ।।
तेजनं त्वम्मंतस्याग्नेः सिरामुखविवेचनम् ।
उद्घर्षण त्विष्टकया कण्डूकोठ विनाशनम् ।

प्रसाधन में नाना प्रकार की सुगंधियां, केश रंजन, सुगंधित तेल, अंजन, अनुलेपन, मुक्तक माला, फूल आदि का समावेश होता है। वस्त्रों का परिधान, आभूषणों का पहनना, माला धारण करना, ताम्बूल खाना प्रसाधन में आता है। उस समय

प्रसाधन नियमानुसार और नियमित रूप से किया जाता था।

सर्वप्रथम सुगंधित तेल से शरीर की मालिश की जाती थी। यह सुगंधित तेल बनाने के अनेक नुस्खे दिये गये हैं। दालचीनी, जायफल, केसर, कस्तूरी, कपूर आदि के अलावा इस तेल में मौलश्री के फूल भी मिलाये जाते थे। मौलश्री के फूलों से तेल की सुगंध तो बढ़ती ही थी, त्वचा भी मुलायम हो जाती थी। उसके बाद स्नान करने की विधि बतायी गयी है जो शरीर के प्रसाधन के लिए धार्मिक और स्वास्थ्य दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण बतायी गयी है। शरीर पर उबटन रगड़कर सुगंधित जल से धोया जाता था। उस पर गुलाब की पंखुड़ियों से या गुलाबजल से स्नान के पानी को सुगंधित किया जाता था।

भिक्षुओं के स्नान करने की विधि और नियम के बारे में भगवान बुद्ध के दिये हुए आदेश 'चुल्लवग्ग' ग्रंथ में पाये जाते हैं। शीतल जल के अतिरिक्त गरम पानी के स्नान के लिए 'जन्तक घर' भी थे। इन घरों को बनाने का विस्तृत उल्लेख 'चुल्लवग्ग' में मिलता है। ये 'जन्तक घर' भिक्षुओं, भिक्षुणियों तथा सामान्यजनों के लिए भी होते थे। मोहेन-जो-दड़ों की खुदाई में गरम स्नान गृह भी मिला है।

स्नान के पश्चात् शरीर को खूब अच्छी तरह से कपड़े से पोंछ दिया जाता है। बाल जब थोड़े-थोड़े गीले रहते तभी उन्हें सुगंधित धूप दी जाती थी ताकि उनसे सुगंध आती रहे। धूप इस मात्रा में दी जाती थी कि बाल सूख जायें पर अधिक रुक्ष होकर टूटने न लगें। लंबे, आगे से घुंघराले, काले पतले और कोमल बालों की प्रशंसा की गयी है। बालों के काले रंग की उपमा भ्रमरों के समूह के साथ दी गयी है।

'कृष्णन् सूक्ष्मान् मृदून् दीर्घान समुदग्रथ्य शुचिस्मिता'

(महाविराट-४)

'अलिपटलनील कुटिलामलकावलिमलिक सन्निधौ वहीत।'

(कुट्टनी-११०)

बालों को सजाने या गूंथने की क्रिया अनेक प्रकार से की जाती थी। कलात्मक चोटियां या विविध प्रकार के जूड़े बनाये जाते थे। बालों में फूल या फूलों का गजरा गूंथना सौंदर्य-सृष्टि का साधन माना जाता था। जिस ऋतु में जो पुष्प खिलते थे उस ऋतु में उन्हीं फूलों से केश-शृंगार किया जाता था। केश-प्रसाधन में अलकजाल भी बनाये जाते थे और घुंघराली लटों से ललाट शोभित किये जाते थे। फिर इन्हें रत्न, मोती या फूलों से गूथकर सजाया जाता था। विरहणियां प्रसाधन नहीं करती थीं। वे एक ही चोटी बनाती थीं और फूलों का त्याग करती थीं।

शरीर पर केसर, कस्तूरी, चंदन, गोरोचन आदि का लेप पसीने की दुर्गंध को कम करने के साथ साथ सजावट के

हेतु भी किया जाता था। इस लेपन से नाना प्रकार के चित्रकर्म अंग-प्रत्यंग पर बड़े ही कलापूर्ण ढंग से किये जाते थे। इसी कारण उस समय में दो ही वस्त्र—उत्तरीय और अधोवस्त्र पहनने की प्रथा थी। ये वस्त्र सिले हुए नहीं होते थे।

शरीर की सजावट अनेक प्रकार से की जाती थी। इस सजावट में पत्रों का और पुष्पों का उपयोग होता था। कानों में जौ के अंकुर, शिरीष के फूल या केतकी के पुष्प लगाये जाते थे। कपोल का प्रसाधन कई रूपों में होता था। इसलिए चित्रकर्म, पत्रभंग और लोध्ररज का उपयोग प्रायः होता था। इसी प्रकार की सजावट बाहुओं पर भी की जाती थी। गालों को अनेक प्रकार की श्वेत-रक्त चंदन की बुंदकियों से सजाया जाता था। चिबुक से दो रेखाएं ऊपर गालों पर कानों की ओर खींच दी जाती थीं। इन पर लता की भांति टहनियां और पत्तियां बना दी जाती थीं। कभी-कभी माथे में बड़ी सी बिंदी या तिलक ही केवल लगा लिया जाता था। चित्रकर्म के लिए 'भक्ति' या 'मकरिका' शब्द उस समय के काव्यों में मिलते हैं। मकरिका या भक्ति चित्रण-क्रिया पत्तों द्वारा अथवा हरताल-मैनसिल के द्वारा भी की जाती थी। पत्तों में प्रायः तमालपत्र का उपयोग किया जाता था।

'तमालपत्राणि युवतीनदनेच'

(कुट्टनीमतम्—१६)

यह चित्र-कर्म चंदन, कस्तूरी आदि वस्तुओं के अनुलेप से भी किया जाता था।

ललाट के बीचों बीच लगाया हुआ तिलक मुख्यतः शोभा एवं मंगल कार्य के लिए ही होता था। वही प्रथा आज भी सौभाग्य चिह्न के रूप में कुंकुम तिलक के रूप में प्रचलित है। गोरोचन, हरताल और मैनसिल द्रव्यों का भी तिलक लगाने के लिए उपयोग किया जाता था।

'तीर्थमृदा गोरोचनया च रचितातिलका'

(हर्षचरित्र—३)

तिलक के लिए श्वेत अभ्रक के चूरे का भी उपयोग किया जाता था। इसे गोंद या मोम की सहायता से माथे पर चिपकाया जाता था। यह क्रम ठीक उसी प्रकार का रहा होगा जिस प्रकार आज के युग में स्त्रियां प्लास्टिक की बिंदियां लगाती हैं। कपोल पर भी चित्र-कर्म किया जाता था।

सौभाग्य चिह्न के रूप में मांग भरने की प्रथा उस समय थी। आज के युग में भी वह प्रथा है। आधुनिक समय में तो लाल सिंदूर से मांग भरना फैशन समझा जाता है।

ओंठ को सर्वत्र कंदूरी के पके लाल फल से उपमा दी गयी है। यह फल बीच में जरा मोटा और किनारों पर पतला होता है और पकने पर गहरा सुर्ख हो जाता है। ओठों पर लाली लाने के लिए रंग के साथ-साथ फल का भी उपयोग होता था। ओठों पर रंग खूब अच्छी तरह से जम जाये इसलिए मोम का उपयोग किया जाता था।
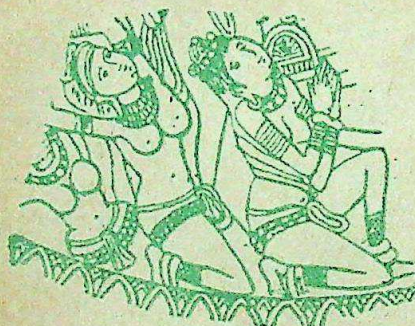
अजंता आदि के चित्रों में ओठों पर जो पीत-श्वेतिमा दिखायी गयी है वह प्रसाधन का ही एक रूप है, क्योंकि उस समय ओठों पर लाली लगाकर लोध का चूर्ण छिड़क देते थे जिससे उन पर आकर्षक पीलापन छा जाता था।

ताम्बूल का उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्णित हुआ है परंतु स्वास्थ्य की अपेक्षा शौक या शोभा के लिए ही इसका अधिक प्रचलन रहा। पान के सेवन से ओठों पर लाली आती है और यह ओठों की लाली प्रसाधन की शोभा है। इसीलिए पान खाने को सौंदर्य की दृष्टि से ही अधिक महत्व दिया जाता था।

भौंहें काली और घनी ही सौंदर्यवर्धक मानी जाती थीं। काव्यों में सर्वथा काली भौंहों का ही उल्लेख मिलता है। भ्रूवों के लिए 'शलाकाजन निर्मितम्' शब्द का प्रयोग मिलता है। इनका प्रसाधन मसि या काजल या अंजन से किया जाता था। पलकों के बाल तथा आंख के ऊपर भौंहों का काला होना नेत्र-शोभा और रक्षा दोनों ही दृष्टि से आवश्यक माना जाता था। इन दोनों के काले रहने से प्रकाश से आंख की रक्षा होती है।

आंखों का सौंदर्य उनके कृष्ण और सफेद दोनों भाग चमकदार और बड़े होने पर निर्भर रहता था। आंखों के सौंदर्य की वृद्धि के लिए काजल, अंजन या सुरमे का उपयोग किया जाता था। सुवीरा नदी में उत्पन्न काला सुरमा आंखों के लिए बहुत ही हितकारी समझा जाता था। यह लगाने के लिए स्वर्ण, ताम्र या लोहे की सलाइयों का उपयोग किया जाता था। अंगुली से भी काजल रचाया जाता था। कोमल और नर्म होने के कारण काजल लगाने में अंगुली ही की प्रधानता रही। विनयपिटक में सुरमे के उपयोग के उल्लेख हैं।

गालों को अनेक प्रकार की श्वेत-रक्त चंदन की बुंदकियों से चित्रित किया जाता था। चिबुक से दो रेखाएं गालों के ऊपर कानों की ओर खींच दी जाती थीं। इसी प्रकार ललाट के ऊपर केश-रेखा के किनारे सफेद-लाल बुंदकियां डाली जाती थीं। अधिकतर ये रेखाएं आंखों की कोरों के ऊपर मिला दी जाती थीं।

कानों का प्रसाधन बहुत ही सरल सुंदर ढंग से किया जाता था। झूमते हुए शिरीष के फूल, शैवाल-मंजरी, कदम्ब के पुष्प या अशोक-पल्लव कानों में लटका दिये जाते थे। सोने-चांदी और रत्नों के झुमकों का भी प्रचलन था। यह प्रचलन

तब से आज तक चला आ रहा है।

उस समय स्तनों का भी प्रसाधन किया जाता था। केसर-कस्तूरी, चंदन, गोरोचन आदि सुवासित द्रव्यों का स्तनों पर अनुलेपन करके, इन पर नाना प्रकार के चित्र बनाये जाते थे। कभी-कभी इनका प्रसाधन विविध पत्तों को काटकर भी किया जाता था। स्तनों पर अगरु-कुमकुम के लेपन का वर्णन भी उस समय के साहित्य में मिलता है।

हथेलियों पर मेहंदी या महावर से सुंदर कलापूर्ण चित्र, रचना की जाती थी। आज भी हथेलियों पर मेहंदी रचाने की प्रथा प्रचलित है। विशेष रूप से विवाह के अवसर पर जब दुल्हन की हथेलियों पर मेंहदी से चित्र बनाये जाते हैं। यह एक विशेष कला मानी जाती है।

पैरों को रंगने की प्रथा बहुत पुरानी है। पैरों में सुकुमारता लाने के लिए उन्हें तेल से रगड़कर, धोकर और पोंछकर फिर उन पर महावर या अलता लगाया जाता था। ये दोनों ही लाल होने के कारण पैरों का सौंदर्य बढ़ाते हैं। आजकल महावर लगाने का रिवाज पूर्वी इलाकों में अधिक है। पश्चिमी इलाकों में और राजपूताने में मेहंदी का प्रयोग अधिक है। महावर बंगाल में अधिक लगाया जाता है। मेहंदी और महावर दोनों की तासीर ठंडी है। मेहंदी रक्त को साफ करती है। मेहंदी को मदयन्तिका भी कहते हैं। पैरों के लाल तलुवे को ही प्रशंसा योग्य माना जाता है और उसके लिए महावर का ही उपयोग किया जाता है।

पैरों में चांदी की पायल पहनने का चलन था। हाथों में भी तरह-तरह के फूलों से गुंथी मालाएं पहनी जाती थीं। रत्न-जटित कंगन या बाजूबंद पहनने का भी चलन था। गले में फूलों की मालाएं या चंदनहार पहना जाता था। कटि पर कमरबंद लगाया जाता था।

वस्त्रों के परिधान से अंगों का सौष्ठव बढ़ता है। पति के पास पत्नी झीने वस्त्र पहन कर ही जाती थी। यह वस्त्र नाना-प्रकार के नेत्र-रंजक रंगों से रंगा होता था। अनेक विध प्रसाधनों से समलंकृत पत्नी के तारुण्य की छलकती हुई कांति उन वस्त्रों से और भी निखर उठती थी।

दर्पण का महत्व प्रसाधन कार्य में बहुत समझा जाता था। क्योंकि प्रसाधन की बारीकियां उसमें सूक्ष्म रूप से दिखायी देती हैं। दर्पण भिन्न-भिन्न आकार के होते थे।

अजंता की गुफाओं में पत्थरों में उत्कीर्ण नर्तकियां, गायिकाएं, अंत:पुर की स्त्रियां उस समय का सही चित्र आंखों के सामने साकार कर देती हैं। उनकी केश-रचना, उनके आभूषण, कमरबंद, करधनी, कंगन, पाजेब, झुमके आदि वस्तुएं उस समय की प्रसाधन-कुशलता का सही-सही परिचय कराती हैं।

अजंता के मंडप में नारियों को विशेष स्थान दिया गया है। यहां स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग का बड़ा ही मनोरम चित्रण मिलता है। उनकी हस्तमुद्राओं का इतना सूक्ष्म और विविध चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। उनके केशकलापों का प्रसाधन अत्यंत ही हृदयाकर्षक है। नेत्र और मुख के प्रसाधन में असीम पूर्णता और अपूर्व कलात्मकता का परिचय मिलता है। भारत के उस गौरवशाली युग में प्रसाधन-कला पूर्णता की जिस चरम सीमा तक पहुंची थी उतनी कभी भी नहीं पहुंची। सौंदर्य और जीवन जैसे एक-दूसरे में घुल-मिलकर एक हो गये थे। जीवन और कला दोनों के मिल जाने से एक बहुत ही सुंदर पूर्णांक बन गया था और वह था कलात्मक जीवन।

—लिन्डन हाउस,
लेन्स डाउन रोड, बंबई-३९

□

वेश्या ने आज़ाद को बचा लिया

उन दिनों चन्द्रशेखर 'आज़ाद' का फोटो पुलिसवालों के पास नहीं था। आज़ाद की ज़िन्दगी में एक ही फोटो मूंछों पर ताव देते हुए खिचा है, जो उनके मामा ने खींचा था। शहादत के बाद वह प्रकाश में आया। जीते-जी उनका कोई फोटो नहीं पा सका। केवल हुलिया के आधार पर उनकी खोज की जाती थी।

आज़ाद कानपुर में एक दोस्त से मिलने जा रहे थे। सी. आई. डी. पीछे लग गयी और खबर पाकर पुलिस दस्ता दौड़कर आ गया।

आज़ाद चकराये, और एक धर्मशाला में घुस गये। वहां एक बारात टिकी हुई थी। उस ज़माने के दस्तूर के मुताबिक वेश्या नाच रही थी। आज़ाद घुसकर बैठ गये। उनका तगड़ा डील-डौल देखकर वेश्या उन पर रीझ-सी गयी और एकदम उनसे सटकर बैठ गयी। आज़ाद घबरा गये और बोले—'बहनजी, यह क्या कर रही हो?' तब तक पुलिस आ गयी। आज़ाद पर शक गया।

'तुम कौन हो?'

'मैं इनका भाई हूं।' आज़ाद बोले।

'अच्छा-अच्छा!' पुलिस अफ़सर मान गया कि तगड़े डील-डौल वाले इस गुंडे को वेश्या ने बतौर भाई के अपनी हिफाज़त के लिए रख छोड़ा है। और पुलिस दस्ता उल्टे पांव लौट गया।

— कमल सौगानी

□

ऐसी मेरी मति मारी

पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी
मेरे पग पीछे जाते हैं ऐसी मेरी गति हारी

तुमसे सदा छिपाता आया मैं जीवन की कमज़ोरी
तुम्हें नहीं संचित कर पाई मेरी चंचलता भोरी
सदा बटोरे फिरा हृदय में मैं प्रमाद की अस्थिरता
मेरे भीतर सदा रहा संदेहों का बादल घिरता

डसती रहीं मुझे रह-रह अपनी असफलताएं सारी
पल भर बदल न पाया मन को, ऐसी मेरी मति मारी

मान लिया तुम जीत गये हो, मैं अपनेपन से हारा
बिना उगे ही डूब गया मुझमें मेरा जीवन-तारा
फिर भी मैं इतने अवरोधों में एकाकी खड़ा रहा
रवि से बिछुड़ी धूप सरीखा मैं एकाकी पड़ा रहा

सहा न जाता तेज तुम्हारा मुझसे मेरे अवतारी !
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

डिगती रही कामना मेरी, रह न सका विश्वास अचल
तुम तक पहुंच नहीं पाता है मेरे प्राणों का संबल
तुमने अपना स्नेह भरा पर जल न सका मेरा अंतर
कभी समर्पण के दीपक में ज्योति नहीं जागी पल भर

कभी न सपने में भी मुझसे छूटी मेरी अंधियारी
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

मेरे द्वंद्वों को निर्मित कर तुम ही हो मुझमें रहते
मेरी खंडित तृष्णाओं से तुम्हीं तरसने को कहते
मेरी टूटी तन्मयता को क्यों तुम जोड़ नहीं देते ?
क्यों तुम मरु में जकड़ी जलधारा को छोड़ नहीं देते

मेरा बहना रोके हैं छलना की चट्टानें भारी
पल भर बदल न पाया मन को ऐसी मेरी मति मारी

— रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
दक्षिण सिविल लाइन, पचपेड़ी, जबलपुर, म. प्र.

सन्हैयालाल ओझा का विश्लेषणात्मक लेख

मृत्यु और बुढ़ापा

क्षमा कीजिए, शीर्षक होना चाहिये था 'मृत्यु और बुढ़ापे पर विजय', और यदि विजय नहीं मिली है तो जोड़ा जा सकता है 'कहां तक सम्भव है ?' चूंकि युग विज्ञान का है जिसने कई असम्भव समझे जाने वाले करिश्मे सम्भव कर दिखाये हैं इसलिये इसे प्रारम्भ किया जा सकता था 'विज्ञान द्वारा' जोड़ कर। सम्पादक का यही आदेश है। किन्तु हंसी आती है कि मुझ जैसे अज्ञान-ग्रस्त लेखक को ही ऐसे विज्ञान-ग्रस्त लेख प्रस्तुत करने के लिए चुना गया! उनकी एक कसौटी तो शायद उनकी यह जानकारी हो कि ब-जात खुद मैं जब साठोत्तर बुढ़ापे का स-शरीर अभिलेख मौजूद हूं और यदि मैंने अभी तक अपनी षष्टिपूर्ति नहीं मनाई तो शायद इसलिए कि मैंने उम्र के बावजूद जरूर बुढ़ापे को ठेंगा बता दिया है। इसलिए मेरे लिए लाज़िमी है कि इस रहस्य को मैं अपने पाठकों को बता दूं, शब्दों के माध्यम से ही सही।

दूसरी कसौटी भी उनकी कोई दूर की कौड़ी नहीं है। वे अच्छी तरह जानते हैं कि भारत माता की कोख से जन्म लेने वाली सन्तान का औसत आयुष्य-प्रमाण पार करके मैं अभी तक मौत महारानी को चरका देता आ रहा हूं। सो, सम्पादक ही को क्यों, हर पाठक को स्वाभाविक जिज्ञासा से यह पूछने का अधिकार है कि इसका कारण चाहे न हो पर नुस्खा तो मुझसे पूछे ही।

शतंजीवियों से इस दीर्घजीवन के रहस्य बराबर पूछे जाते रहे हैं; मैं भला किस खेत की मूली हूं ? पर मैं सच कहता हूं, कसम खाकर भी (और कसम कोई ज़हर नहीं है कि इसे खाकर मौत आ जाये या उम्र कम हो जाये), कि साठ की सीमा सहज पार कर लेने का मेरे पास कोई नुस्खा नहीं है। षष्टिपूर्ति मनाने वाले बड़े लोग होते हैं, मैं तो अपना जन्मदिन भी भूल चुका हूं। विज्ञान के किसी करिश्मे की बात मैं नहीं जानता। बचपन में अवश्य गुरुजनों को प्रणिपात करने पर आशीर्वाद मिलता था 'जीते रहो और झटपट बूढ़े बनो।' —सो, हो सकता है उनके आशीर्वाद के फल से अभी तक जीवित हूं और झटपट बुढ़ाता भी जा रहा हूं। इसके अलावा यदि पाठक इसे

मेरे अज्ञान का करिश्मा समझते हों तो वे स्वतंत्र हैं। निवेदन यही है कि पाठक इस लेख को प्रेत-लीला न समझें।

यों मैं निश्चित जानता हूं कि एक-न-एक दिन मैं मरूंगा अवश्य! हजारों वर्ष पूर्व जब आधुनिक-विज्ञान का कहीं पता न था हमारे पूर्वज 'जीवेम शरदः शतम्' या 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतम् समाः' के आशीर्वाद में भी अधिक-से-अधिक सौ वर्ष के जीवन की व्यवस्था देते थे। महाभारत जैसे युद्ध से भी बच निकलने वाले अश्वत्थामा या कृपाचार्य अथवा मृकंड ऋषि के अमृतपुत्र मार्कंडेय आदि कुछेक भाग्यशाली महापुरुषों की बात छोड़ दी जाये तो मनुष्य को 'अमृतस्य पुत्राः' कहकर भी उन्होंने 'अन्तवन्त इमे देहा' या 'हन्यमाने शरीरे' कहकर मृत्यु की अमोघता स्वीकार की है! वे बहुत अच्छी तरह जानते थे कि इस अमोघ मृत्यु में ही मानवता का चरम कल्याण है। मृत्यु के देवता को इसीलिये 'शिव' कहा गया है।

पुराण-पुरुष की सापेक्षता में शरीर की चिर-नवीनता उसकी मृत्यु में ही छिपी हुई है। उन्होंने मृत्यु को जीवन का पर्याय ही कहा है। जिस क्षण से जीवन शुरू हुआ उसी क्षण से मृत्यु भी शुरू हो गयी! एक समय अवश्य आता है जीवन में, जब मनुष्य स्वयम् जीवित रहना नहीं चाहता। इच्छा-मृत्यु का वरदान पाने वाले भीष्म पितामह ने भी मौत को निमन्त्रण दिया था। मैं भी अमर होकर करूंगा क्या? रिटायर हो गया हूं। बुढ़ापे के मारे 'नकन्याय गयन' तो नहीं कहता किन्तु बहरा हो गया हूं, इसलिये 'कनक्याय गयन' तो कहता ही हूं। अर्थकरी सक्रिय जीवन से निष्कृति मिल गयी है। जिस दिन लिखने-पढ़ने का मूड नहीं बनता, वह दिन काटे नहीं कटता। और लिखने-पढ़ने का शौक है ही कितने-से अवकाश-प्राप्तलोगों को? कुछ अतिरिक्त करने-धरने से जिन अवकाश-प्राप्तों को प्यार नहीं होता वे खुद ही जल्दी अल्ला मियां को प्यारे हो जाते हैं। शायद मन ही मन, अर्थात् अचेतन में वे यही मनाते रहे हों। एक अवस्था के बाद मृत्यु की इच्छा हो जाना इतना ही स्वाभाविक है, जितना दिन भर काम कर लेने के बाद गहरी नींद की इच्छा का। मृत्यु वस्तुतः है भी क्या? वह एक गहरी दीर्घजीवी नींद ही तो है, निर्विघ्न नींद!

जरा कल्पना कीजिये कि मनुष्य अमर हो जाये तो क्या हो? आज विश्व की आबादी लगभग साढ़े चार अरब से ऊपर है, जिसे अपने सीमित साधनों को देखते

हुए हम 'जनसंख्या का विस्फोट' कहते हैं। जन्म-दर की तुलना में मृत्यु-दर बहुत कम हो जाने से आबादी प्रतिक्षण बेतहाशा बढ़ती जा रही है। अतः जन्म-व्यवस्था को तो एक दम रोक ही देना पड़ेगा। क्या तब स्त्रियां अनावश्यक नहीं घोषित कर दी जा सकती हैं? नये चेहरों के अभाव में जीवन कितना नीरस हो जायेगा? वही-वही पुराने चेहरे, वे ही पुरानी समस्याएं और पुराने संघर्ष। एक उर्दू के शायर ने इसीलिए बहिश्त जाना नामंजूर कर दिया कि वहां हज़ार साल पुरानी और बूढ़ी हूरें ही तो हैं।

अमर हो जाने का मतलब यह तो नहीं कि समय रुक जाये और आप बूढ़े न हों। बच्चा यदि जवान होगा तो लाजिमी है कि जवान बूढ़ा हो। जवान चाहे बूढ़ा बनना न चाहे, पर बच्चा तो जवान बनना चाहता ही है! और 'स्थिति' हम नहीं चाहते हम चाहते हैं निरन्तर गति प्रगति। परिवर्तन ही तो गति है, स्थिति है जड़ता। जो जितना जड़ है, चेतन की तुलना में वह उतना ही दीर्घजीवी है। प्राणियों की अपेक्षा वृक्ष, और वृक्षों की अपेक्षा शिलाएं तथा पर्वत अधिक दीर्घजीवी होते हैं। प्राणियों में भी सुस्त और निष्क्रिय जीव दीर्घजीवी पाये गये हैं। अजगर राम के दीर्घ जीवन का रहस्य उनके कोई भी चाकरी न करने का कारण ही हो सकता है। समुद्र के गहनतम में रहने वाली एक प्रकार की निष्क्रिय-सी मछली बहुत अधिक समय तक जीवित रहने वाली बताई जाती है। विश्व विख्यात उपन्यासकार हक्सले के एक उपन्यास 'मेनी ए समर डाइज़ दी स्वान' में ऐसे दीर्घ जीवन के आकांक्षी धनी पात्रों की कल्पना की गयी है, जो कई प्रकार के रासायनिक प्रयोगों, कृत्रिम वातावरण तथा तद्वत निष्क्रिय जीवन-व्यवहार के कारण समुद्र-तल में पड़े निरर्थक जड़ मत्स्य जैसे हो जाते हैं।

जैव-विज्ञान बताता है कि पूर्णतः विकसित मस्तिष्क और स्नायु-संस्थान के कोशिकों (सेल) की संख्या परिमित है। नष्ट हो जाने पर न तो उनका प्रतिस्थापन सम्भव है, और न ही उनकी संख्या को बढ़ाने का ही कोई उपाय है। शैशव से ही हम अपने वातावरण के विभिन्न व्यापारों और मानसिक-प्रक्रियाओं से इन स्नायु-कोशिकों को अनवरत भरते रहते हैं। यह संचय ही तो हमारा अनुभव और स्मृति है। धीरे-धीरे जीवन की विविधता और समय के साथ इन कोशिकों पर इतनी सूचनाएं और प्रक्रियाएं संग्रहित हो जाती हैं, कि अधिक संग्रह के लिए स्थान ही नहीं बच पाता, बल्कि अधिक सूचनाओं के संचय की चेष्टा में पूर्व-संचित सूचनाओं में भी अव्यवस्था, उच्छृंखलता तथा अराजकता फैल जाती है। तब हम नवीन उद्भावनाओं और नये अनुभवों के लिए उत्तरोत्तर अयोग्य होते जाते हैं। नये सम्पर्कों और नई समस्याओं के लिए सर्वथा नये

मस्तिष्क और नये स्नायु-संस्थान की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है, जो एक नया शिशु ही प्रस्तुत कर सकता है। नया शिशु पूर्व पीढ़ी की नितान्त प्रति-कृति भी नहीं होता। नये शिशु का जन्म पुरुष शुक्र-कीट के नारी डिम्ब-कोष में प्रवेश से सम्भव होता है। प्रत्येक शुक्र-कीट और डिम्ब में तेइस-तेइस गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) परस्पर मिलकर कोष बनाते हैं और अनुगुणित होते रहते हैं। इन गुणसूत्रों की लड़ियों में अवस्थित असख्य जेन ही मानव शरीर की संरचना के उपकरण हैं। जिनके विभिन्न संयोगों से ही विविध प्रकार के मानवों और उनके अंगों का विन्यास और रूपाकार सम्भव है। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक पीढ़ी में स्त्री एक नये ही परिवार से आकर सर्वथा नये गुणसूत्र ही प्रस्तुत करती है। इसी तरह प्रकृति हर व्यक्ति को अपने स्वरूप और स्वभाव में एक अद्वितीय और विशिष्ट इकाई बनाती रहती है। यदि मनुष्य मरे नहीं तो मानव-प्रजाति की यह सारी विविधता और नित्य नवी-नता समाप्त हो जायेगी।

विज्ञान से हटें, तो हमारे शास्त्र कहते हैं कि मर्त्य तो केवल यह शरीर है, इसके भीतर जो आत्मा है वह 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयम् पुरुष पुराण' है, अजर-अमर-शाश्वत! शरीर तो केवल उस आत्मा का आवरण है, वस्त्र है, जो समय और प्रयोग के साथ जीर्ण होता जाता है तथा एक दिन जर्जर होकर फट जाता है। हमें तब वस्त्र बदलना ही पड़ता है। हम हम ही रहते हैं, केवल वस्त्र बदल जाता है। नये वस्त्रों में सम्भव है हम अपने को ही भूल जायें, और पहचान न पायें। नयी स्टेज, नई वेशभूषा, नये मुखौटे, नई भूमिका और नया अभिनय—मृत्यु नहीं, वह हमारा केवल रूपांतरण है! प्रकारान्तर से विज्ञान भी तो कहता है कि जो है उसका कभी नाश नहीं होता, उसका रूपांतरण भले ही हो जाये। हमारा ही क्यों, सृष्टि के समस्त प्राणियों का मूलबीज एक-कोशी जीवाणु (बेक्टिरियम) पूर्णतः एक जीव-द्रव्य-कीट (जर्म-प्लैज़्म), केवल प्रजनन-पदार्थ है, वह कोई नष्ट होने वाला शरीर नहीं है। एक-कोशीय अमीबा भी ऐसा ही जीव-द्रव्य है। उसकी सक्रियता बड़ी सीमित और पूर्व निश्चित है। विखंडन (मिटोसिस) के द्वारा वह एक से दो, दो से चार, इसी तरह अनुगुणित होता हुआ एक से अनेक 'एकोऽहम् बहुस्याम' होता जाता है। एक से दो होने पर पहले एक की मृत्यु नहीं होती केवल वही दो के रूप में एक नयी पीढ़ी बन जाता है। प्राणियों के शरीर ऐसी ही कोशिकाओं के समुच्चय हैं। कालान्तर में विकास के पथ पर ये कोशिकाएं ही क्रिया-विशेष के लिए रूढ़ हो जाती ह, इनमें से कोई मस्तिष्क बनती हैं, कोई प्रजनन-ग्रन्थियां।

अनुमान किया गया है कि मानव-मस्तिष्क में लगभग बारह सौ करोड़

१२,०००,०००,००० कोशिकाओं का समुच्चय है। तीस करोड़ कोशिकाओं से मनुष्य के फेफड़े बने हैं। मानव-रक्त में किसी भी समय लाल रक्त-कोशिकाओं की संख्या पच्चीस हजार अरब बताई जाती है! कहा जाता है, कि इनमें से एक करोड़ कोशिकाएं प्रति सेकंड नष्ट होती और प्रतिस्थापित होती रहती हैं। इन असंख्य कोशिकाओं के भीतर का वह अमर्त्य जीव-द्रव्य (जर्म-प्लैज़्म) एक अत्यन्त सूक्ष्म-मात्रा में छिपा रहता है। गति के मार्ग में इसे बाधा समझ कर मानों इसे हटाकर एक अगम्य कोने में पटक दिया जाता है ताकि उसका अवशिष्ट भाग गति करता हुआ उत्तरोत्तर बढ़ सके। बढ़कर वह हाथ-पांव, आंख, नाक, कान, मस्तिष्क आदि को काम में ले, दौड़े, पानी में तैरे, वृक्षों-पर्वतों पर चढ़े, आकाश में उड़े और इस दुर्धर्ष प्रकृति से लोहा ले! कोने में दुबके हुए उस जीव-द्रव्य का इन कामों से कोई सरोकार नहीं। पाठकों की इच्छा हो तो इसे 'आत्मा' कहकर पुकार सकते हैं। जैन-दर्शन में भी जीव और अजीव के नाम से दो पदार्थों की मूल के नौ पदार्थों में गणना की गयी है।

मेरे एक मनस्तत्वज्ञ मित्र का कहना है कि यह आत्मा-वात्मा कुछ नहीं केवल प्रपंच है और केवल उन लोगों का इच्छा-कुल विचार (विशफुल थिंकिंग) है जो अमरता की तृष्णा में मन को बहलाना चाहते हैं कि इसी बहाने, शरीर चाहे न हो, आत्मा के रूप में हम तो अमर हो ही गये! मिस्र के नभस्पर्शी पिरामिडों में सम्राटों के शव इसी आशा में हज़ारों वर्षों तक सहेजे रखे गये, किन्तु किसी की भी आत्मा ने लौट आकर अपने सुन्दर-कोमल शरीर को फिर से बसाया है क्या? वे कहते हैं, शरीर से परे चैतन्य-वैतन्य कुछ नहीं है शरीर के साथ ही सब कुछ नष्ट हो जाता है। इसलिए शरीर रहते ही सब कुछ कर लेना चाहिए 'यावज्जिवेत् सुखम् जिवेत् ऋणम् कृत्वा घृतम् पिवेत्'।

आत्मा है या नहीं, या कि वैज्ञानिकों का यह अणोरणीयान जीव - द्रव्य ही आत्मा है अथवा कतिपय दार्शनिकों का कल्पना-विलास मात्र है, ये महा ऊहापोह के विषय हैं, मुझ-जैसे अविद्याग्रस्त अज्ञानी के बूते के नही। वस्तुस्थिति जो हो, पर, मेरे भाई, कम-से-कम मैं तो अमरता हर्गिज़ नहीं चाहता, केवल इसीलिए नहीं कि अंगूर खट्टे हैं! शरीर जवाब देने लग गया है, इन्द्रियां शिथिल होने लग गई हैं। मित्र, समाज, परिवार किसी के लिए उपयोगी नहीं रहा। अलबत्ता डाक्टरों के लोभ का विषय हो गया हो सकता हूं। क्या लम्बी उम्र उन्हीं के लिए चाहूंगा? जिनकी जेब खाली होगी वे क्या चाहेंगे? पढ़ने-लिखने को सचमुच बहुत है। दिमाग थका-थका अनुभव करता हो, किन्तु उसकी कोशि-काओं के सम्वेदक-संयोजकों के उत्साह

में कोई कमी नहीं प्रतीत होती और वे अब भी सहकार के नये सूत्रों को जोड़ कर कल्पना को नए आयामों की प्रतीति करा देते हैं–इसीलिए तो आज अपने बावजूद एक ऐसा विरोधाभासी लेख लिखने बैठ गया हूं ! किन्तु कुल मिला कर मन से यही चाहता हूं कि वर्षों से धूल चाटती यह चदरिया जस की तस चाहे न हो सड़-गल जाने के पहले ही इसे उतार कर आसानी से धर दूं।

रह गया बुढ़ापा, सो वह तो होना ही है। वार्धक्य अर्थात् बढ़ते जाना वृद्धिगत होना ! उम्र के साथ ही शरीर भी एक सीमा तक बढ़ता है और इस वृद्धि में शरीर की शक्ति भी बढ़ती है, तथा एक समय मध्याह्न में शिखर पर पहुंचकर प्रखर हो जाती है ! शरीर एक अद्भुत यन्त्र है। इसकी कार्य-क्षमता और कार्य-क्षेत्र का विस्तार आश्चर्य में डालने वाला है। क्या आप विश्वास करेंगे कि आपकी किडनी में नलकों की कुल लम्बाई लगभग साढ़े चार सौ किलोमीटर है ? शरीर में अनवरत रक्त का संचरण करने वाली शिराओं-उपशिराओं की लम्बाई यदि एक लाख साठ हज़ार किलोमीटर बताई जाये तो क्या आप विश्वास कर लेंगे ? मानव-हृदय एक दिन में निरन्तर एक लाख आठ सौ बार धड़कन करता हुआ लगभग पन्द्रह सौ लिटर रक्त पम्प करके सारे शरीर को पहुंचाता है। इन सारे प्रक्रमों में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अकेले हृदय के दिन भर के काम में जितनी ऊर्जा व्यय होती है उससे साठ टन भार को हवा में एक फुट ऊंचा उठाया जा सकता है ! शरीर के इन सारे व्यापारों में ऊर्जा तो व्यय होती ही है, जो रक्त के लाल कणों द्वारा सारे शरीर में पहुंचायी जाती है, किन्तु इन व्यापारों से शरीर के विभिन्न पुर्जे भी घिसते रहते हैं और धीरे-धीरे उनकी कार्य-क्षमता भी क्षीण होती जाती है। हां, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, निष्क्रिय-आलस्य से घिसावट कुछ कम होती है किंतु अ-प्रयोग से जंग भी तो लगने लगती है। एक ही आसन पर दीर्घ काल तक तपस्या करने वाले ऋषियों के बारे में हमने सुना है कि उनके शरीर की पेशियां कठोर हो गयीं और रक्त-संचार के अभाव में उनका हिलना-डुलना भी कठिन हो गया।

प्रायः सुना जाता है कि वैज्ञानिक-प्रगति के इस युग में आदमी को सहज ही बुढ़ापे से रहित दीर्घ जीवन का वरदान मिलना सम्भव हो जायेगा। चाह कर भी मैं इस पर विश्वास नहीं करना चाहता। वैज्ञानिक-प्रगति ने अभी तक यदि कुछ किया है तो केवल इतना ही कि मृत्यु को बुढ़ापे का चरम बिन्दु स्थापित कर दिया है। अब आदमी बूढ़ा होकर ही मरता है। दुर्घटनाएं, हत्याएं या आत्महत्या की बात छोड़ दें, तो कैन्सर जैसी कुछ ही बीमारियां हैं जिन पर अभी काबू नहीं पाया जा सका है, और इन कारणों

से मृत्यु बुढ़ापे के पहले भी हो जाती है। किन्तु इस वैज्ञानिक-युग के पहले यह बात नहीं थी।

मैं अपनी ही बात कहूं तो मैं बचपन में अपने एक दर्जन से कुछ कम ही भाई-बहनों के बीच दूसरे नम्बर पर था, और मेरे चालीस की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते हम केवल दो ही बच रहे : एक मैं और एक मेरी छोटी बहन! अर्थात् जो चल बसे, उनकी मृत्यु का बुढ़ापे से कोई संबंध नहीं बन पाया था, चाहे हम उसे अकाल-मृत्यु कह कर ही संतोष कर लें। एक पाश्चात्य अनुसन्धित्सु के अनुसार प्रागैतिहासिक काल के हमारे पूर्वजों की औसत आयु मात्र अठारह वर्ष थी। ग्रीक और रोमन सभ्यताओं में भी यह प्रमाण तीन या चार वर्ष से अधिक नहीं बढ़ पाया था। इस प्रमाण को ड्योढ़ा होने के लिए मध्य-युग तक प्रतीक्षा करनी पड़ी और तब भी यह केवल उच्च और धनी वर्ग तक ही सीमित रहा। अमरीकी क्रान्ति तक यह संख्या पैंतीस के आसपास रही, यद्यपि बाइबिल के अनुसार एक व्यक्ति के लिए आदर्श आयुष्य-प्रमाण 'थ्री स्कोअर एंड टेन' अर्थात् सत्तर वर्ष है। बाइबिल का यह आदर्श आज भी ज्यों का त्यों है। विज्ञान ने यदि सहायता की है तो केवल इतनी ही कि हम बाइबिल के आदर्श के निकट पहुंच रहे हैं। अतीत में अधिकांश बच्चों की मृत्यु छूत के रोगों से अत्यन्त शैशव में ही हो जाती थी। विज्ञान ने छूत के रोगों से संक्रमण की सफल चिकित्सा उपलब्ध कर दी है, इसलिए बच्चे अब चिकित्सा-सुविधाओं का लाभ उठाकर उस कोमल-अवस्था को बिना विशेष संकट के पार कर जाते हैं।

यह वैज्ञानिक प्रगति का ही फल है कि उच्च वर्ग के पांच वर्ष तक की उम्र के बच्चों के जीवित रहने का औसत प्रतिशत बहुत बढ़ गया है, किन्तु इसके विपरीत सत्तर वर्ष के बूढ़ों का पचहत्तर वर्ष की उम्र तक जीवित रहने का प्रतिशत वही है जो हज़ार वर्ष पूर्व था। स्पष्ट है कि शरीर की एक जैविक-सीमा है। उसके आगे तक जीवित रह सकना एक अपवाद ही कहा जायेगा। यह निश्चित भ्रम है कि वैज्ञानिक-प्रगति भविष्य में आयुष्य प्रमाण को डेढ़ सौ-दो सौ वर्ष तक बढ़ा सकेगी! क्षयंकर या अपकर्षक (डीजेनरेटिव) रोगों के ऊपर भी अनुसन्धान जारी है। यदि कैन्सर पर काबू पा लिया जाये तो भी औसत आयु में दो-तीन वर्ष से अधिक वृद्धि की आशा नहीं की जाती। कुल मिला कर वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पुरुषों के लिए यह आयु-सीमा पचासी वर्ष और स्त्रियों के लिए सत्तासी वर्ष की निश्चित करना सम्भव हो सकेगा। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक सहनशील और नमनीय होती हैं, अतः पुरुषों की अपेक्षा उनका आयुष्य-प्रमाण सदा अधिक रहा है।

आयुर्विज्ञानवेत्ताओं ने बीमारियों को

दो विभागों में बांट दिया है : एक वे जो प्रयोगक्षमता की सीमा पार कर लेने के बाद ह्रास के रूप में प्रकट होती हैं। इसका सबलतम उदाहरण है धमनी-काठिन्य (आर्टिरोस्क्लोरोसिस) । यदि मनुष्य को यह रोग न हो तो आयुष्य-प्रमाण सहज ही आठ-दस वर्ष बढ़ जा सकता है। दूसरे प्रकार के न्यूमोनिया या इन्फ्लुएंजा जैसे भीषण रोग हैं, जो कम उम्र के सामर्थ्यवान लोगों के लिए उतने घातक नहीं होते जितने बुढ़ापे के कारण निर्बल हो गये व्यक्तियों के लिए होते हैं। इसके अतिरिक्त थकावट, मानसिक-आघात तथा दुर्घटनाजन्य आघात झेल सकने की क्षमता आयु-वृद्धि के विलोम अनुपात में कम होती जाती है। किसी व्यक्ति की शारीरिक क्षमता का सम्पूर्ण विकास तीस वर्ष की अवस्था तक सम्पन्न हो जाता है। लगभग एक दशक तक वह इस सीमान्त-शक्ति का उपभोग करता रह सकता है, किन्तु इसके बाद ही इसकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। एक मत से तो परिपक्व अवस्था तक पहुंचने के तत्काल बाद से इस ह्रास का परिमाण एक प्रतिशत प्रतिवर्ष शुरू हो जाता है। एक दूसरे मत का विश्वास है कि परिपक्वावस्था के बाद प्रत्येक साढ़े आठ वर्ष में मृत्यु की सम्भावना दूनी होती जाती है।

हमारे शरीर-यंत्र की रचना में विभिन्न प्रकार के ऊतकों का अन्यतम महत्व है। ये ऊतक (टिश्यूज) कोशिकाओं के विशिष्ट समुदाय से बनते हैं। इन विशेष प्रकार के ऊतकों का कोष शरीर में बड़ा सीमित रहता है। सामान्यतः दांतों के दो सेटों की सामग्री ही हमारे शरीर में मिलती है, अधिक सेटों के लिए नहीं। दूसरी बार जब कोई दांत किसी भी वजह से गिर जाये तो फिर वहां एक अपूरणीय खाई रह ही जाती है! इसी तरह हमारी अन्तःस्राव ग्रन्थियां, स्नायविक-तन्त्रिकाएं या पेशियां भी प्रयोग के कारण प्रतिक्षण क्षरित होती रहती हैं और इस प्रवृत्ति को रोकने का कोई उपाय नहीं है। क्षय की यह सारी प्रक्रिया अपरिशोधनीय और अप्रतिवर्तनीय (इरिव्हर्सिबल) है। यह ह्रासक-प्रक्रिया, कंकाल या संरचनात्मक ढांचे को सम्हाले रखने वाले कठोर ऊतकों की अपेक्षा, विशेष रूप से नर्म और मृदु ऊतकों को अधिक त्वरा से प्रभावित करती है। फलस्वरूप किडनी, यकृत (लिवर), पेशियां आदि सिकुड़ने लग जाते हैं। मस्तिष्क में धमनियों की अपेक्षा भूरे पदार्थ के ऊतक जल्दी सिकुड़ते हैं, फलस्वरूप मस्तिष्क के ढांचे में खाली जगह बढ़ जाती है, किन्तु धमनियों की लम्बाई पूर्ववत रहने से वे मुड़-मुड़ाकर छल्लों का रूप ले लेती हैं। पेशियों की तुलना में शरीर का चर्म-संस्थान भी जल्दी नहीं सिकुड़ता। अतः पेशियों के तथा चर्बी के ह्रास के कारण चमड़े में सिलवटें पड़ जाती हैं। कैल्शियम के चयापचय में दोष पड़ जाने से चूना और

लवण रक्त में घुल कर अस्थियों को भुरभुरी और तड़कीली बना देते हैं। एक मत यह है कि कोशिकाओं में दोष हो जाने से वे एन्झाइम पैदा करने में असमर्थ हो जाते हैं। कतिपय मामलों में युवा-प्राणियों के ऊतकों के प्रत्यारोपण (ग्राफ्ट) से अवश्य लाभ पहुंचा है। अन्य समर्थ प्राणियों की प्रजनन-ग्रन्थियों का प्रत्यारोपण धनिक-वर्ग के लिए प्रयोग की वस्तु हो गयी है। किन्तु ये सारे उपाय अस्थाई ही हैं। बुढ़ापा, देर-सवेर, अपना प्राप्य लेकर ही रहता है।

कहा जा सकता है कि शरीर के विभिन्न अंगों की क्षमता का एक द्वारिक (थ्रेशोल्ड) स्तर है, वहां तक पहुंचने के बाद फिर सामान्य अवस्था से सामंजस्य नहीं रखा जा सकता। उम्र के साथ व्यक्ति इस द्वारिक क्षमता के निकट पहुंचता जाता है, और उसके बाद ज़रा-सा असंतुलन, ज़रा-सी असावधानी, मामूली-सा शारीरिक या मानसिक आघात कुछ भी बहाना उसे मृत्यु के गढ़े में ढकेल दे सकता है। उत्तरावस्था में पेशियां सिकुड़ती ही नहीं वे कड़ी भी पड़ जाती हैं और नम्य न रहने से अड़ियल हो उठती हैं। कैल्शियम के दूषित चयापचय के कारण रक्त में चूने और लवण की मात्रा बढ़ कर धमनियों की भीतरी दीवारों पर अटक कर जमती जाती है और रक्त के सम्यक प्रवाह के लिए आवश्यक स्थान ही कम नहीं करती, बल्कि धमनियों को सख्त भी कर देती है और उनमें संकुचन-विकचन की शक्ति नहीं रहती। हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ धमनियों को फैलना चाहिए, ताकि उनमें ऊर्जा संग्रहित हो जाये। हृदय जब विराम करता है तो धमनियां सिकुड़ कर रक्त को परिक्रमण के लिए बाहर ढकेल देती हैं। धमनियों के सख्त हो जाने पर इस प्रक्रिया में रुकावट पैदा हो जाती है।

ऐसा क्यों होता है? — अध्ययन से पता लगा है कि शरीर में ऊतकों को परस्पर जोड़ने वाला एक कोलेजन नामक पदार्थ है, जो सम्पूर्ण प्रोटीन का तीस प्रतिशत शरीर में मिलता है। कुछ और ऐसे ही संयोजक पदार्थों को मिला कर सारे शरीर के प्रोटीनों का चालीस प्रतिशत कोलेजन हो जाता है। कोलेजन का महत्व इसमें है कि एक तो यह प्रोटीन है। दूसरे एक बार निर्मित हो जाने पर यह जीवन भर बना रहता है। शरीर के कई स्थानों पर इसका पुनर्स्थापन भी नहीं हो सकता। किन्तु इसमें परिवर्तन होता रहता है, क्योंकि इसमें समान गुण के मूलकण संयोजित होकर इन्हें बहुलक (पोलीमेरिक) बना देते हैं। रबड़, प्लास्टिक और कागज़ भी ऐसे ही बहुलक पदार्थ हैं, जो समय के बाद कड़े, भुरभुरे और तड़कीले हो जाते हैं। प्रत्येक धमनी कोशिक के इस कोलेजन से घिरी रहती है। फेफड़ों का मुख्य प्रोटीन कोलेजन है, और उनकी नमनीयता का सारा

दारोमदार इसी पर निर्भर करता है। एक अवस्था के बाद कोलेजन से घिरे सभी अवयवों का सख्त हो जाना अनिवार्य है।

यों तो महाधमनी (एओर्टा) का आकार मनुष्य की साठ वर्ष तक की अवस्था तक बढ़ता रहता है, किन्तु उसकी नमनीयता घटती जाती है। अस्सी वर्ष तक की अवस्था तक तो ये धमनियां लौह-नलिकाएं हो जाती हैं, और शरीर के महत्वपूर्ण अवयवों को पर्याप्त मात्रा में रक्त के द्वारा आक्सीजन मिलना रुक जाता है। हमारे शरीर की कार्य-प्रणाली कई परस्पर-पूरक और सहयोगी भागों में बंटी हुई है जिनमें से तीन प्रमुख प्रणालियां हैं: केंद्रीय स्नायविक प्रणाली (सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम), हृदय से सम्बन्धित रक्त-संचार और वितरण प्रणाली (कार्डियो-वेस्क्यूलर सिस्टम) और गैस-वितरण के लिए फुफ्फुसीय प्रणाली (पल्मनरी सिस्टम)। इन तीनों प्रणालियों के द्वारा सारे शरीर में रक्त संचार के द्वारा अनवरत ऑक्सीजन पहुंचाई जाती है। अन्य प्रणालियों के दोष या क्षय को शरीर काफी समय तक सहन कर सकता है, किन्तु यदि इन तीन प्रणालियों में दोष पैदा हो जाये तो मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। हमारे पूरे शरीर में ऑक्सीजन का अधिकतम भंडार केवल चार मिनिट की अवधि के लिए ही पर्याप्त रहता है। हम सांस के द्वारा ऑक्सीजन प्रतिक्षण बाहरी वायुमंडल से ग्रहण करते हैं। ऑक्सीजन के मूलकणों को कोशिकों की झिल्ली के ऊतक आगे ठेलते हैं। इन ऊतकों के दूषित हो जाने पर फेफड़ों की सामान्य प्रक्रिया बाधित हो जाती है।

मृत्यु के जो प्रमुख तीन कारण हैं, वे इन्हीं तीन प्रणालियों से सम्बन्धित हैं: हृदय, मस्तिष्क और फुफ्फुस। मस्तिष्क में रक्त पहुंचने में बाधा होने पर उसमें ऑक्सीजन का अभाव हो जाता है और वह हृदय की तथा धमनियों की पेशियों को कार्य करने के लिए आवश्यक सूचनाएं नहीं दे पाता। इधर फेफड़े रक्त-नलिकाओं में गैस - विनिमय के लिए पर्याप्त शुद्ध वायु पहुंचाने में असमर्थ हो जाते हैं। और महत्वपूर्ण ऊतकों को रक्त-संचार या तो हृदय स्वयम् या धमनियां ही बन्द कर देती हैं। कुछ समय पूर्व तक इनमें से किसी एक प्रणाली के सदोष होते ही दूसरी दोनों प्रणालियां भी सदोष हो जाती थीं। अब वैज्ञानिक-प्रगति से यह संभव हो सका है कि एक प्रणाली के सदोष हो जाने पर उसे अलग-थलग करके दूसरी प्रणालियों को कुछ समय तक चालू रखा जा सकता है।

रक्त-संचार में गड़बड़ी बुढ़ापे में मृत्यु का प्रमुख कारण माना गया है। शरीर के वजन के अनुसार, प्रत्येक किलो के लिए आवश्यक अस्सी मिलिलिटर रक्त-प्रवाह के लिए हमारी धमनियों का आकार या समाई सामान्यतः काफी

बड़ी रहती है। इसीसे आवेश के समय जब हृदय को अधिक मात्रा में रक्त पम्प करना पड़ता है तो धमनियों को उसे ठेलने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। किन्तु यदि धमनियां सख्त हों तो वे रक्त की बाढ़ को सहन नहीं कर सकतीं और कभी-कभी फूल कर फट भी जा सकती हैं। मस्तिष्क से ठीक समय पर सन्देश न मिलने पर या सिकुड़ जाने तथा सख्त हो जाने से कभी-कभी हृदय की पेशियां ही काम नहीं करतीं और तब मायोकार्डिएल इनफार्क्शन जैसे घातक रोग हो जाते हैं। मस्तिष्क से सूचना न मिलने के कारण अन्तःस्राव-ग्रन्थियां भी काम बन्द कर देती हैं और आवश्यक हार्मोनों के अभाव में मृत्यु धर दबोचती है। फेफड़े जहां एक ओर ऑक्सीजन पहुंचाने में विफल हो जाते हैं वहीं दूसरी ओर कार्बन-डायोक्साइड को हटाने का काम भी ठप्प हो जाता है।

भाई सम्पादक! मेरे इस प्रबन्ध से पाठकों को, और आपको भी, यदि निराशा हुई हो तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। कहां तो वे आशा लगाये बैठे होंगे कि मैं उन्हें कोई ऐसा वैज्ञानिक नुस्खा बता दूं कि वे बुढ़ापे और मृत्यु को व्यर्थ कर दें, और कहां मैं उन्हें उनकी अनिवार्यता की ओर घसीट लाया हूं। मैं उनकी आशाओं को समझता हूं। मनुष्य मात्र की यह आशा और आकांक्षा रही है और इसके लिए वह सदा से प्रयत्न भी करता आ रहा है।

मिस्र के सम्राटों की बात मैं ऊपर कह आया हूं। इतिहास-काल में ही चौथी शताब्दि ईस्वी में एक चीनी कीमियागर 'कू हुंग' का उल्लेख मिलता है, जिसने अमर जीवन का एक नुस्खा तैयार किया था। उसके अनुसार द्रव-स्वर्ण में उसके नौ गुने भार का शुद्ध हिंगुल मिलाकर उसे एक नये तत्व के रूप में विकसित कर लिया जाये। उसने कहा है कि इस तत्व के सेवन से आदमी कभी नहीं मरेगा! वह स्वयम् इस प्रयोग को इसलिये नहीं कर सका कि वह अपनी गरीबी के कारण यह सामग्री नहीं जुटा सका! हमारे प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी ऐसे यौगिकों का वर्णन है। मुझे एक बार प्रसिद्ध वैद्य आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने एक ऐसे ही लुप्तप्राय रस-रत्नाकर जैसे किसी ग्रंथ का हवाला देकर एक यौगिक का उल्लेख किया था, जिसको तैयार करने के लिए सुविधाएं जुटाना असम्भवप्राय था! दही के विधिवत सेवन तथा अन्य औषधियों के उपचार से कायाकल्प की घटना तो अभी हाल की बात है! मधु-त्रिफला-शिलाजीत अथवा अन्य जड़ी-बूटियों के निरन्तर सेवन से शक्ति के क्षय को रोका जा सकता है इसकी प्रतीति हमें आयुर्वेद के विद्वान बराबर देते रहते हैं। ग्रंथियों के प्रत्यारोपण के लाभ की बात भी मैं ऊपर कह चुका हूं किन्तु मैं इससे यह विश्वास नहीं कर सकता कि ये मृत्यु को रोक सकते हैं।

आये दिन आज भी समाचारपत्रों

या भड़काने वाले लेखों में अमेरिका या विदेशों की ऐसी संस्थाओं का उल्लेख मिल जाता है, जो धनिकों की हवस का लाभ उठाकर उनके शवों को इस आशा में संरक्षित रखते हैं, कि जब विज्ञान मृत्यु पर विजय पा ले तो वे फिर जी उठें। वे जी भी उठें, तो पुराने जीर्ण शरीर से ऐसा मोह क्यों ? नये शरीर में नई सम्भावनाओं से युक्त नया जीवन प्रारम्भ करने का उत्साह उनमें क्यों नहीं होता ? वैसे भी उन्हें भय क्या है ? आत्मा को वे मानते हैं तो ठीक ही है। वैसे विज्ञान भी जीव-द्रव्य (जर्म-प्लैज़्म) की तो अमरता मानता ही है। और अब तो यह सर्वविदित वैज्ञानिक-तथ्य है कि, जो है, उसका कभी नाश नहीं होता, रूपांतरण भले ही हो जाये।

मृत्यु से नहीं वे रोगों से डरें यह बात तो समझ में आती है। पर, जाने या अनजाने, रोगों को तो वे बराबर निमन्त्रण देते रहते हैं।

धूम्रपान, सुरापान, शहरों में दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा। पर्यावरणीय प्रदूषण, युद्ध, हिंसा, हत्याएं—बेचारे बुढ़ापे को ही क्यों दोष दिया जाये ? आज भी तीस प्रतिशत से अधिक मृत्यु की जिम्मेदारी इन मनुष्यकृत उपद्रवों पर है !

मृत्यु और बुढ़ापे के बारे में मैं तो इतना ही जानता हूं और इससे अधिक जानकर भी मैं बुढ़ापे के कारण अशक्य हो जाने की स्थिति तक जीवित रहना नहीं चाहूंगा। अमेरिका में ही एक स्वेच्छा से यूथनेशिया (सुख-मृत्यु) चाहने वालों का सम्प्रदाय बन गया है। अभी हाल में एक विश्व-प्रसिद्ध लेखक और विचारक आर्थर कोस्लर ने अपनी पत्नी सहित स्वेच्छा-मृत्यु का वरण किया है, क्योंकि अधिक जीवित रहकर वह कैन्सर-रोग की पीड़ा सहन करते हुए मरना नहीं चाहता था। मैं उसके साहस और विचारों का कायल हूं। सम्पादक भाई ! अच्छा होता यदि आप बुढ़ापे पर लिखने के लिए तो किसी युवक को आमन्त्रित करते और मृत्यु पर लिखने के लिए..... अब इसके लिए क्या परामर्श दूं आपको ? बस, आपके और सभी पाठकों के लिए ईशावास्य उपनिषद का यही वाक्य फिर दुहरा देता हूं, 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।'

—८/ए नन्दन रोड, भवानीपुर, कलकत्ता-७०००२५

☐

एक बार एक नास्तिक ने प्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखक चेस्टर्टन से पूछा, 'संसार भर में होने वाले युद्ध और कई प्रकार के पाप क्या इस बात के सबूत नहीं हैं कि धर्म अपने मनोरथ में असफल रहा है ?'

चेस्टर्टन ने कहा, 'लोग अगर धर्म के होते हुए भी इतने पाप करते हैं, तो धर्म के न होने पर उनकी क्या हालत होती ?'

☐

दैत्य कौन थे ?

□

हरिमोहन शर्मा

दैत्यों का उल्लेख हमारे धर्म-ग्रंथों और पुराणों के अलावा, विश्व के प्रायः सभी प्राचीन धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रंथों और पुराणों में आता है। और इन वर्णनों में काफी समानताएं भी हैं। लेकिन, आखिर ये दैत्य थे कौन ?

विश्व के प्रायः सभी धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रन्थों में दैत्यों का उल्लेख है। मय और इन्का जातियों की पौराणिक कथाओं में कहा गया है कि 'जलप्रलय से पूर्व, देवताओं ने दैत्यों और दनुओं को जन्म दिया था।' एटलन और थिटानी नाम के दैत्यों का उल्लेख इन कथाओं में बार-बार हुआ है। दैत्यों का उल्लेख बाइबिल में भी है। जेनेसिस ४ : ५ में मोजेज कहते हैं, 'उन दिनों पृथ्वी पर दैत्य थे। जब देवपुत्रों ने मानव-पुत्रियों के साथ सहवास किया, तो कुछ समय बाद, इन मानव-पुत्रियों ने शक्तिशाली और दैत्याकार मानवों को जन्म दिया।' बाइबिल में ऐसे दैत्यों का भी जिक्र है 'जिनके सामने आदमी टिड्डे लगते थे।'

जिस पाताल देश का उल्लेख 'यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितु मिच्छय' कह कर हमारे धर्म-ग्रंथों में किया गया है, उसी पाताल-लोक में (जो आजकल मैक्सिको के नाम से जाना जाता है), जब नारद पहली बार गये थे तो 'विष्णु पुराण' के अनुसार, 'उन्हें यह लोक स्वर्ग से भी अधिक रमणीय लगा था। वहां उन्हें दैत्यों की सुंदर कन्याएं मुक्त विचरण करती, तथा सबका मन मोहती दिखायी दी थीं, तथा दनु पुत्र शराब के नशे में धुत्त दिखायी पड़े थे।'

नारद ने पाताल-लोक के जिस मुक्त वातावरण का उल्लेख किया है, वह पर्यटकों द्वारा किये गये आज के मैक्सिको (महाक्ष अर्थात् सूर्य की पूजा करने वाला देश) के विवरण से बहुत मिलता है। वास्तव में, आज का मैक्सिको वही देश है, जहां कभी उन दैत्यों का राज्य था, जिनके वर्णनों से महाभारत, रामायण, पुराण आदि ग्रंथ भरे पड़े हैं। जिस मय संस्कृति की खोज 'यूनेस्को' के तत्वावधान में जोर-शोर से जारी है, उससे हमारे पूर्वज भली भांति परिचित थे। सभी तो, हिन्दू देवी-

देवताओं की मूर्तियां, शिल्प और स्थापत्य-कला के नमूने द. अमरीका के भग्नावशेषों में मिलते हैं। ग्वाटेमाला के एक मंदिर के सामने हनुमान की एक पुरानी मूर्ति आज भी खड़ी है। संभवतः, रावण की पत्नी मंदोदरी, जिसका सम्बन्ध 'श्रद्धात्म रामायण' के अनुसार, मय-जाति और मय-संस्कृति से था, के वंशजों ने हनुमान को वंदनीय मानकर, उनकी प्रतिमा यहां स्थापित की थी। 'हिंदू अमेरिका' नाम की अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में भिक्षु चमनलाल ने हैविट्ट, मैकेन्जी, थेड और नुट्टास जैसे विशेषज्ञों का हवाला देकर, यह प्रमाणित किया है कि उत्तरी और दक्षिणी अमरीकाओं पर हिन्दू धर्म की अमिट छाप अंकित है। उनका कहना कि 'प्राचीन काल में दोनों अमरीकाओं के निवासी हिन्दुओं की भांति आत्मा के अमरत्व और पुनर्जन्म में विश्वास करते थे, और उनके प्रमुख देवता की विशिष्टताएं इन्द्र की विशिष्टताओं से बहुत मिलती थीं। यह प्रमुख देवता इन्द्र की भांति दैत्यों और दानवों का नाश करता था।'

दैत्य देवपुत्र ही थे

महाभारत में जिस मयदानव का उल्लेख है, वह मय जाति का असुर दैत्य ही था। यह वही मयदानव है, जिसने पांडवों के उस मायावी महल का निर्माण किया था, जिसमें आकर दुर्योधन को द्रौपदी का उपहास-पात्र बनना पड़ा था, तथा जिसने दिल्ली के निकट स्थित 'मयराष्ट्र' (मेरठ) नगर की स्थापना की थी। महाभारत के आदिपर्व में कहा गया है, 'मयासुर नामक दैत्य ने पांडवों के लिए, देवताओं को लजाने वाले मायावी महल में एक अद्भुत सभा बनायी, जिसे देखकर दुर्योधन कुढ़ने लगा था।'

विशेषज्ञों के अनुसार, महाभारत का युद्ध आज से पांच हज़ार वर्ष पूर्व हुआ था। अतः पाण्डवों के मायावी महल का निर्माण करने वाले मय उसी काल के थे। और यदि, उससे पहले की सहस्राब्दियों को त्रेता-युग मान लिया जाये, तो रावण के वंशजों के दक्षिणी अमरीका में होने की बात अधिक असंगत नहीं लगती। मय जाति की पौराणिक कथाओं के समान, हमारी पौराणिक कथाओं में भी स्वीकार किया गया है कि दैत्य देवपुत्र ही थे, और देवताओं के समान ही शक्तिशाली, प्रतिभाशाली और कुशल थे।

इतिहास-लेखक स्व. सी. वी. वैद्य के अनुसार, 'प्रथम विक्रमादित्य के काल में जब दोषपूर्ण काल-गणना को निर्दोष

बनाने के प्रयास आरंभ हुए, तो अरब और यूनान के खगोल-शास्त्रियों के अलावा, मय खगोल-शास्त्रियों की सहायता भी ली गयी थी। इस निर्दोष काल-गणना-पद्धति और परंपरा को विक्रम-काल-पद्धति और परंपरा का नाम दिया गया। आज भी हमारी काल-गणना विक्रम-काल-पद्धति और परंपरा के अनुसार ही होती है।

सूर्य-सिद्धांत के जन्मदाता होने का श्रेय एक दैत्य, महाभारत काल के मय-दानव को ही प्राप्त है।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्राचीन मैक्सिको के निवासी जो दैत्य कहलाते थे, सूर्य की पूजा करते थे। सूर्य को 'महाक्ष' भी कहा जाता है। 'महाक्ष' की पूजा करने वाला देश ही आज मैक्सिको के नाम से कहा जाता है, यह अन्विति ठीक ही है।

पुरातत्ववेत्ताओं की साक्षी

विश्व के प्रायः सभी पुरातत्ववेत्ता इस संबंध में एकमत हैं कि प्रागैतिहासिक काल में, और उसके बाद भी, पृथ्वी पर दैत्याकार मानव रहते थे। प्रख्यात फ्रांसीसी पुरातत्ववेत्ता डॉक्टर लुई बखलिटर तो दावे के साथ कहते हैं कि 'इसे एक वैज्ञानिक सत्य ही माना जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल में दैत्यों का अस्तित्व था।'

सीरिया के सासनी नामक स्थान में पुरातत्ववेत्ताओं को साढ़े आठ पौण्ड भार वाले चकमक के कुछ हथियार मिले हैं। ऐसे ही हथियार उत्तरी मोरक्को में भी मिले हैं। इन पुरातत्ववेत्ताओं का कहना है कि ऐसे हथियारों का प्रयोग करने वाले लोग कम से कम १२ फुट ऊंचे अवश्य रहे होंगे। दैत्यों की ऊंचाई भी, प्राचीन ग्रंथों में इतनी ही वर्णित की गयी है।

लेबनान में 'हज्र एल गुब्ले' नाम का एक प्राचीन और ऐतिहासिक पत्थर है, जिसका वज़न २००,००० पौण्ड है। इस पर नक्काशी भी की गयी है। ऐसे वज़नी पत्थर साधारण मानव नहीं उठा सकते थे; उन्हें उठाना सिर्फ़ दैत्याकार मानवों के ही बस की बात थी।

आस्ट्रेलिया और इटली के कुछ दुर्गम पर्वत-शिखरों पर ऐसे चिह्न अंकित हैं जिनकी व्याख्या नहीं हो सकी है। पुरातत्ववेत्ताओं का विश्वास है कि उन चिह्नों का अंकन दैत्यों ने ही किया था, कारण वे ही उन दुर्गम स्थानों पर पहुंचने में एकमात्र समर्थ थे।

महाभारत के पांडवों के मायावी महल के अतिरिक्त मय दैत्यों को पिरामिडों के निर्माण का श्रेय भी दिया जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि मय-निर्मित पिरामिड, जो आज भी दक्षिण अमरीका में मौजूद हैं, मिस्र के पिरामिडों से भी प्राचीन हैं।

विचित्र प्राणी

दैत्यों के उल्लेख से प्रागैतिहासिक काल के उन विचित्र प्राणियों की याद आ जानी भी स्वाभाविक है, जो आधुनिक मानव के आविर्भाव से पूर्व जन्मे थे। ऐसे विचित्र और

संकर प्राणियों का, जो आधे मानव थे, और आधे पशु, उल्लेख प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं और धर्मों की पुरा-कथाओं में आता है । अनेक देशों के प्राचीन भित्ति चित्रों में भी ऐसे संकर प्राणियों के दर्शन होते हैं ।

सुमेर और असीरिया की दंत कथाओं के अनुसार वहां के राजा इन संकर प्राणियों का, जो मानवों से अलग रहा करते थे, शिकार किया करते थे । प्लेटो ने अपनी कृति 'सिम्पोजियम' में 'तीसरे सैक्स' नामक अध्याय के अंतर्गत ऐसे संकर प्राणियों का उल्लेख किया है । सुमेर, मिस्र और असीरिया के प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त वेद और महाभारत में भी ऐसे प्राणियों का उल्लेख है, जो आधे मानव थे, और आधे पशु ।

'टैक्टीक्स : एनेल्स : १५ : ३७' में एक ऐसे रहस्यानुष्ठान का वर्णन है, जिसमें इन संकर प्राणियों की सहायता से मानव पशुओं से संभोग करते थे । हैरोयोतस नामक इतिहासकार ने भी अपनी पुस्तकों में प्राचीन काल की ऐसी अनेक रंगरेलियों का वर्णन किया है । लंदन तथा बगदाद के संग्रहालयों में आदमियों और पशुओं के मैथुन के प्राचीन चित्र सुरक्षित हैं ।

सुमेर की एक पुरा-कथा के अनुसार 'मानवों के जन्म से पूर्व, जब निपुर नामक नगर में सिर्फ़ देवता ही रहते थे, तब वायु-देवता एनेलिल ने निनलिल नाम की एक मादा-प्राणी से संभोग करने का प्रयास किया था ।' कथा में आगे कहा गया है कि अर्द्ध-मानव और अर्द्ध-पशु जैसे प्राणियों को, नष्ट करने के उद्देश्य से ही वायु-देवता ने यह प्रयास किया था ।

इससे क्या इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा, जा सकता कि प्रागैतिहासिक काल में आदमी, आधा मानव था, आधा पशु । देवताओं ने, जो मानवों से श्रेष्ठतर जाति के थे, अर्द्ध-मानव तथा अर्द्ध-पशु-सम प्राणियों के समागम से सभ्य मानव-जाति को जन्म दिया । विकास की इस कड़ी के बीच में जिन दैत्याकार प्राणियों ने जन्म लिया, वे ही दैत्य थे !

□

मैत्री परायणता

१९४४ में दिल्ली में होने वाले 'इंडियन सायंस कांग्रेस' के वार्षिक अधिवेशन के प्रो. सत्येन्द्रनाथ बोस अध्यक्ष चुने गये थे । जब वे दिल्ली पहुंचे तो वायसराय लार्ड वावेल ने उन्हें रात्रि-भोज पर आमंत्रित किया । उन्होंने निमंत्रण स्वीकार भी किया, पर उसे निबाह न सके । कारण यह था कि उसी बीच उनके बचपन का एक दोस्त मिल गया था । बिछुड़े मित्र के इतने दिनों बाद मिलने की खुशी में वह रात उन्होंने मित्र के परिवार के साथ ही बितायी । कदाचित मित्र का अनुग्रह उन्हें अधिक महत्वपूर्ण लगा, तभी तो वह वायसराय के निमंत्रण पर न जा सके ।

— शुकदेवप्रसाद

□

जैक कैरुआक : अनुभव नहीं अनुभूति

□ सुदीप

दुनिया में बहुत कम लेखक ऐसे हुए हैं, जिन्होंने ज़िंदगी को विभिन्न स्तरों पर जिया हो और हर स्तर पर भरपूर जिया हो। ज्यां पॉल सार्त्र, ज्यां जेने, दोस्तोयव्स्की, हेमिंग्वे, यशपाल.... कुछ नाम हमारे ज़ेहन में उभरते हैं, लेकिन जैक कैरुआक जैसा बहुरंगी व्यक्तित्व कहीं नज़र नहीं आता।

कैरुआक ने अपनी पांच दशकों से भी कम की ज़िंदगी में तरह-तरह के काम किये। उनका जन्म १९२२ में लॉवेल, मेसाच्युसेट्स में एक फ्रेंच-कनाडियाई परिवार में हुआ था। बचपन बड़ा खुशनुमा रहा और हाईस्कूल में ही उन्हें फुटबॉल का शौक लग गया। वह अपने राज्य के दल में फुटबॉल खिलाड़ी के रूप में खेले। उन्होंने कार रेसों में भाग लिया और चैंपियन बने, नौकायन प्रतियोगिताएं भी जीतीं। समंदर में वक्त-वक्त पर, महज़ शौक पूरा करने के लिए, दूसरी नौकाओं को लूटा भी। मर्चेंट मैरीन में उन्होंने नौकरी भी की। फिर पूरा अमरीका और मैक्सिको पैदल घूम डाला। जहां जैसा काम मिला, किया—और जो अनुभव किया, उसके बारे में लिखा। कैरुआक ने उपन्यास लिखे, कहानियां लिखीं; कविताएं लिखीं; खेलों की रिपोर्टिंग की, हास्य-व्यंग्य के नियमित स्तंभ लिखे, राजनीतिक विश्लेषण लिखे।

कैरुआक को बीट पीढ़ी का मसीहा कहा जाता है। अमरीकी लेखक को जितनी मानसिक मुक्ति उन्होंने दिलवायी, उतनी और किसी लेखक ने नहीं दिलवायी। ऑन द रोड, द सबटिरेनियन्स, धर्मा बम्स, द विज़न्स ऑफ जेरार्ड, द विज़न्स ऑफ कोडी, वैनिटी ऑफ डुलोज़, स तोरी इन पैरिस ... आदि उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं।

कैरुआक के लेखन की एक बड़ी खूबी यह थी कि वह अपनी रचनाओं को बड़ी तेज़ी से रचते थे, जो बात जैसे उनके दिमाग़ में आती थी, उसे वैसे ही लिखते थे—यही वजह है कि वह लिखते वक्त और कुछ करना पसंद नहीं करते थे—यहां तक कि सोचना भी नहीं। उनका एक उपन्यास पूरे सवा सौ पृष्ठों के एक ही पैराग्राफ़ का है जिसमें पूर्ण विराम, अर्ध विराम, वगैरह कहीं कुछ नहीं है। आपको लगता है, आप कोई पुस्तक नहीं पढ़ रहे हैं, लेखक के मन में चल रहे बिंबों, विचारों, घटनाओं, पात्रों के अविरल प्रवाह को देख रहे हैं : लगता

है, लेखक और उसका चिंतन, दोनों एकरूप हो गये हैं।

कैरुआक अपने आप को अनुभव का नहीं, अनुभूति का लेखक मानते थे। पैरिस रिव्यू के लिए दिये गये अपने एक लंबे इंटरव्यू में उन्होंने कहा था: 'मैंने अपनी सारी जवानी धीरे-धीरे लिखने में बितायी जिसमें चीज़ों को दोहराना, बार-बार लिखना, सोचना और काटना लगातार चलता रहता था और हालत यह थी कि दिन भर में मैं एक वाक्य लिख पाता था और उस एक वाक्य में भी अनुभूति नहीं होती थी। खुदा की मार, अनुभूति ही वह चीज़ है जो मैं कला में पसंद करता हूं, शिल्पकारिता और अनुभूतियों का छिपाव नहीं। (१९६८)।

कैरुआक के लेखन को ज़िंदगी के हर पक्ष ने प्रभावित किया। लेकिन उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था भारतीय चिंतन, खासतौर पर बौद्ध दर्शन ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। इस संदर्भ में भेंटकर्ताओं से हुई उनकी पूरी बातचीत देना असंगत न होगा।

प्रश्न : ज़ेन ने आपके सृजन को कहां तक प्रभावित किया है?

कैरुआक : मेरे सृजन को जिस चीज़ ने वस्तुतः प्रभावित किया है वह महायान बौद्ध मत है, गौतम शाक्य मुनि का मूल बौद्ध मत, स्वयं बुद्ध प्राचीन भारत के बुद्ध... उनके बौद्धमत या बोधि के चीन और फिर जापान से गुज़रने से जो

चित्र : नीता वैद्य
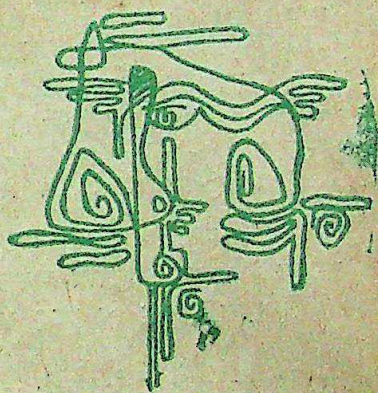
बाकी बचा वह ज़ेन है। जिस ज़ेन ने मेरे लेखन को प्रभावित किया है, वह हाइकू में छिपा ज़ेन है... तीन पंक्तियों, सत्रह मात्राओं वाली कविताओं में जो सैकड़ों साल पहले बाशो, इस्सा, शीकी जैसे लोगों ने लिखी थीं और हाल में भी कुछ उसके मास्टर हुए हैं... लेकिन मेरे गंभीर बौद्धवाद ने, प्राचीन भारत वाले बौद्धवाद ने, मेरे लेखन के उस हिस्से को प्रभावित किया है, जिसे आप धार्मिक, या जोशीला, या पवित्र कह सकते हैं—उतना ही जितना कैथलिकवाद ने मुझे प्रभावित किया है। मौलिक बौद्धमत अनवरत सचेत करुणा, भ्रातृत्व, दान परमिता यानी संपूर्ण दान पर बल देता था... विनम्रता, भिक्षुकपन, बुद्ध का मधुर उदासीभरा रूप (चलते-चलते बता दूं, बुद्ध आर्य थे, फारस की लड़ाकू जाति के, जैसा उन्हें चित्रित किया जाता है,

वसे पौर्वात्य नहीं) ... मूल बौद्धमत में जब कोई बच्चा किसी मठ में आता था तो उसे इस तरह की चेतावनी नहीं दी जाती थी कि 'यहां हम लोगों को ज़िंदा दफन कर देते हैं।' उसे मात्र चिंतन करने और दयालु बनने की मधुर सीख दी जाती थी। ज़ेन की शुरूआत तब हुई जब बुद्ध ने एक उपदेश देने और महायान चर्च के प्रथम धर्मगुरु के चुनाव के लिए सब भिक्खुओं को इकट्ठा किया : कुछ भी कहने के बजाय, उन्होंने सिर्फ एक फूल उठा लिया। हर आदमी चकित रह गया—सिवा कश्यप के। कश्यप मुस्करा दिये। कश्यप को प्रथम कुलगुरु नियुक्त किया गया। यह विचार चीनियों को पसंद आया, जैसे छठे धर्मगुरु हुइ-नेंग को, जिन्होंने कहा, 'आदि से लेकर कुछ भी नहीं था', और वह सूत्रों में बद्ध बुद्ध के वचनों को फाड़ कर फेंक देना चाहते थे; सूत्र 'प्रवचन-सूत्र' हैं। ज़ेन एक तरह से धर्म-विरोध का एक विनम्र और मज़ाक भरा रूप है, हालांकि कहीं न कहीं वास्तविक दयालु बुज़ुर्ग भिक्खु भी ज़रूर होंगे; सनकी भिक्खुओं के बारे में तो हमने बहुत कुछ सुन रखा है। मैं जापान कभी नहीं गया हूं। तुम्हारे महर्षि योशी इस सबके ही अनुयायी हैं, उन्होंने किसी नयी चीज़ का प्रवर्तन कतई नहीं किया है। जॉनी कार्सन वाले प्रदर्शन में उन्होंने बुद्ध का नाम तक नहीं लिया।

प्रश्न : ऐसी क्या बात है कि आपने जीसस के बारे में कभी कुछ नहीं लिखा? आपने बुद्ध के बारे में लिखा है। क्या जीसस भी महान् नहीं थे?

कैरुआक : मैंने जीसस के बारे में नहीं लिखा? दूसरे लफ्ज़ों में, आप कोई पागल ढोंगी हैं जो मेरे घर चले आये हैं ... और ... मैं जो कुछ भी लिखता हूं जीसस के बारे में ही होता है। मैं एवरहार्ड मर्क्यूरियन हूं, जेसुइट आर्मी का जेनरल।

प्रश्न : जीसस और बुद्ध में विशेष अंतर क्या है?

कैरुआक : यह सवाल बढ़िया है। कोई अंतर नहीं है।

प्रश्न : कोई अंतर नहीं है?

कैरुआक : भारत के मौलिक बुद्ध और वियतनाम के बुद्ध में ज़रूर अंतर है। वियतनाम के बुद्ध बस सिर मुंड़ा लेते हैं, पीला वस्त्र धारण कर लेते हैं और वह, कम्यूनिस्ट आंदोलनकारी एजेंट हैं। मूल बुद्ध हरी घास पर चलते तक नहीं थे कि कहीं वह नष्ट न हो जाये। वह गोरखपुर में जन्मे थे और आक्रमणकारी पर्शियन कबीलों के मंत्री के पुत्र थे। और उन्हें योद्धाओं का संत कहा जाता था, सारी रात १७००० औरतें उनके लिए नाचती रहती थीं, हाथों में फूल लिये, यह कहती हुई कि आप इन्हें सूंघेंगे, प्रभु? वह कहते हैं, यहां से दफ़ा हो जाओ, रंडियो! मालूम है, वह उनमें से अनेक के साथ सोये। लेकिन ३१ की उम्र तक

वह ऊब चुके थे . . . शहर में जो कुछ हो रहा था, उससे उनके पिता उन्हें लगातार बचाये जा रहे थे। सो, वह घोड़े पर सवार हो कर बाहर निकले, अपने पिता के आदेशों के खिलाफ़, और उन्होंने एक मरती हुई नारी देखी— घाट पर जलाया जाता एक शव देखा। और वह बोले, यह सारा कुछ क्या है ?— मौत और विनाश। सेवक ने कहा यही जीवन की रीति है, आपके पिता आपको जीवन की प्रक्रियाओं से छिपाये हुए थे।

वह कहते हैं, क्या ? मेरे पिता ! !— मेरा घोड़ा लाओ, मेरे घोड़े की जीन कसो ! मुझे जंगल में ले चलो ! वे जंगल में जाते हैं; वह कहते हैं, अब घोड़े की काठी उतारो। उसे अपने घोड़े पर रखो, अच्छा रहने दो. . . . मेरे घोड़े की लगाम पकड़ो और दुर्ग की ओर लौट जाओ और मेरे पिता से कहो मैं अब उनसे कभी नहीं मिलूंगा ! और सेवक, कंदक, रो दिया। वह बोले, मैं तुमसे अब कभी नहीं मिलूंगा। मुझे किसी बात की परवाह नहीं है ! जाओ ! श् . . . श् ! दफ़ा हो जाओ !

सात साल उन्होंने जंगल में बिताये। दांत भींचे कुछ नहीं हुआ। अपने आप को भूखा रख कर यातना दी। वह बोले, मैं अपने दांतों को तब तक भींचे रहूंगा जब तक मुझे मृत्यु के कारण का पता नहीं चल जाता। फिर एक दिन वह राप्ती नदी को पार कर रहे थे, और बेहोश हो कर नदी में गिर पड़े। एक युवा लड़की दूध का कटोरा लिये आयी और बोली—प्रभु, दूध का कटोरा। (सुड़ऽऽऽ क्) वह बोले, इससे मुझे बड़ी ताकत मिली है, धन्यवाद कन्ये ! फिर वह बो वृक्ष के नीचे जा कर बैठ गये। फिरारोसा। अंजीर का पेड़। वह बोले, अब . . . मैं पालथी लगा कर बैठूंगा . . . और दांत भींचे रहूंगा तब तक जब तक मुझे मृत्यु का कारण पता नहीं चल जाता। रात को दो बजे १००००० भूतों ने उन पर आक्रमण कर दिया। वह अविचल रहे। सुबह तीन बजे, विशालकाय नीले प्रेतों ने ! ! अर्रर्रर ! ! ! सब उन पर टूट पड़े . . . सुबह चार बजे नरक के पागल प्राणी . . . मैनहोल के ढक्कन उठा कर चले आये . . . न्यूयॉर्क सिटी में। मालूम है न वॉल स्ट्रीट जहां भाप निकलती है ? . . . उन ढक्कनों को उठाओ . . . या ऽऽऽऽ ह ! ! ! ! ! छह बजे, सब तरफ शांति छा गयी—पंछी चहकने लगे, और वह बोले, 'अह ! . . . मृत्यु का कारण . . . मृत्यु का कारण है—जन्म।'

सरल ? सो, वह भारत में बनारस के रास्ते पर चल पड़े . . . तुम्हारी तरह लंबे बाल लिये . . .

सो, तीन लोग। एक बोला, अरे बुद्ध आ रहा है जिसने जंगल में हमारे साथ भूख सही थी। जब वह यहां बाल्टी पर आ कर बैठे, उसके पांव मत धोना। सो बुद्ध बाल्टी पर आ कर बैठ जाते हैं . . . वह आदमी भाग कर उनके पास जाता है और उनके चरण धोता है। तुम इसके पांव

क्यों धो रहे हो ? बुद्ध कहते हैं, 'क्योंकि मैं जीवन का ढोल पीटने के लिए बनारस जा रहा हूं।' इसका मतलब ? 'मतलब यह कि मृत्यु का कारण जन्म है।' 'क्या मतलब ?' 'मैं दिखा दूंगा।'

एक औरत मरे हुए बच्चे को बांहों में उठाये आती है। कहती है, अगर तुम प्रभु हो तो मेरे बच्चे को फिर से जिंदा कर दो। वह कहते हैं, जरूर यह काम तो कभी भी हो सकता है। बस जा कर पूरी श्रावस्ती में से एक घर ऐसा ढूंढ निकालो जहां पिछले पांच सालों में कोई मौत न हुई हो, उस परिवार से राई का एक दाना मुझे ला दो। और मैं तुम्हारे बच्चे को फिर से जिंदा कर दूंगा। वह पूरा शहर घूम आयी, बीस लाख लोग, श्रावस्ती बनारस से भी बड़ा नगर था, और वह लौट आयी और बोली, 'मुझे तो ऐसा एक भी परिवार नहीं मिला। पिछले पांच साल में हरेक घर में कोई न कोई मरा है।' वह बोले, 'तो, अपने बच्चे को दफ़ना दो।'

फिर, उनका ईर्ष्यालु चचेरा भाई, देवदत्त, (यानी गिंसबर्ग, समझे, मैं बुद्ध हूं और गिंसबर्ग देवदत्त है।) एक हाथी को मदिरा पिला कर मस्त बनाता है . . . विशालकाय हाथी व्हिस्की से धुत्त ! हाथी ऊपर जाता है !!!! (आगे बढ़ते हाथी की तरह चिघाड़ते हैं)–विशाल सूंड, और बुद्ध रास्ते पर आते हैं, हाथी को पकड़ते हैं और इस तरह चलते हैं (झुकते हैं)। और हाथी झुक जाता है। 'तुम दुख के कीचड़ में दबे हुए हो ! अपनी सूंड को शांत करो ! वहीं रहो !' . . . वह हाथियों को साधने वाले हैं, फिर देवदत्त ने एक चट्टान से बड़ा-सा पत्थर लुढ़का दिया। और वह करीब-करीब बुद्ध के सिर पर आ कर गिरा। ज़रा-सा बच गये। बूऽऽऽम ! वह बोले, ज़रूर देवदत्त का काम है। फिर बुद्ध इस तरह चले (टहलने की मुद्रा में) अपने शिष्यों के सामने . . . उनके पीछे उनका एक चचेरा भाई था, जो उनसे प्यार करता था . . . आनंद . . .

मुझे बुद्ध के बारे में बहुत-सी कहानियां मालूम हैं, लेकिन मुझे यह ठीक से पता नहीं है कि हर बार उन्होंने क्या कहा। लेकिन मुझे इतना ज़रूर मालूम है कि जब एक आदमी ने उन पर थूका था, तो उन्होंने उसके बारे में क्या कहा था। उन्होंने कहा था, 'चूंकि मैं तुम्हारी देन का उपयोग नहीं कर सकता, इसलिए तुम इसे वापस ले लो।' वह महान् थे।

इस तरह की मानसिक पृष्ठभूमि को लेकर जीने और लिखने वाले केरुआक अनुष्ठान और अंधविश्वासों से भी मुक्त नहीं थे। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया था : 'कभी मैं एक अनुष्ठान में विश्वास रखता था। मैं मोमबत्ती जला कर बैठ जाता था और उसकी रोशनी में लिखता था और जब लेखन के बाद सोने के लिए लेटता था, तभी मोमबत्ती को बुझाता था . . . इतना ही नहीं, लिखना

(शेषांश पृष्ठ ९५ पर)

रज्जन त्रिवेदी की हिन्दी कहानी

□

रहनुमा

जिस ढंग से वह बार-बार देख रही थी, उससे यही लगता कि भीतर बुरी तरह से उफन रहा है, एक अशांत समुद्र की तरह अंदर वह कैद है। चेहरे पर आने-जाने वाले भाव उमड़न की तेजी का अंदाज़ दे रहे थे। भीतर से आने वाले भावों का चेहरा वहां एक क्षण को भी नहीं रुक पाता, एक के बाद एक वे चेहरे फिल्म की तरह चले आ रहे थे। सुर्ख माथे पर उत्तेजित-सी लकीरें रह-रह कर क्षितिज को बांधती लग रही थीं। आंखें हर बार इस तेज़ी से उठतीं कि मानों दिशाओं को बांध कर ही रहेंगी। उमड़न भीतर खलबली मचाये चली जा रही थी। अशांत समुद्र भीतर हिलोरें ले रहा था। वह सिर उठाकर बोलने लगी—

'मैं यह नहीं कहती कि किसी से भी बैर करो, किसी को, भाई को मत मानो, भाई को बुरा कहो। असल में बात यह है कि भाईपन पहचानो। तुम, भाई साहब, भाई साहब की रट लगाये रहते हो। एक ढंग से यह दिखाते रहते हो कि भाई साहब न रहेंगे तो दुनिया में तुम्हारा कोई न रहेगा। जो कुछ है आदि से अंत भाई साहब ही हैं। उनमें देखा भी है कि अब उनमें बंधुभाव आखिर बचा भी कितना है? मुझे उनके होने से या आपके मानने से कोई शिकायत नहीं है। जिनके भाई नहीं होते उनका दुनिया में निभ नहीं जाता? भीतर से साफ निर्मल मन की भाषा को पशु भी समझ लेता है, वह भी रिश्ता जोड़ लेता है। कई कुत्ते, गाय, घोड़े बिना अपने आदमी के दिये खाना नहीं खाते। और यहां की भाषा संस्कारों की वंदिनी हो गयी है, चाह कर भी समझ में नहीं आ रही, मुक्ति नहीं मिल रही...'

क्षण भर को वह रुकी और बोलने लगी—

'बिना भाई वाले समाज में जीने का हक नहीं होता या हम बंधुत्व जिलाना, स्थापित करना नहीं जानते? पिताजी के बाद भाई साहब को ही उनकी जगह में माना जाता है, माना जाता रहा है। उन्हीं स्तरों को बनाये रखने की संभावनाओं को बनाये रखने के कारण। छोटे भाई जब तक नादान हैं, कुछ भी करने के योग्य नहीं हैं तब तक उनका रहनुमा होना लाज़िमी है। जब छोटे भाई समझदार हो गये हों,

कुछ करने लायक हो गये हों तो उन्हें भी बड़े भाई के साथ उदारता और सहयोग का भाव अपनाना चाहिये। घर में दायित्वों का निबाह दोनों के सहयोग से होता है, दोनों के कृतित्व से पिता का, घर का सम्मान बढ़ता है। लेकिन छोटे को एकदम अपने हितों के लिए काटा जाना, बाप की गरिमा को मटियामेट करना नहीं है? अनुदारता के ही क्षणों में चालाकी जन्म लेती है।'

ज़रा देर को उमा रुकी भी थी, पर वह अपने क्रम को तोड़ नहीं सकी थी। एक ही सांस में कहने को जैसे वह उतावली थी। शंकर दाढ़ी बनाने की तैयारी में सब सुने जा रहा था। ठंड से सहमी-सहमी धूप देशी खपरैलों पर बैठी लग रही थी। पूस की ठिठुरन के मारे वह भी परेशान लग रही थी। वह स्वेटर पहने दाढ़ी बना लेने की जल्दी में था और वह शाल लपेटे पलथी मारे बैठी थी। वह उधर ध्यान नहीं देना चाहता था, लेकिन उसे लगा और दिनों की तरह आज टाला नहीं जा सकता, उमा की टिकी हुई निगाहें आज उसे बचने नहीं देंगी। जब से वह ब्याह कर आयी है, घर में जुती रहती है। गृहस्थी का जुआ रखने के लिए जैसे भाभी इसी शादी का इंतज़ार करती खड़ी थीं। दुबारा पैर फिराकर ये आयी नहीं कि भाभी ने फुसला-फुसलाकर घर के सारे काम सौंप दिये। चौके में जाने से अक्सर बचतीं। बच्चों को तैयार करने के नाम से छिटक जातीं। जबकि बच्चे अब खुद ही तैयार हो जाते। भाभी बीच-बीच में चीखतीं और बच्चों को आदेश दे-दे अपनी व्यस्तता जताया करतीं, ताकि उमा समझे कि जिज्जी भी व्यस्त हैं।

काम करने से वे बचती थोड़े ही हैं, वे तो चाहती हैं कि तुम भी घर-गिरस्ती सब समझो, बिना समझे आगे क्या होगा, वैसे चौके के हर काम से स्वास्थ्य अच्छा बनता जाता है...

शंकर भाभी की इस दृष्टि से पहले ही से परिचित है, वह इस पर काफी सुन चुका है। उसने साबुन की डिबिया के ढक्कन को इस ढंग से खोला और उमा की ओर से बिलकुल अनजान बनते हुए, उसे इस तरह देख गया मानो कह रहा हो भाभी की और भाई साहब की कौन-कौन-सी चालाकी से वाकिफ हो? किस-किस डिब्बी का, किस-किस डिब्बे का ढक्कन खोलती फिरोगी? अपनी, अपने घर की जितनी ही मुंदी रखी जा सके, उतना अच्छा–बंधी मुट्ठी लाख की। ज़्यादा उत्तेजित मत हुआ करो, समझ से काम लो। महंगाई का ज़माना है, उनसे कुछ सीख लो, अच्छा होगा।

उमा डिब्बी खोलने के तरीके से ही जैसे पति के मन की बात को ताड़ गयी थी और वैसे ही गंभीर बनी वह बोलने लगी थी। हवा रह-रहकर सनसना जाती।

'मैं भी समझती हूं जी, कि अपनी उघाड़ना, अपने को ही सबके सामने बेन-काब करना है, नंगा करना है। लेकिन फोड़ा

फूलता जाये, पीब बजबजाती जाये और आप कहें फोड़े को, पीब को, दर्द को सहते ही जाओ, यह कहां का न्याय है ? मैं टांग काटने को तो नहीं कह रही हूं। मैं कह रही हूं फोड़ा फोड़ दिया जाना चाहिये ताकि टांग खतरे से तो बाहर हो जाये, सारी देह का दर्द तो हट जाये। सारा मन वहीं बंधा रहता है, उसका इलाज तो किया जाये। मन में या तन में नासूर पाल कर क्या फायदा ?'

कहने के बाद उसने नीचे की ओर खिड़की से झांका। वहां भाभी गली के मुहाने पर बैठीं बिनी हुई स्वेटर को उधेड़कर फिर से व्यस्तता से अपने को ढंकने के लिए नयी डिज़ाइन के नाम पर सलाइयां चला रही थीं। झांककर वह फिर वैसे ही पलथी मार कर बैठ गयी। उसे लगा कि वह कहना चाह रही है उसी दिन की बात।

'देवर के साथ ऐसी बात करेंगी, जैसे सगा बेटा इन्हीं का हो। बोलते समय जीभ में शहतूत का रस चुपड़ लेती हैं या ओंठों पर शहद लगा कर बोलती हैं। पी लेतीं तो पता नहीं क्या गजब ढातीं ? जेठजी के लिए तीन स्वेटर बुन डाले लेकिन इनके लिए यही कहतीं—अरे वाह! लाला तुम्हारे लिए तो उमा ही स्वेटर बनायेगी, बहुत दिनों से यह काम उसने छोड़ रखा है। काम से हाथ साफ हो जायेगा, वैसे कालेज में, स्कूल में उसने पता नहीं कितने सिलाई-बिनाई के मेडल पाये हैं। उसके सामने कौन कठिनाई है ?'

कहने का मतलब यही कि तुम अपने खसम के लिए बुनना हो तो खुद बुनो. मैंने ठेका लिया है. सब की चाकरी करती रहूं ? कमा कर लाता है. एक नहीं दो-दो बना दो, यह तुम्हारा अपना समझना, देखना है। अपने काम खुद करने चाहिये, बस। खाने-पीने में, राशन में, सफाई - पोताई के खर्चों में हिस्सा बंटाता है तो क्या ? मैं अलग से एक्सट्रा काम क्यों करूं ? तुम उसकी बीवी हो, तुम्हें उसके लिए काम करना चाहिये, उसकी फिक्र करनी चाहिये। वे जितनी भी बातें करती हैं स्पष्ट रूप से, लेकिन बिना उत्तेजित हुए, जैसे हर जगह उनकी मास्टरनी ज़िंदा हो जाया करती है, बड़े ढंग से समझाना चाहेंगी। हर नकारी जाने वाली बात को बड़े प्रेम से कहेंगी, लेकिन थोड़ा घुमाकर। इनके लिए कोई भी किये जाने वाले काम किसी न किसी बहाने के नीचे दफन कर दिये जाते हैं, जैसे स्कूल-कालेज के मंडल की बात कह स्वेटर बनाने वाली बात दफन कर दी गयी। उपदेश हरदम यही कि अपना हत्या, जगन्नहत्था। दूसरों का क्या भरोसा ?

हम समझते नहीं क्या कि यह कृपा अंत हीन नहीं है, उसके बराबर पैमाने हैं।

झांकने के बाद पति की ओर जैसे ही मुखातिब हुई, उसने देखा कि पति ब्रश को बिना पानी-साबुन लगाये दाढ़ी पर फिरा रहे हैं। वह मुस्काते हुए कहने ही जा रही थी, मेरे हाथ नहीं हैं, ब्रश है मियां, ब्रश है... गुदगुदी, सिहरन वह सब कहां

आयेगी ? लेकिन उसकी मुस्कान ओंठों के किनारें पर दब गयी । उसने स्थिति को संवारा, 'जिज्जी को मैंने हर कदम पर बात को घुमाते देखा है । हम लोगों को कभी अपने नीचे से होकर जाने देती हैं ? शादी के पहले तुम उन्हीं के कमरों से आते-जाते थे न ? थी कोई रोक-टोक ? अब क्यों सीढ़ियों से गली में उतरते हो और गली से बाहर निकलकर बाहर सड़क पर आते हो ? भीतर से उनके कमरों से तुम या मैं चले जायं तो कौन-सा गजब हो जाने वाला है ? हमें जब अपना समझती हैं, तो वहां आने-जाने क्यों नहीं देतीं ? भाई साहब को हमेशा वहीं बैठाये रखती हैं, ताकि मैं उधर से न आ-जा सकूं । किसी दिन अदब तोड़ कर सरसराती हुई निकल गयी तो ... ? अपने वालों से छुपाव की ज़रूरत क्यों ? किस योजना की या किस अकल्पित भविष्य की हमारे बिना तैयारी की जा रही है ? छिपाव अलग रहने के लिए नहीं कहता ?'

पहले ही से लाल चेहरा अब तो और सुर्ख हो गया था । लार लीलते हुए वह कह रही थी – 'जिज्जी अपनी गृहस्थी को नये ढंग से जमा रही हैं । उनके भीतर कहीं अलगाव है । स्कूल से छुट्टी होने के बाद खुद चीज़ें खरीदकर बैग में रख कर लाती हैं, ताकि दिखें न । मैंने उनकी अलमारी में कई स्टेनलेस स्टील के गंज, गिलास, कटोरियां, थालियों की कतार देखी है, कभी उन्होंने उस सबको बाहर निकाला ? सगेवालों को उसमें खाने का सुख दिया ? कितनी साड़ियां ट्रंक में दबा-दबाकर रखती जाती हैं – मैं नहाकर जब ऊपर दबे पांव आ रही थी तब जिज्जी को जल्दी-जल्दी ट्रंक में साड़ी जमाते देख चुकी हूं । जब हमें अपना समझती हैं तो यह छिपाव, दुराव क्यों ? अलगाव का भाव उनमें कितना बड़ा आकार ले चुका है, यह समझने की चीज़ है । ऊपर से बंधु-सेवा के नाम पर कभी निचोड़ना भूलेंगी ? मुंह खोलकर ही भगायेंगी, तब भागोगे ? छिपाव जिन स्थितियों में पैदा होता है, वहां अपना वाला या अपनत्व रह जाता है ? बोलो ..?'

शंकर ने कहा कुछ नहीं । वह सुनता भर रहा । ये कई बातें समझ चुकी है, वे सब इसके भीतर जमा होती रही हैं । अदब और लिहाज़ के मारे ये बोलने से बचती चली आ रही है । करीब पांच साल शादी को हो गये हैं, आज भी वह मेहमान तो नहीं है । उसका भी घर में कुछ अपनापन है, अपनी आवाज़ है, हक है . . . पति के सामने उस सबकी याद भी न की जाय, उसे परिभाषित भी न किया जाय, उसकी गुणता का, लेन-देन का तौर-तरीका ही न समझा जाय! उस सबके बावजूद उसने निगाहें बचाते-बचाते उमा की ओर देखा—उसके चेहरे पर एक के बाद एक लाल-लाल आभा के टुकड़े उभर रहे थे, गिर रहे थे । लगता लाल-मुनियां फुर्र-फुर्र कर गालों पर, गर्दन पर, दाढ़ी पर बैठ जाती है, लालमुनियां जग गयी है । उसके गाल वैसे ही सेब की तरह लाल थे, नथुनों के आखिरी किनारों की

रेखा को उभरी हरी नसें पार करने को मचली जा रही थीं। माथे पर पसीना चुचुआ आया था। कान के बड़े रिंग बोलते समय जब हिलने लगते तो लगता उसी के बीच लालमुनियां फुर्र-फुर्र कर यहां-वहां उड़ी जा रही है, कूद-फांद कर रही है। गर्दन के पास बालों के झुरमुट किरणों से छू जाने के कारण बांस-वन बनाये चले जा रहे थे। साड़ी सिर से हटकर कंधों पर आ गिरी थी। लगता कंधे पठार का धीरज तोड़ कर ही रहेंगे।

उमा इसलिए अनजान थी, इन क्षणों में कि वह रुक-रुककर नीचे की आहट लेती जा रही थी, वह नीचे झांकना नहीं भूलती। वहां सलाइयां चल रही थीं, ऊन उधेड़ी जा रही थी।

वह ब्रश को साबुन की डिबिया में रगड़े जा रहा था। अब उसने गौर से पति की ओर देखा, मानो देख रही हो, बातों का कितना असर हो रहा है, ये हंसी में तो नहीं ले रहे। ब्रश रगड़ते शंकर को गंभीर देख वह भीतर ही भीतर कुछ और उत्साहित हो गयी। अभी भी भीतर से चेहरे फिल्म की तरह आना बंद नहीं हुए थे। वह उसी की ओर देख कहने लगी—'मैं घर को उजाड़ना नहीं चाहती, भाई-भाई को अलग भी करना नहीं चाहती, लेकिन झूठ को सहना भी नहीं चाहती, जो झूठ दिखाया जा रहा है, उसे समझा जाय और सही निर्णय किया जाय। बंधुत्व के

लिए, बड़प्पन के लिए, मर्यादा के लिए, मान के लिए, लोग क्या कहेंगे के लिए नहीं रुकना चाहती, वह सब भावुकता है, लोकोपवाद सापेक्षित है। निर्णय का छूटा क्षण जन्म भर छाती में चुभता रहता है, दर्द देता रहता है। और यह दर्द जब भी रिसता रहता है हम खिचते रहते हैं, टूटते रहते हैं। काम ऐसा करना चाहिये जिससे प्रेम-संबंध बना रहे, स्थितियों की वास्तविकता भी सामने आ जाय। खिचते रहने से मन भी जलता है और तन भी . . .।'

'अच्छा . . अच्छा . . .' शंकर को जैसे कुछ याद हो आया, वह बीच ही में बोल पड़ा, 'आपका दर्शन, खिचते रहने वाली औरतों का वसंत, हां . . हां, वसंत, मेकअप से भी नहीं जी पाता, वह असमय ही मुरझा जाता है। खिचते रहते रहने से जल-जलकर, सूखकर कांटा हो जाती हैं, उदास-उदास, उखड़ी-उखड़ी हमेशा झूठे ढंग से बनी-ठनी मॉडल का ही पर्याय बन पाती हैं, वासंतिका नहीं बन पातीं, न दिख ही पाती हैं। सेंट और रूज़ ताज़गी और चमक नहीं, उसका आभास देते हैं।'

उमा की पिछले दिनों कही बात उसी के सामने कह सुनाई। उसकी निगाहों में मधुमास ठहर गया-सा लगता था, पलकें उसे उकेर रही थीं।

'हां कहा तो था। कोई गलत कहा था? तुम्हें कोई गलत तो नहीं लगा?' उमा ने अलमारी से टिके हो पूछ लिया।

'ना बाबा ना, गलत हो भी तो गलत लग सकता है भला बीवी का कहा?' उसकी ओर बिना देखे ही नकार में गर्दन हिलाते हुए वह कह गया।

इतवार के दिन की धूप अब शीशे में खुद को निहारने की कोशिशें करने लगी थी। एक बार चेहरे की झलक जैसे वह भी देख लेना चाह रही हो। शंकर ने शीशे को दूर कर दिया।

'हम लोगों के पास ऐसा है ही क्या? जितना कमाकर लाते हो बीमारी में, लेन-देन में, घर के हिस्से में, भाई साहब के ऊपरी खर्चों में बंट जाता है। मैं नहीं समझती बैंक में तुम्हारा कोई बैलेंस है? मैं बी. ए., बी-टी. होकर बैठी हूं, नौकरी लग जाती तो अच्छे दिनों की सोच भी लेते। ओफ्, बी. टी. का फर्स्ट क्लास! जेठजी तो ऐसा उत्साह दिखाये चले जा रहे थे, जैसे उन्हींने मेहनत करके उसे फर्स्ट क्लास दिलवाया है। फर्स्ट क्लास आयी है, बहू फर्स्ट क्लास आयी है, लेकिन यह नहीं हुआ था कि मिठाई ले आयें। खुशी हुई होती तब न? जिज्जी को पहले सिखाया, फिर जिज्जी ने बच्चों को मिठाई के लिए सिखाया, जलेबी-पेड़ा बीस-पच्चीस तो खा ही जाते, महंगी खुशी कैसे लें, फिर दूसरे की! पैसा खर्च क्यों करें, दूसरे के लिए? उनका पैसा तो बैंक बैलेंस बढ़ाने के काम आता है, भई।' उमा पिछली सारी बातें उसके सामने रखे चली जा रही थी। 'कब तक बड़े भाई साहब के रहमो-करम को ढोया जाता

रहेगा ? दोनों का बन-बनकर बोलना, एकदम साधक-सिद्धक की तरह दोनों का व्यवहार करना, या फिर बच्चों के माध्यम काम निकालना। जब भी पैसे निकालने के, खर्च करने के अवसर आये–शंकर तू दे-दे मैं बाद को दे दूंगा। बिजलीवाला हो, धोबी हो, बढ़ई हो। घर के खर्च के हिस्से के अलावा शंकर ही पैसे खर्च करने के लिए घर में बना है, है न?' पूछते हुए बांह पर चढ़ आये चींटे को स्ट्राइकर की तरह तर्जनी से उछाल दिया। क्षण भर को चुप भी हो गयी, फिर बोलने लगी–

'मैं बराबर सुनती रही हूं– टाइपराइटर की रिबन ले आना, शंकर। कार्बन और पेपर दोनों खत्म हो गये हैं, शंकर। दवाइयां तू ही लेते आना, तनख्वाह मिलेगी तो दे दूंगा, या अब की साड़ी लाना तो इनके लिए भी लेते आना, तेरी पसंद की ये बड़ी दाद देते हैं..... टाइपराइटर खुद काम में लाते हैं, उसकी प्राप्ति का कोई हिस्सा देते हैं? ऊपर से टिकट लगाकर लिफाफे डाल देना, जैसे शंकर के पैसों से लिफाफे जल्दी पहुंचते हैं। दवाइयां कितनी बार आयीं, डाक्टर के कितनी बार पैसे दिये गये। पोस्टेज के पैसे कभी मिले? बंधुभाव पैसे खर्च करवाने की ही प्रतिबद्धता देता है? कितने-कितने बहानों से–शंकर, देते जावो, तुम्हारा पैसा बड़ा शुभ है, बड़ा शुभ। तनख्वाह आयी नहीं क्या, लेकिन पैसे दिये गये? पसंदगी के नाम पर बीवी की साड़ी का खर्च भी प्रेम से मढ़ दिया। दोनों का पैसा बैंक में जमा होने के लिए है और हमारा पैसा? खर्च के अलावा ज्यादा पैसा ले लेते हैं या फिर जेठजी दोस्तों से उधार मांग लाते हैं। दोस्तों तक की बातें सुन चुकी हूं.....

'यार, पति-पत्नी कमाते हैं, पर इसकी उधार मांगने की आदत बढ़ती ही जा रही है। मुझे तो इसमें कोई न कोई चालाकी दिखती है। अपना पैसा दांत से पकड़ता है। तनख्वाह के दिन चाय पिलाने को कहता है, और उसी दिन गधे के सींग की तरह गायब। औरों से दोसे, समोसे, कटलेट उड़ाने में आगे-आगे, आर्डर पर आर्डर मारे जायेगा, जैसे किसी खुशी में खा-खिला रहा हो। बिल देते समय होटल से सबसे पहले वही निकलेगा। हर दोस्त इसे लगभग समझ गया है, इस तरह ज़लील हो कर पैसा जोड़कर क्या करेगा? इसे सिर्फ खाना ही आता है..'

पहले की बात खतम नहीं हुई कि दूसरा बोलने लगा था–

'सच में यार, उसके खीसे में पैसे रहें तो वह उसका खुद ही उपयोग करना चाहता है, कहेगा–यार, माईंड मत करना, ज़रा एक समोसा मार कर आता हूं। तुमने अनुभव किया होगा, जब भी इसे कोई खिलाता नहीं तब यह खुद चाय पीने के बाद खाने को आ धमकता है। खीसे में सिगरेट रहेगी, लेकिन अगर सिगरेट पीना ही होगा तो मांगकर पियेगा।

कभी अगर खर्च करने की बात आयी भी तो खर्च से कितना फायदा उठाया जा सकता है, उस हिसाब से खर्च करेगा। अच्छा है अभी लोगों के यहां बाल-बच्चों सहित खाने नहीं जाता, वर्ना एक जून का खाना तो बंदा बचा ही ले। दूसरों का खाना इसे बड़ा अच्छा लगता है, दोस्तों के खीसों का बोझ वे ढोते रहें, यह पसंद नहीं करता! कहने के बाद दोनों दोस्त हंसने लगे थे।

'मैंने जेठजी को खुद देखा था, बच्चों के लिए होटल से आलू-बोंडे आये थे, उन्हें जल्दी-जल्दी खाकर मुंह पोंछते हुए सड़क पर निकल आये थे। भीतर उन्हें बुलाते तो कुछ न कुछ खिलाना पड़ता या फिर चाय तो पिलानी ही पड़ती। सफाई के साथ बाहर आ गये। दोस्तों ने चिकनाये ओंठ, दंतखोदनी चलाते हाथों से कुछ अंदाज़ा नहीं लगाया होगा!'

उमा की निगाह ही तेज़ नहीं कान भी तेज़ हैं, शंकर ने इस बार अनुभव किया। दोस्तों में भाई साहब के बारे में लगभग सभी के यही हाल-चाल हैं, सभी कहते हैं, साला मुफतिया माल बेरहम है, सिर्फ खाऊ है। कई दोस्त तो उससे बचने भी लगे हैं।

'जिज्जी ट्यूशन के पैसे लड़कियों से अलग लेती हैं। उन्हीं से कत्था, चूना, मिर्च-मसाला जिस किसी के यहां उपलब्ध हो बराबर मांग लेती हैं, मंगवा लेती हैं, लड़कियों के यहां किराणे की दुकान भर हो, फिर जिज्जी का पिरेम देखो। उस लड़की के बाल एक्सट्रा प्यार दिखाते हुए सहलायेंगी, पुचकारेंगी, समझायेंगी, वेरी गुड, वेरी गुड, बार-बार कहेंगी। सारा पिरेम का, वेरी गुड का ढोंग इसी लिए किया करती हैं कि लड़की कल आते समय मंगवाई चीज़ें अपने यहां से बराबर लेते आये। उससे खर्च के पैसे नहीं बचेंगे? स्कूलों में पढ़ाई होती तो ट्यूशन के धंधे की ज़रूरत क्यों पड़ती?'

इतना कहने के बाद वह एकाएक उठी और पीछे की गैलरी की ओर चली गयी। शंकर की इच्छा हुई कि जाकर देख ले, पर उसे लगा यह ताक-झांक की आदत छोटे आदमियों की होती है। वह दाढ़ी में साबुन लगाता रहा, ब्रश घिसता रहा। कृपाभाव के महंगेपन को, रहनुमापन के अस्तित्व को वह जैसे ब्रश से रगड़े जा रहा था, रगड़े जा रहा था।

तभी वह लौट आयी, उसके हाथ में एक थैली थी, उसे उंडेलते हुए बोली–

'देखो, इस थैली को मैंने बांस की लग्घी से नीचे की खूंटी से खींच लिया है। देख रहे हो न, इसमें जेठजी के स्वास्थ्य की चिंता सामग्री है–अंजीर, छोहारे, मुनक्के, बादाम की गिरी। इसमें तुम्हारा हिस्सा नहीं लग सकता? तुम आदमी नहीं हो? सिर्फ तुम्हारे पैसों में हिस्सा लग सकता है? तुम एक खुले मुंह वाली थैली हो न! यह सब छिपा-छिपा कर क्यों खाया जाता है? उनके प्रेम पगे शब्द

कितने बेमानी लगते हैं–'लाला, तुम अपने को किसी डाक्टर को दिखा आओ, गालों की हड्डियां दिखने लगी हैं, तुम दुबले दिखने लगे हो, अच्छा नहीं लगता, सुस्त-सुस्त उतरा-उतरा चेहरा, टानिक-वानिक लिखवा लो. . . .' अपने खसम को क्यों नहीं डाक्टर को दिखा आयीं, यहां चिकनी-चुपड़ी क्यों कह रही हैं। वहां पराये के लिए पैसे खर्च होंगे, लाला खुद जायेगा खुद के बिल में खर्च जुड़वायेगा, सहानुभूति चिपकाने का गौरव भी मिलेगा और पैसे खर्च करने का अवसर भी नहीं आयेगा। कितनी फिकर रखती हैं वेचारी, वे न रहें तो तुम्हारे स्वास्थ्य की चिंता कौन करेगा?'

शंकर सारी बातें सुनकर ज़ोर से हंस देना चाहता था, लेकिन डर गया। अभी व्हॉलूम धीमा है, हंसने से व्यंग समझ जायेगी और नॉब पूरा खोल दिया जायेगा। अभी तो आवाज़ कमरे में ही उठ-बैठ रही है। इस बीच वह एक-दो बार हिचकी भी ले चुकी है। दो-तीन बार लार गिटकने के लिए मुंह घूंट बनाता लगा भी।

'अब और सहते जाना गलत है, एक ढंग से गलतियों को प्रोत्साहित करना है, वोलो, सच. . .सच कहना चाहते हो या इसी तरह जुते रहना चाहते हो? सहते रहना भी अपराधी मन की कहीं न कहीं होने की बात करता है, करता है न?'

वह रेज़र को पानी में हिलाते-डुलाते रहा, उस तरफ देखा ही नहीं, जैसे उत्तर देने से बच रहा हो, पर वह समझ गयी थी बात को। वह कह रही थी–

'डूबने-उतराने का वक्त नहीं है। हम जितनी जल्दी सम्हल जायें अच्छा है। वर्ना यह मीठी ज़बान खोखला करके रख देगी। मीठे-मीठे यहां चमड़ी तक खुरंच जायेगी, हडिड्यों पर चमड़ी भी नहीं रहने देगी! जिज्जी की आंखें भला नहीं सोचतीं, सिर्फ खुद खाना, चटोरना जानती हैं, बस। दो-चार जगह मेरी नौकरी के लिए क्या कहा होगा, हंगामा बरपा किये दे रहे हैं। विज्ञापन एजेंसी का दबदबा दिखाना चाहते हैं। लेकिन सिर्फ टालने वाला हिसाब मुझे लगता है। जेठजी को लगता है कि एहसान जल्दी महसूस करवाने से क्या फायदा, उसके अंदेशे में ही गाड़ी चल रही है, तो चलने देना चाहिये। शानदार सेलरी मिलेगी, स्कूल भी अच्छा है, वहां तो हेडमिस्ट्रेस के चांस हैं,. . .क्या-क्या वे कहते नहीं रहे हैं। लेकिन आश्वासनों के सिवा, दिलासा के सिवा वहां क्या मिला है? फुसलाने का यह तरीका, हम समझते नहीं हैं? ठीक है, हम सब स्वार्थी हैं। स्वार्थ ही समाज में जुड़ने का आधार है, लेकिन प्रयोग में आदमी, रिश्ते और खून को भी तो देखा जाता है। बड़े भाई साहब उसकी मर्यादा को कब तक भुनाते रहेंगे?'

उसने रेज़र को पानी में हिलाना बंद कर दिया था। उसे खोलकर टॉवेल से पोंछना चाहता था कि रुक गया। उसे

लगा उमा की निगाहें उसके चारों ओर वर्तुल बना रही हैं। घेरा डाल रही हैं। बातें इतनी साफ थीं कि वह उत्तर देने से जैसे अपने को बचा रहा था, एहसान भुनने की बात कई बार उसके भी सामने आ चुकी है।

'दोस्त से कहकर नौकरी तुम्हारी क्या लगा दी है, जनम भर गाये जाते हैं। शायद ही कोई दिन जाता होगा जब नौकरी लगाने का एहसान सुनाया न जाता हो। अच्छा हुआ पिताजी के रहते पढ़-लिख गये, वर्ना—अरे भाई, मेरी ही हड्डी घिसी है, तब शंकर बना है। मैं खटता न होता तो आज जो शंकर है, वह होता? कौन इसको पढ़ाता-लिखाता, पहनाता-ओढ़ाता? मेरी हड्डी इसके लिए चंदन बनी यह कम है? मैं मिट गया तो क्या हुआ, इसे तो बना दिया।

'लेकिन इसकी नौबत नहीं आयी।' यह कहकर वह एक बार फिर नीचे झांकने लगी।

उसका आक्रोशी मुद्रा वाला हाथ, आंख बचाकर अलमारी की ओर देख लेने का भाव, वह देख गया था, उसे लगा उसके पास कुछ आज नया है। लाल-मुनियां चेहरे पर फुर्र-फुर्र कर रही थी।

'एहसान जताने वाले अक्सर वसूल करने के भाव से जुड़े होते हैं....'

उसे लगा कि उमा की आवाज भीग गयी है, वह रोवासी हो गयी है, तभी वह बोलते हुए सिसकने लगी—'हमेशा जिज्जी बच्चों का नाम ले-लेकर यही कहती हैं ये शंकर को एकदम बच्चों जैसा चाहते हैं। जिस दिन भी घर देरी से आता है, विचलित हो जाते हैं। शंकर को कलेज का टुकड़ा कहते हैं। उनकी जैसे हर दूसरी सांस शंकर के लिए होती है।

'कलेजे के टुकड़े का भ्रम तो साफ हो गया है,' वह हिचकी लेकर कहने लगी थी, उसकी आवाज़ ज़्यादा भीगी हुई लग रही थी— 'शुरू-शुरू में मुझे निपूती कहा करती थीं। —आजकल की लड़कियां बाल-बच्चों का सुख क्या जानें। बच्चे पैदा करने से उनका अवमूल्यन हो जाता है, फिगर शेप बदलने लगता है। दो साल तक तो निपूती बराबर कहती रहीं। पड़ोस की महराजिन ने मुझसे कहा भी था—'पढ़ी-लिखी लड़की को सामनेवाले का आदर करना चाहिये जी, हम तो अपढ़ हैं, पर किसी के लिए भी गलत नहीं कहतीं। निपूती कह-कहकर, कोखजली कह-कहकर कौन-सी भड़ास निकालती हैं, तुम्हारी जेठानी? लगता है तुम्हारे सुंदरापे से जलती हैं, जलन पाले हैं।'

'मुझे आज भी वे दर्द, तड़पनें, चीखें याद हैं। उस बेचैनी को भूल सकती हूं? तुमने भाभी से अस्पताल ले जाने को कहा था और वे अपना बिस्तर बांध रही थीं, किस कदर बोल गयी थीं—रिज़र्वेशन हो गया है, हम आज ही निकल रहे हैं। तुम अस्पताल में भरती करवा दो, वहां की डाक्टर बड़ी होशियार है, सब ढंग से

निपटा देगी। भाई साहब पीछे आकर खड़े हो गये थे, कितने ज्ञान की बातें कह रहे थे–'डरने की कोई बात नहीं शंकर, अब तो ब्रेन, हार्ट, किडनी तक के आपरेशन मामूली हो गये हैं, डरना नहीं, ब्लडबैंक में खून मिल जायेगा, खतरे के लिए डाक्टर हैं। मैं रुक जाता लेकिन सीट का रिज़र्वेशन जो हो गया है।'

'वे गंगा, माघ का मेला नहाने जा रहे थे, तुम्हारे बुलाये डाक्टर के शब्द थे–इन्हें जल्दी अस्पताल में भरती करिये ऑपरेशन बहुत ज़रूरी है, बच्चा हिल-डुल नहीं रहा है। दो जीवन खतरे में हैं। ड्राइवर स्ट्रेचर में सहारा देकर मुझे एंबुलेंस में चढ़ा रहा था और भाई साहब आटो में अपना सामान रख रहे थे। गंगा नहाने का पुण्य कलेजे के टुकड़ों से कहीं बढ़कर था! मुझे नर्स ने ऑपरेशन के बाद बताया था– 'इंचार्ज बाबू ने जो स्वयं लंगड़े हैं, शंकर बाबू जब घबरा गये थे, पसीने-पसीने हो गये थे, तब उन्होंने सम्हाला था, अपने रूमाल से पसीना पोंछा, फैन चालू कर दिया, कितनी देर सांत्वना देते रहे थे। कैसे-कैसे देवता मिल जाते हैं।'

शंकर के सामने वह घटना नाचने लगी। उस लंगड़े बाबू ने कितना अपनापन दिया था, कितनी सांत्वना दी थी, किस कदर पीठ सहलाता रहा था, लगता उसमें सच में एक बड़ा भाई पैदा हो गया है, कैसे कह रहा था–

'शंकर बाबू, ईश्वर ने मां को बचा लिया, ज़रा भी देरी करते तो दोनों की जान खतरे में थी। अच्छा होता पहला बच्चा रह जाता, मां-बाप का मन बढ़ जाता, खुशियां बढ़ जातीं, धीरज रखो बाबू, धीरज रखो।'

उसके पीठ सहलाते हाथ, कंधे को छूते हाथ कितनी दूर तक भीतर जा कर छू रहे थे। एक दूर का आदमी संकट को पहचान, संकट में कितना अपना हो गया था। कितनी दूर तक वह बाबू का अनुगत्त हो गया था, कितना स्नेहिल स्पर्श था, कितना.....

'क्या सोचने लगे? मैंने कोई गलत बात कही?' वह सीधे देखते हुए बोल रही थी। उसकी आंखों में अभी भी तपन थी, कोये बुरी तरह लाल थे। पलकें बरसात के बाद की शाखों की तरह साफ, नहाई हुई लगती थीं, नम थीं।

उसकी इच्छा हुई कि वह बता दे कि मैं भाई साहब को, उनकी कृपा को, उनके पैसे बटोरने के तरीके को समझता नहीं–ऐसी बात नहीं है। सिर्फ टालता आ रहा हूं। मां-बाप के बाद निभ जाये, निभती रहे यही कोशिश की मैंने। वे अपने पैसे सम्हालने में बड़े चुस्त हैं, अपना ही याद रहता है, बाकी के पैसे, लेन-देन भूल जाते हैं। इन्होंने मां-बाप के दाह-संस्कार के पैसों का भी हिसाब किया था। देखने में तो उस समय ऐसे लग रहे थे कि सभी कुछ बड़े भाई की हैसियत से कर रहे हैं, छोटे को क्यों खींचा जाये, लोगों की सहानुभूतियों को झुठलाना

(शेषांश पृष्ठ ८३ पर)

एक महान् विभूति : घनश्यामदास बिरला

□

सु. रामकृष्णन्

पूज्य घनश्यामदास बिरला अब इस संसार में नहीं हैं। शनिवार ता. ११ जून १९८३ को उन्होंने लंदन में अंतिम सांस ली। भारत ने एक अग्रणी उद्योगपति, परोपकारी सज्जन और आजन्म राष्ट्र-भक्त खो दिया। भारतीय विद्या भवन ने एक शक्तिशाली समर्थ स्तंभ खो दिया।

घनश्यामदासजी का दीर्घ जीवन सोद्देश्य, सफलतापूर्ण और कलामय था। जिस प्रकार उनका जीवन भव्य था, उसी प्रकार उनकी मृत्यु भी भव्य थी। वे कर्मयोगी थे। जीवन उनके मन की यात्रा थी। पृथ्वी की उनकी इस यात्रा का अंत सुखद और शांतिपूर्ण था। **'अनायासेन मरणं'** – भव्य सहज और स्पृहणीय।

[२]

घनश्यामदासजी स्वयं की शक्ति और सूझबूझ से उन्नति के शिखर पर पहुंचे थे। उनके रोम-रोम में श्रद्धा, साहस और आत्मविश्वास था। वे जहां जाते, वहां आशा और उत्साह में वृद्धि कर देते। संकोची और अस्थिर व्यक्ति में वे श्रद्धा, निर्भयता और गति का संचार कर देते। पूर्ण समर्पण और आत्मानुशासन के पालन से उन्हें यह सिद्धि प्राप्त हुई थी।

'जो मुक्त है उसे किसी की दया की आवश्यकता नहीं। भगवान के अलावा किसी से भय न रखनेवाला जिसके सामने चाहे उंगली उठा सकता है।'

और सचमुच जब भारतवर्ष गुलामी की जंज़ीरों में जकड़ा हुआ था, तब घनश्यामदासजी ने शक्ति-संपन्न ब्रिटिश साम्राज्य के सामने उंगली उठायी थी।

महात्मा गांधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश करने के पहले महामना पं. मदन-मोहन मालवीय और पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के नेतृत्व में भारत के मुक्ति-आंदोलन में उन्होंने भाग लिया था। प्रथम विश्वयुद्ध के दरम्यान बम बनानेवाले बंगाल के युवा क्रांतिकारियों को भी उन्होंने संरक्षण प्रदान किया था। बिरलाजी की गिरफ्तारी का वारंट भी निकल चुका था। परंतु वेश बदल कर दाढ़ी-मूंछ बढ़ाकर वे भूमिगत हो गये थे।

राजस्थान की मरुभूमि में जन्मे घन-श्यामदासजी 'अक्षयपात्र' थे। समृद्धि का कोष तो वे थे ही, परंतु सतर्कता, दीर्घ दृष्टि, दृढ़ता, सहनशीलता और अनोखी सूझ-बूझ से भी वे संपन्न थे।

बारह वर्ष की सुकुमार वय में वे पिताजी के धंधे में लग गये। उन्हें अंग्रेज़ों की व्यापारिक रीति आकर्षक लगती थी,

परंतु अंग्रेजों के रंगभेद से उन्हें चिढ़ थी। फिर भी उन्होंने अंग्रेज़ों की व्यापारिक रीति पर प्रभुत्व प्राप्त किया और विश्व में जगह-जगह उद्योग साम्राज्य की स्थापना की। उसका कुशल संचालन भी किया।

व्यापार-उद्योग के विकास के साथ-साथ महान अंग्रेज राजनीतिज्ञों—चर्चिल, बाल्डविन, मेकडोनॉल्ड, सेम्युअल होर, एमेरी, एटली, लिनलिथगो आदि के साथ उन्होंने बराबर संबंध रखा। महात्मा गांधी सहित हमारे राष्ट्रीय नेताओं और अंग्रेज राजनीतिज्ञों के बीच समझदारी का सेतु बांधने का उन्होंने सफल प्रयास किया था। वे कहते थे, 'पूज्य बापू की बात अंग्रेज सरकार को समझाना और अंग्रेजों की बात पूज्य बापू को समझाना ही मेरा काम है।'

१९४७ में शांतिपूर्ण ढंग से जो सत्ता-परिवर्तन हुआ उसके पीछे घनश्यामदासजी का योगदान साधारण नहीं था।

३२ वर्ष तक घनश्यामदासजी ने महात्मा गांधी की छाया की तरह उनके साथ काम किया। बिरलाजी गांधीजी के प्रेम पात्र, श्रद्धेय साथी और सहकर्मी बने रहे। गांधीजी के प्रेम का घनश्यामदासजी जबर्दस्त मूल्य चुकाते थे। बिना किसी हिचक के उन्होंने अपनी संपत्ति व साधन गांधीजी की विविध प्रवृत्तियों के लिए सर्मपित कर दिया था। उन्होंने गांधीजी को 'कोरा चेक' दे रखा था, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं।
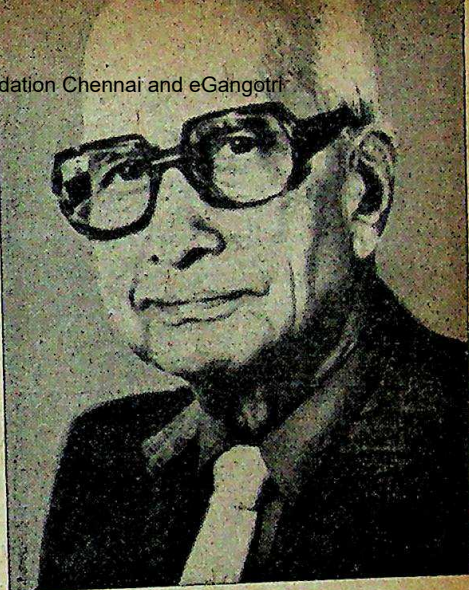
१९२४ में ही गांधीजी ने घनश्यामदास बिरला को लिखा—'ईश्वर ने मुझे विश्वासपात्र समर्थ मित्र दिये हैं। उनमें से तुम्हें मैं एक मानता हूं।' गांधीजी के साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' की योजना और उसके संरक्षण के पीछे बिरलाजी की शक्ति और साधन थे, इस बात को सभी जानते होंगे। 'हरिजन सेवक संघ' के बिरलाजी अध्यक्ष थे। जब ब्रिटिश सत्ता भारत में अपने मध्याह्न काल में थी, तब बिरलाजी ने 'नाइट' की उपाधि लेने से इन्कार कर दिया था।

[३[

घनश्यामदासजी भारतीय विद्या भवन की स्थापना काल से ही उससे जुड़े हुए थे। भवन के तेजस्वी मानद सदस्यों की

मालिका में उनका स्थान था।

स्वराज्य-प्राप्ति के तीन वर्ष पूर्व १९४४ में कुलपति मुन्शीजी ने भारत के विद्वानों द्वारा लिखित भारत के सच्चे सांस्कृतिक इतिहास की आवश्यकता का अनुभव किया। स्वराज्य प्राप्ति के बाद की भावी पीढ़ी–धर्म, भाषा, विविध परंपराओं के बावजूद – भारत की आधारभूत एकता को समझ सके, ऐसे इतिहास की नितांत आवश्यकता थी। इस पूरी योजना को तैयार करने में बिरलाजी उनके साथ उपप्रमुख के रूप में जुड़ गये। उनकी ही उदार आर्थिक सहायता के कारण ११ भागों में ३२ वर्ष की कड़ी मेहनत के बाद यह इतिहास प्रकाशित हुआ। इसके अंतिम भाग का तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई के हाथों उद्घाटन हुआ, उस समय घनश्यामदासजी बिरला उपस्थित थे।

१९५१ में कम कीमत की पुस्तकों के लिए मुन्शीजी ने एक नयी योजना, बुक युनिवर्सिटी, पर विचार किया। ऐसी ढाई सौ से तीन सौ पृष्ठों की ६ पुस्तकों के लिए बिना किसी कीमत के कागज़ देने के लिए मुन्शीजी ने बिरलाजी से कहा। 'ओरियंट पेपर मिल' से कागज़ प्राप्त किया गया। राजाजी का 'महाभारत' पहली पुस्तक के रूप में छपा। इन पुस्तकों की मांग बढ़ती गयी। अन्य अनेक पुस्तकें 'बुक युनिवर्सिटी' योजना के अंतर्गत प्रकाशित होने लगीं। अब तक अलग-अलग पुस्तकों की लगभग अस्सी लाख प्रतियां बिक चुकी हैं। उसका सारा श्रेय बिरलाजी को है।

१९७१ में मुन्शीजी के निधन के बाद भवन के सामने कठिनाइयां आयीं। परंतु बिरलाजी की सलाह और आर्थिक सहायता के कारण भवन की प्रगति जारी रही।

१९७२ में भवन के यू. के. केंद्र की, एक किराये के मकान में छोटी-सी शुरूआत हुई। सितंबर में वे इंग्लैंड आये तब उन्हें इस केंद्र में पधारने को आमंत्रित किया गया। केंद्र का निरीक्षण करने के बाद उन्होंने कहा– '१९३० से ही भारतीय संस्कृति का एक केंद्र लंदन में होना चाहिये, ऐसा सपना मैं और मेघजी भाई (सौराष्ट्र के प्रसिद्ध दानवीर व्यवसायी) देख रहे थे। आज उसे साकार रूप में देखकर मुझे आनंद होता है। लंदन व्यापार, उद्योग, संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान की राजधानी है। वहां इस केंद्र की स्थापना से भारत की गौरवशाली विरासत का सभी को परिचय प्राप्त होगा।' अपने भतीजे माधवप्रसादजी बिरला द्वारा एक लाख पौंड का दान इस केंद्र को उन्होंने दिलवाया।

श्री घनश्यामदासजी के तीन ग्रंथों को प्रकाशित करने का सम्मान भवन को मिला है। महात्मा गांधीजी के साथ हुए उनके पत्र-व्यवहार के चार खंड प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तक के लंदन में हुए विमोचन-समारोह के अवसर पर लॉर्ड फेनर ब्रॉकवे ने कहा था, 'भविष्य में ये

ग्रंथ बाइबिल की तरह पढ़े जायेंगे। इसमें गांधीजी के विचारों और सपनों को आलेखित किया गया है।'

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुं' ग्रंथ को हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में भवन ने प्रकाशित किया है।

घनश्यामदासजी के प्रति गांधीजी का प्रेम पुत्रवत् था। वे उनका बड़ा आदर करते थे।

१९२७ में घनश्यामदासजी पहली बार योरोप गये। तब गांधीजी ने उन्हें एक हृदयस्पर्शी पत्र लिखा, जैसे एक पिता अपने पुत्र को लिख रहा हो। उसमें उन्होंने दस नियमों के पालन की बात कही थी।

'गीता' और रामायण का वाचन कभी छोड़ना नहीं। यदि तुम्हें इनके पढ़ने की आदत न हो तो, डाल लो।'

जीवन के अन्तिम दिन तक गीता और रामायण पढ़ने की आदत का उन्होंने पालन किया।

घनश्यामदासजी गीता के तत्त्वज्ञान का नियमित पालन करते थे। 'देह जीर्ण वस्त्र जैसी है' इस बात को वे अच्छी तरह समझते थे। इसीलिए उन्होंने कह रखा था कि उनका शरीर जहां छूटे, वहीं उसका अंतिम संस्कार किया जाये।

गांधीजी ने उन्हें दूसरी दो बातें कही थीं कि 'रोज टहलने जाना, लगभग छह मील चलना। सुबह और शाम टहलने की आदत हर एक को डालनी चाहिये।'

जीवन के अंतिम दिन तक उन्होंने इसका पालन किया। सुबह टहलने गये थे, तभी उन्होंने देह-त्याग किया। उनका जीवन अनुशासनपूर्ण था। रोज ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाते और रात को नियमित ९ बजे सो जाते। १९४६ में वायसराय लार्ड वावेल का अंतरिम सरकार के विषय में रेडियो पर रात को ९ बजे भाषण था। किसी ने इस बारे में जब उन्हें याद दिलाया, तो वे बोले—'मैं तो अपने नियम का पालन करूंगा। भाषण कल अखबार में पढ़ लूंगा।'

अपने निधन के पूर्व गांधीजी ने घनश्याम-दासजी को लिखा था—'तुम्हारी जैसी नम्रता और परोपकार की भावना बहुत कम धनिकों में मिलती है। मैं चाहता हूं कि उसमें सदैव वृद्धि होती रहे। इन गुणों का उपयोग देश के कल्याण के लिए हो। जहां-जहां मुझे सच्चाई, पवित्रता और अहिंसा का दर्शन होता है, वहां से वह खजाना मैं एक कंजूस की तरह संभालकर रखता हूं। यही मेरा लाभ है। यह मुझे सुखी रखता है।'

घनश्यामदासजी उद्योगपतियों में महा-मानव जैसे थे। कथाओं में ही पढ़ने को मिले, ऐसे परोपकारी और दानवीर थे वे। भारतमाता के वे एक यशस्वी पुत्र थे।

एक विराट् चंदन वृक्ष ढह गया, परंतु उसका सौरभ अब आगे आने वाली पीढ़ियों तक फैलता रहेगा।

☐

१९८२ की ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता :

काव्य - तपस्विनी महादेवी वर्मा

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

१९८२ का ज्ञानपीठ पुरस्कार हिंदी की सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा को उनकी रचना 'यामा' काव्य कृति पर दिया गया है। यह पुस्तक १९३९ में प्रकाशित हुई थी। नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्य गीत चार यामों में इसकी कविताएं विभाजित हैं। इस संकलन की रचनाओं की काव्यगत विशेषता के साथ उनका चित्रण भी स्वयं महादेवीजी ने अपनी तूलिका से किया है। रचनाकार के साथ ही वे सफल चित्रकार भी हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा का स्थान हिंदी काव्य-जगत् में अप्रतिम है। भारतीय दर्शन के प्रति उनका झुकाव बचपन से ही रहा है। इसीलिए उनकी रचनाएं रहस्यवाद की ओर विशेष रूप से उन्मुख नजर आती हैं।

काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद की अनुभूति से पूर्ण वे एक अद्वितीय कलाकार भी हैं।

उन्हें अब तक अनेक पुरस्कार मिल चुके हैं। जिनमें मंगलाप्रसाद पारितोषिक, सेक्सरिया पुरस्कार, द्विवेदी पुरस्कार और भारत भारती पुरस्कार मुख्य हैं।

उनके काव्य में अज्ञात आराध्य के प्रति समर्पण की भावना निहित रहती है। उनके दार्शनिक विचार बुद्ध की करुणा और दुःखवाद तथा विवेकानंद और रामतीर्थ के विचारों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। रश्मि की पंक्ति उनके अद्वैतवाद की प्रधानता सिद्ध करती हैं :

तुम्हीं में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।

आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता भी उन्होंने स्वीकार की है। उनका कहना है कि उसी असीम ने सृष्टि का निर्माण किया है और उसी में अंत में वह लीन हो गयी।

वे कहती हैं :

मैं तुमसे हूं एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश।

नीरजा और सांध्यगीत के उनके गीत मानो दुःख से बोझिल होकर आत्मविस्मृत से हो उठे हैं। उनके प्राणों की जीवन-बाती मंद-मंद जलती है :

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल

प्रियतम का पथ आलोकित कर !
सौरभ फैला विपुल धूप बन;
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदुतन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल ।
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल !

'रश्मि' की भूमिका में उन्होंने अपने दुःखवाद का कुछ संकेत देते हुए लिखा भी है :

'सुख और दुःख के धूप-छांह के डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत से लोगों के आश्चर्य का कारण है । . . . संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है । जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परंतु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी । कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगती है । इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझनेवाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था । अवश्य ही उस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परंतु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं, जिनसे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती ।'

वास्तव में महादेवी का यह दुःखवाद 'रश्मि' में एक अधीरता, आतुरता से

श्रीमती महादेवी वर्मा

भरा हुआ है । वही आगे चल कर 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' में शांत और कोमल रूप धारण कर लेता है । वे कहती हैं :

मधुर पिक हौले-हौले बोल,
हठीले हौले-हौले बोल !

उनकी भाषा गद्य में हो चाहे पद्य में, लगती है अनमोल सांचे में गढ़ी गयी है । शब्दों की यह शिल्पकला उनकी अपनी है । एक-एक शब्द चुन-चुन कर वे कुशलता से सजाती हैं :

दुख से आविल, सुख से पंकिल;
बुद्बुद् से स्वप्नों से फेनिल . . .

उनकी रचनाओं को हम चार खंडों में बांट सकते हैं—

१–रहस्यवादी रचनाएं; २–वेदना प्रधान रचनाएं; ३–प्रकृति-चित्रण संबंधी रचनाएं और ४–गीति काव्य। वे सुंदर, सरस और करुणापूर्ण गीतों की श्रेष्ठतम गायिका हैं। उनके काव्य में चिंतन का प्राधान्य है और कल्पना की ऊंची अभिव्यंजना।

महादेवी को छायावाद की अंतिम कड़ी के रूप में गिना जाता है। पर उनका छायावाद और रहस्यवाद दोनों ही सदैव गतिशील रहे हैं। आज की कविता में ये दोनों वाद भले ही पुराने पड़ गये हैं, पर महादेवी की कविता आज भी जनमानस के लिए उतनी ही प्रेरणाप्रद है कि वे आधुनिक मीरा के रूप में समादृत हैं।

उनका जन्म सन १९०७ में एक विद्यानुरागी परिवार में उत्तरप्रदेश के फरुखाबाद शहर में हुआ था। इनके बाबा का विश्वास था कि कुलदेवी दुर्गा की कृपा से उनका जन्म हुआ है। परंतु दुर्गा और सरस्वती दोनों का ही आशीर्वाद उन्हें मिला है।

जब वे मंच पर बोलना शुरू करती हैं तो श्रोताओं को लगता है कि मां सरस्वती ही उनके कंठ में आसीन होकर बोल रही हैं।

सन १९३३ में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. करने के बाद वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनीं। उन्होंने साहित्यिक पत्रिका 'चांद' का निःशुल्क संपादन भी किया। 'दीपशिखा' की कविताओं ने उन्हें प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुंचा दिया।

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएं' अपनी इन दोनों रचनाओं में महादेवी दूसरी ही नजर आयीं। उनके इन दोनों ही रेखाचित्रों ने पाठकों को संस्मरण और कहानी तथा निबंध का समान रूप से आनंद दिया।

महाकवि निराला ने एक स्थान पर महादेवी के व्यक्तित्व पर अर्घ्य चढ़ाते हुए लिखा है :

हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणी,
स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी।

वास्तव में महादेवी का व्यक्तित्व उनकी प्रतिभा के समान ही बहुमुखी है।

–भारतीय विद्या भवन, बम्बई-४००००७

□

पटना विश्वविद्यालय की रजत-जयंती के अवसर पर जो कवि-सम्मेलन हुआ था, उसमें मैथिलीशरण गुप्त भी पधारे थे। कवि-सम्मेलन में थोड़ा शोर होने लगा। यहां तक कि शोर उस समय भी होता रहा, जब सुभद्राकुमारी चौहान काव्य-पाठ कर रही थीं। इससे मैथिलीशरणजी को गुस्सा आ गया और उन्होंने गरज कर कहा, 'आपने एक हजार वर्ष की गुलामी बर्दाश्त की है, क्या दो-एक कविताएं नहीं बर्दाश्त कर सकते?' राष्ट्रकवि की फटकार सुनकर सभा शांत हो गयी।

–डा० गोपालप्रसाद 'वंशी'

□

नवनीत के चंदे की दरें :

भारत में : १ वर्ष : २८ रु.; २ वर्ष : ५४ रु.; ३ वर्ष : ८० रु.।
विदेशों में (समुद्री डाक से) : १ वर्ष : ८० रु.; २ वर्ष : १५० रु.; ३ वर्ष : २२० रु.।
सीलोन, पाकिस्तान, बांग्लादेश :
१ वर्ष : ४० रु.; २ वर्ष : ७८ रु.; ३ वर्ष : ११५ रु.।
विदेशों में हवाई डाक से : (पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान और वर्मा)
१ वर्ष : १२५ रुपये। **अन्य सभी देशों के लिए २०० रुपये।**

— व्यवस्थापक

एक प्रति : २·७५ रुपये।

(पृष्ठ ७५ का शेषांश)

नहीं चाहते थे, लेकिन तेरहवीं के बाद खर्चे का पूरा चिट्ठा सामने रख दिया, और मौत-मट्टी का आधा पैसा वसूल कर लिया। कह रहे थे, 'बाप अकेला या मां अकेले मेरी ही तो है नहीं।'

उसने कहा नहीं, उस बात को मन में ही रख गया।

वह सीधे देखते हुए कह रही थी—'मैंने तुमसे जितना भी कहा है, किसी गलत आधार पर नहीं। अभी तक मैं चुप थी। चलता था, चलता था, एहसान, कृपा तुम्हारे लिए भी बेमानी नहीं थी, तुम चुप रहना चाहते थे बस।'

चेहरे से उत्तेजना अभी गयी नहीं थी। लालमुनियां फुर्र-फुर्र अभी भी कर रही थी। कमरे में धूप लगा दरवाज़ा पकड़कर खड़ी हो गयी है। भीतर आने के लिए पूछ रही है। वह शायद आखिरी बात कहना चाह रही थी।

'आज तक का बचाया पैसा, हम पर की जाने वाली कृपा, कृपा का एहसास लो आज सामने आ ही गया...।' कहते हुए अलमारी से कार्ड निकालकर सामने रख दिया। देते-देते बोल भी गयी, छोटे मुन्ने को जिज्जी ने टपाल में डालने को दिया था। वह उस कार्ड को यहां भूल गया, अब पढ़ लो कार्ड भाई साहब की लिखावट में उनके एक मित्र के नाम था—'भई, लाख-डेढ़ लाख का मकान हो तो खबर करना, खरीद लेना चाहता हूं। शंकर बाबू के अलग होने की राह देख रहा हूं। जिस दिन वे घर से अलग हो जायेंगे, उसी दिन रजिस्ट्री करवा लूंगा। भूलना नहीं, रकम एकदम तैयार है।'

पंक्तियां पढ़ते-पढ़ते खूंटियां निकालने को रेजर चलाते-चलाते ऐसा लगा कि गाल को ब्लेड दूर तक खरोंच गया है, चीर गया! **—सीतावर्डी, नागपुर, महाराष्ट्र**

□

चित्रकार सर्वजीत सिंह का हिमालय चित्रण

□

कुन्था जैन

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो
नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोय निधीवगाह्य स्थितः
पृथिव्या इव मानदण्डः ।।
—कालिदास : 'मेघदूत'

भारत के उत्तर में देवता के समान पूज्यनीय हिमालय नामक अत्यंत विशाल पर्वत है। वह पूर्व और पश्चिम के समुद्रों तक फैला हुआ ऐसा लगता है, मानो वह पृथ्वी को नापने-तौलने का मापदण्ड हो।

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयम् प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता
पुकारती ।। —प्रसाद

०

समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय
श्वेत शान्ति आत्मानुभूति लय,
गंगा जमुना, जल ज्योतिर्मय
हंसता जहां अशेष। —सुमित्रानन्दन पंत

०

मेरे नगपति ! मेरे विशाल
साकार दिव्य गौरव विराट्,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिमकिरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
—रामधारीसिंह दिनकर

कवि शिरोमणि कालिदास से लेकर मां भारती के समस्त गण्यमान्य कवि-पुत्रों, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानंदन पंत, प्रसाद, दिनकर एवं अनेक भाव-प्रवण लेखकों की सृजनशील लेखनी ने विविध छन्दों और शब्दों में देवतात्मा पर्वतराज हिमालय की स्तुति-वन्दना की है।

उपरोक्त छन्दों में व्यक्त गहन आत्मानुभूति को भारत-भू के महानतम तपस्वियों, ऋषियों और सन्त-वृन्दों ने आत्मसात् कर दर्शन-चिन्तन के उन द्वारों को खोला है, जिसमें से अपूर्व मुक्ति-प्रतिमा की झलक मिली है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में हिमालय की चोटियों के चरण-स्पर्श की ललक को पूरा करने अनेक पर्वतारोही अपने शारीरिक और मानसिक साहस को समर्पित करने हिमालय की यात्रा पर गये हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ इसी गिरिराज के वह पावन श्रृंग-अंग हैं, जिनकी यात्रा कर अनादिकाल से लाखों प्राणी अपने जीवन को सफल सार्थक मानते रहे हैं। ऐसे पूजनीय तीर्थस्थान हिमालय को अर्घ्य चढ़ाने के अनेकों साधनों में से एक साधन अपनाया चित्रकार सर्वजीत सिंह ने।

महान हिमालय की पर्वत-श्रेणियां

सर्वजीत सिंह का जन्म हिमालय के उत्तरांचल में 'डलहौजी' नाम के छोटे से पर्वतीय नगर में हुआ। बचपन से ही भ्रमण के शौकीन सर्वजीत सिंह को पर्वतीय छटा ने मोहित किया। ११ वर्ष की आयु में ही उन्होंने हिमालय की शोभा को चित्रों में अंकित कर, अपनी कला की प्रदर्शनी की। हिमालय पर्वत की आत्मा को अपने में एकाकार करने की निर्बाध आकांक्षा ने युवक सर्वजीत सिंह में एक सन्त की साधना को मूर्त करने का बल दिया। १९४१ से १९६० तक, गेरुआ वस्त्र धारण कर बिलकुल जोगी चित्त से रमे सर्वजीत सिंह ने १५००० किलोमीटर की पदयात्रा द्वारा हिमालय पर्वत की घाटियों, चोटियों, ग्लेशियरों और चट्टानों को पार किया। उत्तरीय छोर के काराकोरम से लेकर गढ़वाल हिमालय और अकसई चिन से लेकर पश्चिमी तिब्बत की नुकीली पथरीली भूमि व उत्तरी नेपाल की पर्वतश्रेणियों पर भ्रमण किया। इनमें सबसे रोमांचक और महत्वपूर्ण यात्रा वह थी, जो इन्होंने नितान्त अकेले १९४५ में 'चम्बा' में स्थित पांगी पर्वत की नुकीली तलवार की धार-सी उस श्रृंखला की तय की जो समुद्र-तट से १७००० से १९००० फीट की ऊंचाई पर स्थित है।

सर्वजीत सिंह ने हिमालय के चित्रों में आधुनिक पर्वतारोही के शारीरिक व प्रबल मानसिक साहस और भारतीय परंपरा में पगे ऋषि-मुनियों के आध्यात्मिक बल को बटोर, गहन अनुभूत सत्य को कलाकार की तूलिका के माध्यम से प्रत्यक्ष करने का अग्रणीय प्रयत्न किया है। इन्होंने हिमालय सम्बन्धित अनेक चित्रों में पर्वतराज के दर्शन से उद्भूत आनन्द और विराट्-गति की रहस्यात्मक प्रतीति को न केवल अपने देश के जन-मानस में प्रतिष्ठित किया है, बल्कि देश-

विदेश के क[illegible] कराया है। भारत में कई बार इनके चित्रों की प्रदर्शनियां आयोजित हो चुकी हैं। विदेशों में न्यूयार्क, जर्मनी के आकेन व कौबलेन्ज़, आस्ट्रिया की राजधानी वियना में इनके चित्र अपनी पूर्ण प्रभा-वोत्पादक सफलता के साथ प्रदर्शित हुए हैं।

पश्चिम के प्रसिद्ध चित्रकार ऐंटन ल्हैमडन, जो चित्रकला के क्षेत्र में एक नयी धारा, 'कल्पनातीत यथार्थ' के संस्थापक हैं, सर्वजीत सिंह के चित्रों में तांबे और सोने के रंगों के प्रयोग से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें वियना कला-अकादमी की ओर से निमंत्रित किया कि वे ऐंटन ल्हैमडन के साथ 'जुगलबन्दी' कर चित्र रचना करें। ५ फरवरी १९७३ को न्यूयार्क में हुई प्रदर्शनी के विषय में ऐलिस बेबर ने लिखा : 'सर्वजीत सिंह के चित्रों से प्रसारित स्पंदनशील रोमांच, किसी पौराणिक कथा या चित्रों का सहारा नहीं लेती और न ही किसी अलौकिक स्वप्न-निर्माण का। बल्कि इनके चित्रों में भयाक्रान्त करते आकाश की स्याही का कालापन, जो ऊंचे शिखरों, धातु-संगठित चट्टानों, और घड़घड़ाते ग्लेशियरों पर छाया हुआ है, दर्शकों और कलाकार के मध्य एक ऐसी मानसिक तरंग उद्वेलित करता है जिसे तिब्बत के सन्तों ने 'टॉग-पेनय' का नाम दिया है—अर्थात ब्रह्माण्ड के उस एकान्त एकाकीपन की प्रतीति जिसकी पहचान स्पेस में जाते हुए अन्त-[illegible] यात्रियों ने की है। साथ ही साथ इसमें प्रकृति की उस भयावह शक्ति के दर्शन समाहित हैं जो सदैव परिवर्तनशील गतिमयता में प्रवहमान है।

प्रकृति का यह संघर्ष सर्वजीत के चित्रों को अपने अंक में लपेटने वाले उन घोर विरोधी रंगों की भूल-भुलैया में से स्पष्ट बोल उठता है जो सर्वत्र कुछ 'बनने' की ओर संलग्न है, मात्र 'होने' की ओर नहीं—ग्लेशियरों की अटूट फिसलन, नदियों का चिर-प्रवाह, आकाश से लटकते ऊंचे पर्वत शिखर और टुंड्रा का पसरा-फैला विस्तार। पर्वतीय एकान्त की असीमता, ब्रह्म और आत्मा की एकाकारिता एवं अनवरत क्रियाशील झरती ऊर्जा जो निरन्तर रचना-धर्मिता से संयुक्त है, सर्वजीत के चित्रों द्वारा, 'ध्यान' या 'आराधना' की मानसिक स्थिति में ले जाने के मार्ग हैं। संयम-साधना का प्रत्यक्ष दर्शन हैं इनमें।

सर्वजीत की चित्रांकन कला वास्तुकलात्मक है, वह वास्तुकला जो प्रकृति के आदिम रूपाकारों में प्रतिबिम्बित है। इनके चित्र, पश्चिमी विचारधारा से उपजे 'ऐब्सट्रेक्ट' या 'सुर्रियलिज़्म' आदि रूपों से कोई नाता नहीं रखते। अद्वैत और 'अहं ब्रह्मास्मि' की भावना को हृदय में जागृत करना सर्वजीत सिंह के चित्रों की मूल प्रेरणा है। इसके लिए हिमालय से बड़ा और कौन-सा परिदृश्य हो सकता है? इसे ही सर्वजीत का 'हिमालयीय अनुभव' कहा

गया है।

इन्होंने हिमालय पर कई फ़िल्में भी बनाई हैं। 'ऐवलैन्शे' नामक फ़िल्म पर इन्हें १९६५ में राष्ट्रपति पदक प्राप्त हुआ। लद्दाख पर बनाई एक ३० मिनिट की डाक्यूमेन्टरी फिल्म 'लेस्ट आई फोरगेट दी' एडिम्ब्रा में १९५१ में हुए पांचवें फ़िल्म फ़ैस्टीवल में बहुत प्रशंसित हुई।

तिब्बत की झीलें

सर्वजीत के चित्र परंपरागत कार्टोग्राफ़िक मानचित्र को तीन आयामों वाले परिदृश्य में परिवर्तित कर देते हैं। इटली के प्रसिद्ध आल्प्स पर्वत के चित्रों को इस रूप में परिवर्तन करने के लिए वे दो वर्ष जर्मनी में रहे। पश्चिमी यूरोप के प्रकाशकों में इनके इस कार्य और पद्धति से एक तहलका-सा मच गया। अपनी कला के दर्शन पक्ष के विषय में सर्वजीत का कथन है –'कला का उद्देश्य है कि वह चित्त को इन्द्रियों की दासता से मुक्त करे। वे कलाकार जो पश्चिम के ५० वर्ष पहले के ऐब्सट्रैक्ट या निराकार रूप का अनुसरण करने में व्यस्त हैं, इस उद्देश्य तक पहुंच ही नहीं सकते क्योंकि वे चित्त को घेरने वाले सम्बन्धों के विषय में गलत मान्यता वाले अवलम्बों से प्रारंभ होते हैं। यह आत्मा और ब्रह्म का सम्बन्ध है जो पूर्वीय व्यक्ति को सहज रूप से प्रतीत हो जाता है। हमारे कुछ भारतीय कलाकार अपनी इस विशाल पृष्ठभूमि से कटकर विसंगत और संदर्भविहीन दर्शनों से कैसे प्रभावित हो जाते हैं यह समझ में नहीं आता।'

□

एक राजनेता के निजी सचिव ने उनसे पूछा – 'सर, क्या आपने कल महिला सम्मेलन में बोलने वाला भाषण याद कर लिया है?'

राजनेता ने कहा –'हां भाई, याद तो कर लिया है पर महिला सम्मेलन की अध्यक्षा मुझे बोलने देंगी तब न।'

–श्याम मनोहर व्यास

□

साहस-कथा :

पाताल की अतल गहराइयों की खोज में

□ हंस

आधुनिक अन्वेषकों की खोज के दो नये क्षेत्र हैं—अंतरिक्ष तथा भूगर्भ। अंतरिक्ष की खोज तो ज़ोरशोर से हो रही है, लेकिन भूगर्भ की ओर अन्वेषकों का ध्यान कम गया है। इसका मुख्य कारण है—भूगर्भ के प्रति मानव का आदिकाल से चला आ रहा भय और संदेह। अभी हाल में मनोजीव भौतिकी के क्षेत्र में, समय की धारणा संबंधी एक नये अनुसंधान के सिलसिले में एक तरुण भूगर्भशास्त्री ३७५ फुट की गहराई में ६३ दिनों तक एक पर्वत की संकीर्ण कंदरा में रहा, और फिर सकुशल वापस लौटा, ऐसी महत्त्वपूर्ण जानकारी के साथ, जो पृथ्वी पर आदमी के जीने के तरीके में आमूल परिवर्तन कर सकती है।

लोगों ने उसे 'दीवाना', 'सस्ती पब्लिसिटी का शौक़ीन', 'आत्मघाती प्रवृत्ति का', और न जाने क्या-क्या नहीं कहा, लेकिन उसने लोगों के कहने की कोई परवाह नहीं की। वह तो अपनी इच्छा और पूरी लगन से, पृथ्वी से ३७५ फुट नीचे स्थित एक संकीर्ण और हिमाच्छादित कंदरा में किये जाने वाले एक ऐसे ख़तरनाक वैज्ञानिक प्रयोग में भाग ले रहा था, जिसके सफल हो जाने पर भूगर्भशास्त्रियों को प्राप्त महत्त्वपूर्ण जानकारी से पृथ्वी पर मानव के जीने के तरीकों में आमूल परिवर्तन संभव था। वह यह सोच करके इस ख़तरनाक प्रयोग में उतरा था कि यदि इस प्रयोग के बीच में, उसकी मृत्यु हो जाने के कारण प्रयोग अधूरा रह गया, तो उसे अपनी जान के जाने की उतनी परवाह न होगी, जितनी प्रयोग के असफल हो जाने की होगी।

इस तरुण भूगर्भशास्त्री का नाम था, माइकेल सिफरे। जिस प्रयोग में वह भाग ले जा रहा था, उसके अनुसार उसे दो महीने तक अकेले, उस कंदरा में रहना था, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। एक वर्ष पूर्व, आल्पस पर्वत के कुछ पर्वतारोहियों ने एक महीना ऐसी ही संकीर्ण कन्दरा में बिताया था, और एक नया विश्व-कीर्तिमान स्थापित किया था। पर, दो महीने . . . यह तो उन पर्वतारोहियों की दृष्टि में भी 'नितान्त असंभव' था। माइकेल सिफरे के अलावा, किसी को विश्वास न था कि वह कन्दरा में दो महीने बिताकर, सकुशल ऊपर चला आयेगा। इसी विश्वास के कारण, उसने पुलिस को यह लिखकर दिया था कि किसी भी हालत

में उसे प्रयोग की अवधि समाप्त होने तक ऊपर न लाया जाये, और यदि वह इस प्रयोग के दौरान मर जाये, तो इसकी पूरी जिम्मेवारी उसकी होगी।

इतनी गहराई में उसके रहने के लिए १३ फुट लंबा और ८ फुट चौड़ा एक कैनवेस का बैग बनाया गया था। इस बैग की, तथा दो महीने तक उसके द्वारा प्रयुक्त होने वाले सामान की, उसके उन दोनों सहयोगियों ने, जो उसके साथ इस प्रयोग से संबद्ध थे बारीकी से जांच की। सारे सामान का पूरी तरह निर्भरणीय होना बहुत ज़रूरी था। कारण, उसी के सहारे, उसे कन्दरा में दो महीने गुज़ारने थे।

दो महीने के कंदरावास की तैयारी सिफरे ने बहुत पहले से कर रखी थी। लेकिन, जब वास्तव में उसने अपने दोनों साथियों के साथ भूमि के अन्दर प्रवेश किया, तो उसे लग रहा था कि वह वास्तविक जगत में नहीं, सपनों की दुनिया में है। सीढ़ी के सहारे, भूमि के अंदर कुछ मीटर नीचे जाते ही, उसे पता लग गया था कि वह एक आदमी नहीं रहा है, यंत्र-मानव बन गया है। जब उसकी घड़ी उससे ली गयी, ताकि प्रयोगावस्था में इसे किसी समयमापक यंत्र से समय का यथार्थ ज्ञान न हो सके, तो उसने मन ही मन नोट किया कि वह सोलह जुलाई की दुपहर को दो बजे नीचे उतरा है।

०००

नीचे जाते समय, उसे और उसके
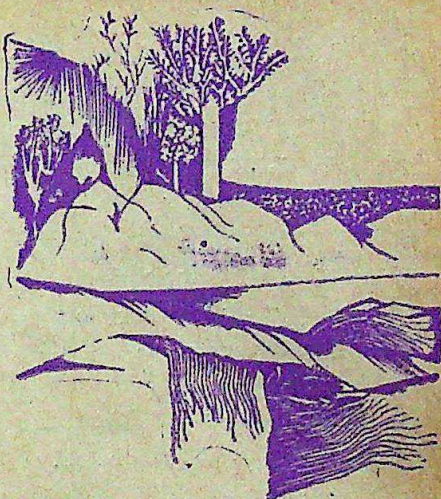
साथियों को एक छोटे से डरावने छेद से होकर गुज़रना पड़ा। इस छेद में रेंगते हुए, वे १०० फुट लंबे एक अंधेरे कक्ष में आये। यहां आकर, सूरज की रोशनी से सिफरे का साथ छूट गया। हाथों से छू-छूकर उसने जाना कि कक्ष की सब दीवारें बर्फ़ की बनी हैं। इस कक्ष से २६० फुट नीचे उतर कर, वह १३० फुट लंबे एक कक्ष में पहुंचा। यह उसकी भूगर्भ-यात्रा का अंतिम पड़ाव था, क्योंकि ठीक इसी के नीचे वह हिमानी कन्दरा थी, जिसमें उसे अगले दो महीने बिताने थे।

और, अंत में जब वह इस हिमानी कंदरा में पहुंचा, तो उसने पाया कि उसके हाथ-पांव जमते जा रहे हैं। फ्लैशलाइट की रोशनी में उसने देखा, कन्दरा की दीवारें लाल-लाल नज़र आ रही थीं। अपना खेमा गाड़कर, उसने उसमें से देखा

कि हिम की छत से लटके अनेक हिम-खण्ड कभी भी नीचे गिरने की स्थिति में थे। एक और डरावनी बात उसे यह मालूम हुई कि उसके पास आग बुझाने का कोई साधन न था। हैण्डलैम्प कभी खेमे में जला रह गया, तो सारे खेमे को भस्म होते देर नहीं लगेगी। खेमे में दो टेलिफोन भी लगे थे, जिनकी मदद से वह ऊपर के लोगों से बातचीत कर सकता था, और उन्हें अपनी रपट दे सकता था।

हिमानी कन्दरा में ठंड इतनी ज़्यादा थी कि सांस फौरन जल-कणों के रूप में उनके कपड़ों पर बिखर जाती थी। संज्ञा-शून्य करने वाली सर्दी थी वहां।

कन्दरा में जाने से पूर्व, उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपनी डायरी में हर रोज़ की घटनाओं का वर्णन ब्यौरेवार लिखेगा। लेकिन, धूप के अभाव में उसे पता नहीं लग पाता था कि दिन कब ख़त्म हुआ, और रात कब शुरू हुई। दूसरे—जब वह कुछ लिखने बैठता था, तो उसे बीती घटनाओं की याद नहीं रहती थी। उसका अधिकांश समय सोने में ही बीतता था, और उसे अपना दिन, अर्थात् वह समय जब वह जागृतावस्था में होता था, बड़ा छोटा लगता था। उसकी स्मृति, धीरे-धीरे, इतनी क्षीण हो गयी थी कि उसने कई मिनट पहले क्या किया है, यह भी याद नहीं रहता था। शीत-निष्क्रियता के कारण, उसका मस्तिष्क भी धीरे-धीरे निष्क्रिय होता जा रहा था।

कुछ दिन ऐसी स्थिति में रहने के बाद, उसे काल बड़ी तेज़ी से गुज़रता प्रतीत होने लगा। जिस दिन उसका प्रयोग पूरा हुआ, उस दिन १७ सितंबर तारीख थी, लेकिन उसने २० अगस्त तारीख लिखी थी। वर्तमान उस पर इस बुरी तरह हावी था कि उसे न भूत का होश था, न भविष्य का। उसे अपने आसपास की सब वस्तुएं, हिम, अंधेरा, नमी सब शत्रु जान पड़ते। अपने आत्म-बल के कारण ही, वह इन 'शत्रुओं' से निर्भय रह पाता, और दो महीने तक अंधेरी हिमानी कन्दरा में रह पाया।

जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, उसके लिए जागना और बिस्तर से उठकर कोई काम करना बड़ा कष्टकर प्रतीत होने लगा। आंख खोलते ही, उसे निपट अंधकार और हड्डियों तक को सुन्न कर देने वाली सर्दी का सामना करना पड़ता। जब नींद न आती, तो वह टेलिफोन से ऊपरवालों को अपने जागने की सूचना दे देता। सोने से पहले और खाना खाने से पहले, उसके लिए टेलिफोन करना अनिवार्य था। ऊपर वाले उसके बहुत अनुनय-विनय करने पर भी उसे असली तिथि और समय नहीं बताते थे, तथा उसकी दिनचर्या के घंटों की मिलान वास्तविक समय के घंटों से करते रहते थे। इस मिलान से उन्हें पता चलता रहता था कि सिफरे को कब और किस सीमा तक कालभ्रम हुआ है।

०००

धीरे-धीरे, सिफरे के जीवन में वैसी ही

मंद जैविकीय रवानी आ गयी, जो शारीरिक निष्क्रियता के कारण, लंबी अंतरिक्ष यात्राएं करने वाले अंतरिक्ष-यात्रियों के जीवन में भविष्य में आ जाया करेगी। फिर भी, उसने दृढ़ आत्मसंयम द्वारा सब आवश्यक दैनिक कार्य करना, और उनकी सूचना ऊपर वालों को देना जारी रखा। यदि वह ऐसे आत्मसंयम से काम न लेता, तो अपनी कहानी सुनाने के लिए जीवित न रह पाता। उसकी निष्क्रियता का यह हाल था कि कपड़े पहनना, पानी गरम करना, गरम चाय पीना तक उसे अत्यन्त दुष्कर कार्य प्रतीत होते।

प्रायः किसी गंभीर आशंका की संभावना, सांप की कुंडली की भांति उसके मन में घुमड़ने लगती। एक बार एक ग्लेशियर का निरीक्षण करते हुए उसे लगा कि वह भी ग्लेशियर के साथ बहकर अगाध गर्त में समाने वाला ही है। जमे चट्टानी खण्ड सीधे उसकी ओर बहे चले आ रहे हैं, ऐसी आशंका तो उसे न जाने कितनी बार हुई होगी। लेकिन, हर बार उसके आत्मसंयम ने उसे बचाया।

एक सप्ताह बाद, उसकी भूख इतनी कम हो गयी थी कि थोड़ी-सी किशमिश चबाते ही उसे नींद आन लगती थी। वह आलसी और कामचोर भी बनता जा रहा था। जब उसे बहुत कमज़ोरी महसूस होती, तो वह भूख की ख़ातिर नहीं, सिर्फ़ ज़िन्दा रहने की ख़ातिर खाना शुरू कर देता था।

सतत गीलेपन के कारण, उसके शरीर का तापमान साधारण से बहुत कम रहने लगा था। प्रयोग के बाद भी कई दिनों तक उसके शरीर का तापमान साधारण से बहुत कम था। उसके अंग-संचालन की रफ्तार भी बहुत कम हो गयी थी। तथा उसे यह भी अनुभव होने लगा था कि वह बहुत कम सुनने लगा है, और कम देख सकता है। उसकी आंखों में भैंगापन भी हो गया था, जो कंदरा से बाहर आने पर अपने आप ही कम हो गया था।

सौभाग्य से सिफरे को कंदरा में रहते समय, 'क्लास्टरफोबिया' (एकांत-भय) की कोई शिकायत नहीं हुई, हालांकि प्रयोग के अंतिम दिनों में उसे चक्कर आने की शिकायत रहने लगी थी। इन चक्करों की वजह से, वह दो बार, मरने से बाल-बाल बचा। दो महीने के कंदरावास में उसे यह अनुभूति भी बार-बार हुई कि उसके विचारों और उसके मन के बाहर किसी वस्तु या प्राणी का अस्तित्व नहीं है। कभी-कभी उसका व्यवहार पागलों जैसा भी हो जाता था, पर वह शीघ्र ही अपने ऊपर संयम पा लेता था। एक बार, पागलों जैसे मूड में वह घंटों तक नाचता रहा था।

०००

भले ही, उसके मूड बदलते रहते थे, पर जिस अनुसंधान कार्य के लिए उसे भेजा गया था, उसके लिए वह हमेशा वक्त निकाल लेता था। उन्हीं दिनों, उसने अपनी डायरी में लिखा था, 'कन्दरा में अपने जीवन का

(शेषांश पृष्ठ ९६ पर)

विश्वकर्मा जयन्ती के अवसर पर :

देव - शिल्पी भगवान विश्वकर्मा

☐ भारती शर्मा

○○○

शिल्पियों के देवता श्री विश्वकर्मा को 'विश्वकर्मा परब्रह्म जगदाधार मूलक' कहकर परब्रह्म और जगत् का आधार माना गया है।

हमारे धर्म ग्रंथों के अनुसार विश्वकर्मा परमात्मा हैं, ऋषि हैं, तथा लोक-हितार्थ समस्त शिल्पकलाओं को प्रकाश में लाने वाले हमारे आदि-पुरुष हैं। प्रस्तुत है— उनका संक्षिप्त परिचय तथा उनसे संबंधित रोचक विवरण।

○○○

हर वर्ष १७ सितम्बर को, राष्ट्रीय स्तर पर, देव-शिल्पी भगवान विश्वकर्मा की जयंती बड़े धूमधाम से मनायी जाती है। यह जयंती हमें उन विश्वकर्मा, सृष्टिकर्त्ता एवं देवाधिदेव की याद दिलाती है, जिनकी पूजा व आराधना सभी देवी देवताओं व पुराणों ने परमात्मा के रूप में की है।

वेदों में विश्वकर्मा को सूक्त द्रष्टा (ऋ. १०.८१.४.) कहा गया है। ऋग्वेद मंडल के १० अ. ६. सूक्त ८१, मंत्र १ से ७ तक, तथा मंडल १० अ. ६, सूक्त ८२, मंत्र १ से ७ तक के द्रष्टा विश्वकर्मा ही माने जाते हैं। सामवेद में भी ७ अर्धमण्डल १ उत्तराधिक प्रकरण के १६ वें अध्याय की नवीं ऋचा में विश्वकर्मा के अवतरित होने की प्रार्थना की गयी है। यजुर्वेद में उत्तर विंशति अध्याय ३१, मंत्र १७ में पृथ्वी की रचना के निमित्त विश्वकर्मा देव को दिव्य शक्तियों के रूप में माना गया है। अथर्ववेद, प्रथम खंड, कांड २ के ३५ वें सूक्त के ऋषि अंगिरा हैं, जिनके देवता विश्वकर्मा ही हैं। इसी वेद के खंड, ८ कांड ३ के ११२ वें सूक्त के भी देवता विश्वकर्मा और ऋषि भृगु हैं।

वेदों ने 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो, विश्वतोवाहुरुत विश्वतस्यात्' कहकर भगवान विश्वकर्मा की सर्वश्रेष्ठता, सर्व सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता को स्वीकार और प्रदर्शित किया है।

सृष्टि की रचना

शास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट है कि भगवान विश्वकर्मा शिल्पविज्ञान के आदि प्रवर्तक और निर्माण-कार्यों के देवता हैं।

सारी सृष्टि की रचना का श्रेय भी उन्हें ही दिया जाता है।

महाभारत में उनके जन्म के विषय में कहा गया है.

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी।
योगसक्ता जगत्कृत्स्नमसक्ता विचचार ह।
प्रभासस्य तु भार्या सा वसूनामष्टमस्य च।।'

(बृहस्पति की बहिन महिलाओं में श्रेष्ठ तथा ब्रह्मवादिनी थीं। वे योग में तत्पर हो समस्त जगत में अनासक्त भाव से विचरती रहती थीं। वे अष्टम वसु प्रभास की धर्मपत्नी थीं।) शिल्पकर्म के विधाता, महाभाग विश्वकर्मा प्रभास और ब्रह्मवादिनी के पुत्र थे। (विश्वकर्मामहाभागो जज्ञे शिल्प प्रजापतिः कर्त्ता शिल्प सहस्त्राणां त्रिदशाचां च वर्धकि : . . .)।

पद्मपुराण में भगवान विश्वकर्मा और भगवान विष्णु में कोई भी अंतर नहीं माना गया है (विष्णुश्च विश्वकर्मा चनभिद्येते परस्परम्)। विष्णुपुराण में उन्हें बृहस्पति का अवतार माना गया है (वाचस्पति विश्वकर्माऽभ्यभदिति)। वशिष्ठपुराण में विश्वकर्मा को समस्त जगत् का मूलाधार माना गया है (विश्वकर्मा पर ब्रह्म जगदाधार मूलकः)

जिन अन्य धर्म-ग्रंथों में भगवान विश्वकर्मा को विश्वनियन्ता, विराट विष्णु, शिव, त्वष्टा, नारायण, कश्यप, प्रजापति, वाचस्पति, हिरण्यगर्भ, विश्वम्भर, शिल्पाचार्य एवं जगद्गुरु कहा गया है, वे हैं—स्कंद पुराण, वायु पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मांड पुराण, मत्स्य पुराण, शिव पुराण, अग्नि पुराण, लिंग पुराण, वाराह पुराण, श्रीमद्भागवत महापुराण, तथा महाभारत, गीता और रामायण।

इन ग्रंथों में आदि-श्रमिक, सहस्रों शिल्पों का निर्माण करने वाले, सब प्रकार के आभूषणों को बनाने वाले श्रेष्ठतम शिल्पकार विश्वकर्मा के विषय में अत्यन्त रोचक विवरण पढ़ने को मिलता है।

एक विवरण के अनुसार, स्वर्ग के देवताओं के लिए असंख्य प्रकार के अलौकिक विमानों की रचना करने वाले विश्वकर्मा ही थे।

महाभारत में कहा गया है कि शिल्पकला के परमाचार्य विश्वकर्मा से शिल्पकला का प्रशिक्षण प्राप्त कर शिल्पी मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।

दानव नहीं देवता

कुछ लोग भ्रमवश विश्वकर्मा को राक्षस वंशज मानते हैं, कृष्णययुर्वेद में आये एक उल्लेख के आधार पर। किन्तु इसी ग्रंथ में अष्टक १, प्रश्न ६, अनु. ८ के मंत्र और भाष्यम् में यज्ञ-निर्माण-कर्त्ता श्री विश्वकर्मा को ही माना है। ('दशो यज्ञायुध यज्ञकर्त्ता श्री मद्विश्वकर्मा)।

वास्तुकला के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'समरांगण सूत्रधार' में उसके लेखक श्री भोजदेव शिल्पियों के देवता श्री विश्वकर्मा का परिचय इन शब्दों में देते हैं :

'तद्देश त्रिदशाचार्यः सर्वसिद्धि प्रवर्त्तकः।
सुतःप्रभासस्य विभो स्वस्त्रियश्च बृहस्पते।।

स्कंदपुराण के प्रभास खंड ७, अध्याय २१, श्लोक १६ के अनुसार, 'बृहस्पति ऋषि की बहिन भुवना अंगिरा ऋषि की पुत्री, और अष्टम वसु प्रभास की भार्या थीं। अष्टम वसु, प्रभास के पुत्र होकर भी माता भुवनी के नाम पर वे भौवन विश्वकर्मा के नाम से विख्यात हुए।

अतः, विश्वकर्मा ऋषि-कुल में ही जन्मे थे, यही सत्य है। इतना ही नहीं, वे अनेक वैदिक मंत्रों के द्रष्टा भी माने जाते हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद मंडल १०, अध्याय ६, सूक्त ८१, मंत्र १ से लेकर ७ तक, तथा मंडल १०, अध्याय ६, सूक्त ८२, मंत्र १ से लेकर ७ तक के द्रष्टा होने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। वस्तुतः, इन सूक्तों को 'ऋग्वेदीय विश्वकर्मा सूक्तम्' ही कहा जाता है।

एक पुराण-कथा के अनुसार, जब सत्ययुग में एक बार देवाचार्य बृहस्पति इन्द्र से लड़कर स्वर्गलोक छोड़कर चले गये थे, तो उनके स्थान पर विश्वकर्मा के पुत्र विश्वरूप को प्रतिष्ठापित किया गया था। यदि विश्वकर्मा बृहस्पति के समान ऋषि कुल के न होते, तो उनके पुत्र को देवताओं के यज्ञ-कर्म का पौरोहित्य-कार्य क्यों सौंपा जाता?

विश्वकर्मा-परिवार

वायुपुराण के अनुसार, श्री विश्वकर्मा का एक विवाह भक्त प्रह्लाद की पुत्री-प्राह्लादी या विरोचना से भी हुआ था यही प्राह्लादी विश्वरूप की माता थीं।

विश्वकर्मा के अन्य पांच पुत्र मनु, मय, त्वष्टा, शिल्पी और विश्वज्ञ के नाम से प्रसिद्ध थे। ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि विश्वकर्मा ने अपनी योग-शक्ति से वृत्राचार्य नामक एक पुत्र को भी जन्म दिया था।

मनु लौहशिल्प के आचार्य थे। उनकी संतान लोहार के रूप में विख्यात हुई मय चूंकि काष्ठशिल्प के जानकार थे, अतः उनकी संतान बढ़ई हुई। त्वष्टा ताम्रधातु में निपुण थे, इसलिए उनकी संतान ठठेरे कहलायी। शिल्पी पाषाण-शिल्प में प्रवीण थे, इसलिए उनकी संतान को संगतराश के नाम से जाना गया। विश्वज्ञ या देवज्ञ स्वर्णधातु के कलाकार थे, अतः उनकी संतान स्वर्णकार कहलायी।

स्कंदपुराण के अनुसार, मनु का विवाह अंगिरस की पुत्री कांचना से, मय का पाराशर की पुत्री सुलोचना से, त्वष्टा का कौशिक मुनि की पुत्री जयन्ती से, शिल्पी का भृगुमुनि की पुत्री करुणा से और विश्वज्ञ (देवण) का जैमिनी मुनि की पुत्री चन्द्रिका से हुआ था।

पांच पुत्रों के अतिरिक्त, विश्वकर्मा के संज्ञा नाम की पुत्री भी थी। संज्ञा का विवाह सूर्य के साथ हुआ था। संज्ञा ने वैवस्वत मनु, यम और यमुना नामक तीन संतानों का जन्म दिया। संज्ञा के छाया-रूप से सावर्ण मनु और शनैश्चर उत्पन्न हुए, और अश्वारूप से अश्विनी कुमारों ने जन्म लिया।

शल्पज्ञों का आदर

अतीत काल से ही, हमारे राष्ट्र की प्रगति में शिल्पियों का योगदान बड़ा उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण रहा है। इसी कारण हमारे देश में सदा से शिल्पज्ञों का आदर होता आया है। शिल्पज्ञों का किसी भी स्थिति में अनादर न हो, इस संबंध में 'विश्वकर्म शिल्प' नामक पुस्तक में साफ़ कहा गया है :

'प्रीतिश्चेत्स्थपतिदेवां प्रीता भवन्ति नित्यशः।
अन्यथा राजराष्ट्रस्य विनाशं भवति ध्रुवः॥

(शिल्पी का अनादर करने वाले राज्य और राष्ट्र का नाश सुनिश्चित है।)

राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के दौरान, गुरु वसिष्ठ ने घोषणा की थी कि 'यज्ञकर्म में संलग्न इन शिल्पीगण की भी विशेष रूप से प्रतिष्ठा होनी चाहिए। (वाल्मीकि रामायण, बालकांड सर्ग १३, श्लोक १४)

महाभारत-काल में इन्द्रप्रस्थ के निर्माण के बाद, वहां शिल्पज्ञ वेदविज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ ही रहते थे, क्योंकि वे 'युगवरेण्य थे' और चारों वर्णों के बीच सम्मानीय स्थान प्राप्त हुआ था।

इन शिल्पज्ञों के वर्तमान वंशजों का समुचित आदर करना, और उन्हें पूरा सम्मान देना हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि शिल्पज्ञ आज राष्ट्र-निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। **('पांचजन्य' में प्रकाशित एक लेख पर आधारित)**

□

(पृष्ठ ६४ का शेषांश)

शुरू करने से पहले मैं घुटनों के बल बैठ कर, झुक कर, प्रार्थना भी करता था . . . लेकिन अब मुझे लिखने से ही नफ़रत हो गयी है . . .' (उन्होंने टाइपराइटर का इस्तेमाल शुरू कर दिया था)

अंधविश्वास ? उन्होंने बताया था : 'मैं पूर्णिमा के चंद्रमा के प्रति शंकालु हो उठा हूं। साथ ही ९ का अंक मुझसे चिपककर रह गया है, हालांकि लोग कहते हैं मेरे जैसे मीन राशि वाले व्यक्ति का शुभ अंक ७ होना चाहिये; लेकिन मैं हर रोज़ नौ भूमिस्पर्श करने की कोशिश करता हूं; मेरा मतलब है, मैं गुसलखाने में, एक स्लीपर पर, सिर के बल खड़ा हो जाता हूं और पैरों की अंगुलियों से फर्श को छूता हूं संतुलन बनाये रखकर, यह योग से भी बड़ी चीज़ है, एक तरह का खेल-संबंधी कारनामा है . . . मेरा मतलब है, इसके बाद मुझे कोई 'असंतुलित' कहने की जुर्रत करके तो देखे ! सच बताऊं तो मुझे लगता है मेरा दिमाग़ गुम हो रहा है। सो एक और 'अनुष्ठान' आपकी नज़र में : मैं जीसस से प्रार्थना करता रहता हूं कि वह मुझे पागल होने से बचाये रहे, मेरी ऊर्जा को बनाये रखे, ताकि मैं अपने परिवार की सहायता कर सकूं . . .'

—एन ४/१३ सुंदर नगर, एस. वी. रोड, मालाड (वेस्ट), बंबई-६४

□

(पृष्ठ ९१ का शेषांश)

निर्माता मैं स्वयं था। फिर भी मुझे अनुभव होता था कि पृथ्वी की गहराइयों ने अन्य वस्तुओं के साथ-साथ, शायद काल और स्थान-दिक्काल भी शायद एक समय जम जाते हैं।'

उसे कन्दरा की गहराइयों में जितने अनुसंधान करने को कहा गया था, जितने नमूने जमा करने को कहा गया था, वे सभी उसने प्रयोग के अंत तक पूरे करके दिखाये। इसके लिए उसे कई बार अपनी जान हथेली पर रखकर और नीचे की ओर संकरी गुफाओं में से गुज़र कर, ४२५ फुट नीचे तक की यात्रा करनी पड़ी थी। पर शेष समय, असह्य ठंड और नमी में जीवित रहने के प्रयास में ही गुज़र जाता था। उसकी डायरी को पढ़कर, पता चल जाता है कि उसने अपना समय कैसी भयावह मनःस्थितियों के बीच व्यतीत किया होगा। डायरी के कुछ अंश इस प्रकार हैं:

(१) 'शिला-खंडों के कई मिनट तक तेज़ी से गिरते रहने के कारण, मैं कांप कर रह गया। सौभाग्य से टेलिफोन के तार सुरक्षित थे। अपनी अरक्षित अवस्था देखकर मुझे डर लगने लगा है।'

(२) 'प्रकाश की घोर कमी और एकांतता की वजह से मुझे दिन छोटे लगने लगे हैं, और मुझे दिनों और घंटों का सही अनुमान नहीं हो पाता। मेरे अनुमान से आज १३ अगस्त होनी चाहिये। (उस दिन वास्तव में १३ नहीं, २१ अगस्त थी।)

(३) '१७ अगस्त (वास्तव में, उस दिन ९ सितंबर थी): सुबह के नौ बजे होंगे (उस समय, वास्तव में, रात के आठ बजे थे)। मेरे दिमाग़ में विचार बड़ी तेजी से आते हैं, लेकिन मैं उन्हें क्रमबद्ध नहीं कर पाता।'

(४) 'मेरी सबसे प्रिय इच्छा क्या है? जीने की, जीने की, जीने की। यह लिखते समय, मेरा सारा शरीर सूजन और दर्द से बुरी तरह परेशान है, फिर भी मेरी जीने की इच्छा क़ायम है। मौत का खयाल अक्सर मन में आता है, मगर मैं उसे प्रयत्न-पूर्वक मन से ढकेल देता हूं। निपट मौन, जो आरंभ में बड़ा रुचिकर लगता था, अब बड़ा हृदयवेधक बन गया है।'

(५) 'आज ग्लेशियर से खेमे की ओर लौटते समय, एक विशाल हिमखंड ठीक मेरे पास आकर गिरा। मैं बाल बाल बचा।'

'मेरे प्रयोग का अंतिम दिन है, और मुझे प्रसन्नता है कि भाग्य ने मेरा साथ दिया, और मैं अभी तक जीवित हूं। मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि मेरे प्रयोग से विज्ञानियों को मानव की सहन-शक्ति की नयी सीमाओं का पता चलेगा और यह भी पता चलेगा कि पाताल की अगाध गहराइयों में रहने के लिए, उसे अपनी आदतों में कैसे-कैसे परिवर्तन करने होंगे।'

□

प्रभा भटनागर का वैज्ञानिक लेख

□

खोज अभी जारी है

आत्मा की ऊर्ध्व यात्रा को अपनी खुली आंखों देखने वाली बालिका अभी उम्र के उस दौर से गुज़र रही थी, जबकि लड़कियां घरौंदों, गुड़ियों से खेलने और झूला झूलने में मस्त रहती हैं।

अपनी इस अति मानवीय विकास की पहली सीढ़ी पर क़दम रखा ही था तब श्रीमां ने, और तब से अब तक आत्मोन्नति की अनुल्लंघनीय कितनी सीढ़ियां वे तय कर चुकी हैं, इसका लेखा-जोखा रखना सहज है क्या?

यह उनकी महती उपलब्धि थी। साथ ही परा-मनोविज्ञान के खोजियों के लिए उनके अनुभवों की एक बहुमूल्य दस्तावेज़ भी है, जो किसी साक्ष्य की मोहताज नहीं होती।

पांडिचेरी के अरविंद आश्रम की संचालिका श्रीमां के अतींद्रिय अनुभवों की यह विकासोन्मुख पीठिका, परामनोवैज्ञानियों की मार्गदर्शिका भी है।

परत-दर-परत रहस्यों के आवरणों में आवर्त सृष्टि सुंदरी को निरावरण करने का प्रयास अनादिकाल से अनवरत चल रहा है। हज़ारों सिद्ध-साधक, ज्ञानी-विज्ञानी, योगी-मुनि, अपनी अनंत साधनाओं की पिटारी लेकर, बड़े रख-रखाव से, बड़े तामझाम से मैदान में उतरे, उस सृष्टि रूपसी को निरावरण करने के लिए, पर उस अजेय गर्विता की साड़ी की एकाध भांज खोलते-खोलते ही हार मान बैठे। उसके एकछत्र राज्य की सीमा में 'प्रवेश निषिद्ध' की तख़्ती लटकी देखकर भी कुछ दुःसाहसी लोगों ने घुसपैठ करनी चाही, तो उन्हें मुंह की खानी पड़ी। और अपने तंत्र-मंत्र, सिद्धि-साधना और ज्ञान-

विज्ञान की पोटली समेटे वापिस लौट आये।

पर, अगर सृष्टि अजेय है, तो मानव भी अपराजेय है। आदमी और प्रकृति की यह छेड़छाड़ सनातन है। सृष्टि यदि निर्वस्त्र नहीं होना चाहती, तो मानव भी कब हारकर बैठने वाला है? यह ब्रह्म और माया का द्वंद्व है। पुरुष ब्रह्म है और सृष्टि माया। तो पुरुष का पौरुष नारी की आदिम दंभता को जीतने के लिए कटिबद्ध है। अब यह और बात है कि इस सनातन खोज में ब्रह्मा के अनेक संवत्सर लग जायें। पर मन्वंतर सो-सोकर जागेंगे... जागेंगे।

परामनोविज्ञान, अब विज्ञान जगत में बहुचर्चित विषय बन चुका है। इस पर पश्चिमी देशों के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने जमकर खोज शुरू कर दी है।

इधर हमारे देश में भी, अपने सनातनी तरीकों से, यानी योगाभ्यास, ज्ञान-ध्यान, वेद-शास्त्रों के अध्ययन-मनन और चिंतन द्वारा खोजें हो रही हैं।

पर कभी कोई निर्णयात्मक उपलब्धि किसी को भी हासिल नहीं हुई है। यह सच है कि अतीत में पूर्व ने बहुत कुछ उपलब्ध किया था। ऋद्धि-सिद्धि, जप-तप, वेदों के पठन-पाठन और मंत्र - तंत्र की आवृत्तियों द्वारा बहुत अर्जित किया था। पर वे सब विगत की चीजें थीं, और वे अब सुलभ भी नहीं हैं।

इस सर्वथा वैज्ञानिक युग में जो कुछ भी हो रहा है, वह विशुद्ध वैज्ञानिक ढंग से हो रहा है। क्योंकि विकसित देशों के पास साधन, अर्थ, समय, लगन और जानने का आकुल-आग्रह सभी कुछ प्रर्याप्त मात्रा में है। उनके पास सर्वोत्तम लैबोरेटरियां हैं। विशिष्ट प्रतिभा संपन्न वैज्ञानिक हैं, और काम करने की अदम्य इच्छा शक्ति और उत्साह भी है।

इस तरह जुटकर काम करने से यह लगने लगा है कि वे लोग इस परामनोविज्ञान के वर्जित प्रदेश में घुसपैठ करने में आगे बढ़ने लगे हैं।

परकाया प्रवेश के सिद्धांत पर रोशनी डालते हुए परामनोविज्ञान-वेत्ता प्रो. मुलडोन ने अपनी पुस्तक 'द प्रोजेक्शन आफ़ एस्ट्रल बाडी' में लिखा है कि एक रजत तंतु से आत्मा अपने स्थूल शरीर से जुड़ी रहकर भी अन्यत्र किस प्रकार जा सकती है और क्या-क्या कर सकती है।

सन १९४४ में जब मनोविज्ञान-वेत्ता कार्ल जुंग को भयानक दिल का दौरा पड़ा और वे आक्सिजन और कपूर के इंजेक्शनों के सहारे जी रहे थे, तब उस वक्त के अपने अनुभव बताते हुए उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े उन्हें एकाएक ऐसा लगा कि जैसे वे हजारों मील ऊपर उड़ रहे हैं और अधर में लटके हैं। वे खुद को इतना हल्का महसूस कर रहे थे कि वे किसी भी दिशा में इच्छानुसार जा सकते थे। उन्हों ऊपर से ही येरुशलम नगर देखा और

बहुत-सी चीज़ें देखीं।

इसके बाद वे अपने स्थूल शरीर में वापस आ गये। पर अब उन्हें अपना स्वयं बहुत हल्का लग रहा था। कार्ल जुंग स्वीकारते हैं कि इसके बाद से उन्होंने खुद को बहुत बदला हुआ महसूस किया। मरणोत्तर काल की इस अद्भुत अलौकिक अनुभूति ने उनके मन से मृत्यु-भय दूर कर दिया, और सारे शारीरिक कष्ट से भय-मुक्त कर दिया।

सृष्टि के साथ मानव की यह छेड़-छाड़ अपने खुद के तईं जानने की अदम्य जुगुप्सा है। हम क्या हैं? क्यों हैं? कहां से आये हैं? शरीररूपी भारी लबादे को लपेटे, हम किसके इंगित पर जी रहे हैं? हमारे अंदर कौन बोल रहा है, खा रहा है, पी रहा है, सो रहा है, जाग रहा है? ये सारी क्रियाएं-प्रक्रियाएं किसके संकेत पर हो रही हैं? कौन है जो हमारे अंदर जी रहा है? और कौन है जो मर जायेगा? इस जीवनरूपी सक्रिय कठपुतली की डोर किन अदृश्य हाथों में है?

यह सब क्या है? और क्यों है? ऐसे सवालों का एक बेपनाह लंबा सिलसिला है और इन सवालों की सलीब पर मानव मन की डोर जब-तब उलझती रही है।

यों हमारे ऋषि-मुनियों ने; सिद्ध-साधकों ने, अपनी अखंड साधना और तपस्या से इसे जानना चाहा है। जाना भी है। समझा भी है। पर फिर भी प्याज की परतों की तरह इसकी तहें अभी तक नहीं खुली हैं। खुलेंगी भी कि नहीं, कौन जाने?

इस युग के वैज्ञानिकों ने काफी शोध किया है और निरंतर कर रहे हैं। डाक्टरों की मान्यताओं के अनुसार मानव शरीर कोशिकाओं का समूह है। इन हज़ारों, लाखों कोशिकाओं में एक तरह का लिस-लिसा चिकना पदार्थ प्रवाहित होता रहता है, जिसे डाक्टर प्रोटोप्लाज़्म कहते हैं। यह प्रोटोप्लाज़्म ही जीवन-अमृत है। प्राणवायु है। इसमें एक तरह का तरल पदार्थ न्यूक्लियस होता है। वैज्ञानिक इसे ही जीवन का आधार मानते हैं। नयी कोशिकाएं बनाने की क्षमता प्रोटो-प्लाज़्म की न्यूक्लियस में ही होती है। जब यह न्यूक्लियस निर्बल होने लगता है, तो प्रोटोप्लाज़्म भी सूखने लगाता है और फिर प्रोटोप्लाज़्म की कमी से मूल चेतना गायब हो जाती है।

पर यह मूल संचेतना कहां जाती है, यह अभी वैज्ञानिक नहीं जान सके हैं। उनकी मान्यता है कि शायद मृत्यु के समय शरीरस्थ प्रोटोप्लाज़्म से शरीर विलग हो जाता है, और राख-मिट्टी बनकर वनस्पतियों, पेड़ों, पौधों में पहुंच जाता है और उनमें वह सन्निहित रहता है।

बहुत से बच्चों में अपने पूर्वजन्म की घटनाओं के जाग्रत होने का श्रेय भी किसी विशेष प्रोटोप्लाज़्म को है। इस तरह यह माना गया है कि मृत्यु या जन्म प्रोटोप्लाज़्म का होता है, आत्मा का नहीं। पर आत्मा

संबंधी खोजें इधर वैज्ञानिकों को अपने पूर्वाग्रह को बदलने को बाध्य कर रही हैं।

आत्मा के रहस्यों को जानने के लिए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक विलियम मैंड्रेगल ने एक विशेष प्रकार की तराजू आविष्कृत की है। विलियम मैंड्रेगल की इस अजीबो-गरीब तराज़ू द्वारा पलंग पर पड़े बीमार व्यक्ति के ग्राम के हज़ारवें हिस्से तक का वज़न लिया जा सकता है। उस पर एक मरणासन्न रोगी को लिटाया गया। कपड़ों सहित उसके फेफड़ों का और सांसों का माप लिया। रोगी का वज़न और औषधियों का भी माप लिया।

रोगी जब तक जीता रहा, सुई एक निर्दिष्ट स्थान पर टिकी रही। पर उसकी मृत्यु होते ही सुई एक हल्के से झटके से पीछे हटी, और टिक गयी। यह एक औंस यानी आधा छटांक वज़न कम बता रही थी। कई रोगियों पर इसका प्रयोग किया गया और एक चौथाई से डेढ़ औंस तक वज़न में कमी पायी गयी। मैंड्रगल ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि शरीर में स्थित कोई सूक्ष्म तत्व जीवन का मूल आधार है।

पर यह सूक्ष्म तत्व क्या है, यह अभी भी अज्ञात है। डा. गेटस ने एक प्रकार की किरण की खोज की है, जो कालापन लिये लाल बनफशई रंग की है। इस किरण का प्रकाश आदमी अपनी आंखों से नहीं देख सकता, पर दीवार पर रोडापसिन नामक पदार्थ का लेप करके उस पर इन किरणों को फेंका गया तो उनका रंग बदल गया।

उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि य किरणें, लकड़ी, हड्डी, पत्थर आदि वस्तुओं को पार कर सकती हैं और चमकती हैं, लेकिन अगर कोई आदमी बीच में आये तो उसकी छाया बीच में दीखेगी यानी वे किरणें जीवंत शरीर नहीं भेद सकतीं।

इन किरणों को उन्होंने तुरंत मरे हुए पशुओं की आंखों से हासिल किया। एक मरणासन्न चूहे को गिलास में रख कर ये किरणें फेंकी गयीं। दीवार पर उस चूहे की छाया पड़ी, पर चूहे का प्राणांत होते ही, वह किरण लपककर गिलास से निकली और मसाला लगी दीवार पर टिक गयी। फिर वह क्षणांश में ऊपर की ओर लपकी और ग़ायब हो गयी।

अब दीवार पर चूहे की छाया नहीं थी यानी मृत शरीर उन किरणों के लिए अब पारदर्शी नहीं था। परीक्षा के समय उस प्रयोगशाला में दो प्राध्यापक भी मौजूद थे। उन्होंने भी मृत्यु-क्षण में छाया को ऊपर-नीचे जाते व लुप्त होते देखा।

डा. गेटस अब इस बात की खोज कर रहे हैं कि छाया शरीर से जब निकलती है तो लुप्त होने के बीच के समय में, उसमें ज्ञान रहता है कि नहीं। चूहा जीवित हालत में इन किरणों के लिए पारदर्शी क्यों नहीं था। इसका उत्तर पाने के लिए डा. गेटस ने गैलवानो मीटर से उन किरणों की शक्ति तथा मानवीय देह में संचालित विद्युत तरंगों को माप कर बताया कि

शरीरस्थ बिजली अधिक शक्तिवान है।

जीवित अवस्था में शारीरिक विद्युत प्रवाह तेज़ होने से ये किरणें शरीर से टकराकर लौट जाती हैं, शारीरिक विद्युत प्रवाह उन्हें धकेल देता है, पर मरने के बाद कोई बाधा न होने से वही किरणें शरीर को भेद जाती हैं।

इस तरह उनके मतानुसार शरीर की विद्युत शक्ति ही, आत्मा की प्रकाश शक्ति है। वैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया निरंतर गतिशील है। अपनी शोध साधना में संलग्न ये महर्षिगण इस तरह के प्रयोगों के लिए अपने प्रियजनों को माध्यम बनाने में भी संकोच नहीं करते। अपनी ध्येय-पूर्ति के लिए वे माध्यम का मोह भी त्याग देते हैं।

फ्रांस के डा. हेनरी वाराडुक ने अपनी मरणासन्न पत्नी और बच्चे पर प्रयोग कर मृत्यु के फोटो लिये; तो उन्हें कुछ रहस्यमयी किरणों के चित्र प्राप्त हुए।

डा. एफ. एम. स्ट्रा ने तो इस तरह के सार्वजनिक प्रदर्शन भी किये, जिसमें अख़बारी प्रतिनिधियों ने भी चित्र लिये और इस तरह की रहस्यमयी किरणों की जानकारी हासिल की।

अमरीका में विलसा क्लाउड चैंबर द्वारा आत्मा के अस्तित्व संबंधी अनेक प्रयोग किये गये हैं। यह चैंबर एक खोखला पारदर्शी सिलेंडर होता है, जिसकी अंदरूनी हवा निकाल दी जाती है और रासायनिक घोल पोत देते हैं। सिलेंडर में इससे मंद प्रकाश पूर्ण कोहरा छा जाता। इस कोहरे में से यदि एक भी इलेक्ट्रान गुज़रे तो उसकी फ़ोटो फिट किये गये कैमरों में आ जाती है। इस चैंबर में जीवित चूहे और मेढ़कों को रखकर बिजली के करेंट से उन्हें प्राणहीन किया गया और पाया कि मरने के बाद उनकी हूबहू आकृति उस रासायनिक कुहरे में तैर रही थी। उस आकृति की गतिविधियां संबंधित प्राणी के जीवन-काल की गतिविधियों के अनुरूप ही होती हैं। धीरे-धीरे यह सत्ता धुंधली हो जाती है और कैमरे की पकड़ से बाहर हो जाती है और फिर धीरे-धीरे अदृश्य हो जाती है।

लंदन के प्रसिद्ध डा. डब्ल्यू. जे. किल्लर ने एक पुस्तक 'द ह्युमन एटमास्फ़ियर' में लिखा है, कि भौतिक विज्ञान को अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों से जूझना है। उन्होंने इन तथ्यों को गिनाकर भौतिक शास्त्रियों को इनकी चुनौती स्वीकारने को कहा है।

एक तथ्य यह है कि डा. किल्लर ने एक दिन सेंट जैम्स अस्पताल में रोगियों का परीक्षण करते हुए खुर्दबीन पर एक दुर्लभ रासायनिक रंग के धब्बे देखे। यह रंग कहां से आया, वे इसकी खोज में जुट पड़े। दूसरे दिन इसी रासायनिक रंग की लहरें उन्होंने एक रोगी की जांच करते समय शीशे में देखीं तो वे चौंक पड़े। उन्होंने रोगी के कपड़े उतरवा दिये, फिर देखा कि छह-सात इंच की परिधि में वे लहरें एक आभा मंडल बनाये हुए हैं। निश्चित ही

वे किरणें किसी शारीरिक रोग के कारण तो हो नहीं सकतीं । धीरे-धीरे प्रकाश मंडल लुप्त हो रहा था । डा. किल्लर सतर्क हो गये । रोगी मरणासन्न था । जैसे-जैसे प्रकाश किरण मंद पड़ रही थी, रोगी शिथिल हो रहा था । सहसा वह प्रकाश लुप्त हो गया । डा. किल्लर चकित रह गये । रोगी मर चुका था ! और अब कोई भी रासायनिक रंग उसके आसपास नहीं था ।

१९४४ में सोवियत भौतिकविद व्ही. एम. ग्रिश्चेन्को ने पहली बार पदार्थ की पंचम 'जैव प्लाज़्मा' की खोज की । इससे पहले के वैज्ञानिक लोग विज्ञान पदार्थ की चार अवस्थाएं ही मानते थे—ठोस, द्रव, गैस और प्लाज़्मा । प्लाज़्मा बाह्य अंतरिक्ष में ही विद्यमान है, पर भौतिकी प्रयोगशालाओं में उन्हें, अत्युच्च तापमान पर उत्पादित किया जा सकता है ।

प्रो. ग्रिश्चेन्को के अनुसार जैव प्लाज़्मा में इयांस, स्वतंत्र इलेक्ट्रोन, और स्वतंत्र प्रोटान होते हैं, जो नाभिक से स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं । ये तीव्र संचालक हैं और दूसरे जीवधारियों, या अवयवों में शक्ति संचारण, रूपांतरण व संवहन में सक्षम होते हैं । यह व्यक्ति की सुषुम्ना नाड़ी और मस्तिष्क में इकट्ठा रहता है । वह दूरियों को तीव्रता से लांघ सकता है और यों टैलीपैथी, मनोवैज्ञानिक और मनोगति की प्रक्रियाओं से जुड़ा है ।

इस अनुसंधान के बाद सोवियत रूस में विज्ञान ने तेज़ी से इस क्षेत्र में प्रगति की है । अपने प्रयोगों के दौरान रूसियों ने अत्यधिक विकसित उपकरणों का प्रयोग किया । ऊंची वोल्टेज़ वाली फोटोग्राफ़ी प्रक्रिया, जिसमें इलेक्ट्रोनिक माईस्कोप भी शामिल है । क्लोज़ सर्किट, टेलीविज़न और मोशन पिक्चर टेकनीक का उपयोग—जिसे एस. डी. कीर्लियन, और वी. के. कीर्लियन ने विकसित किया है । रेडियेशन-फ़ील्ड फोटोग्राफ़ी को रूसी लोग 'कीर्लियन औरा' कहते हैं । इसके द्वारा प्रो. ग्रिश्चेन्को की वायोप्लाज़्मा व उसके भारतीय समतुल्य 'सूक्ष्म शरीर' तथा उसमें व्याप्त, प्राण-आवरण की अवतारणाओं की पुष्टि होती है । इस तरह अज्ञात ईथर तत्त्व के जगत में वैज्ञानिकों द्वारा यह बहुत महत्वपूर्ण खोज है ।

सोवियत रूस के प्रसिद्ध अंतरिक्ष केंद्र के पास कज़ाकिस्तान राज्य विश्वविद्यालय की जैव विज्ञान प्रयोगशाला में उसके निर्देशक डा. व्ही. एम. ईन्यूशिन पी-एच. डी. ने अपने एक शोधपत्र में कहा है, कि उच्चस्तरीय विशेषीकृत, तथा क्लिष्ट विधियों के द्वारा अत्युच्च संवेदना वाली कीर्लियन फोटोग्राफिक प्रक्रियाओं द्वारा पहले ख़रगोश और बाद में मनुष्यों के फ़ोटोग्राफ़ लिये जाने पर सोवियत वैज्ञानिक, वायोप्लाज़्मा तथा शरीर के चारों ओर उसकी परिव्याप्ति की फोटो लेने में सफल रहे हैं । कीर्लियन फोटोग्राफ़ी से पता चलता है कि जैवीय प्रकाश का कारण जैव-

प्लाज़्मा ही है। इनका आकार होता है और इनमें ध्रुवीय छोर होते हैं। प्रयोगों से प्रमाणित होता है कि प्लाज़्मा मस्तिष्क में सर्वाधिक सघन है। १. सुषुम्ना नाड़ी और उसकी स्नायविक कोशिकाएं वायो-प्लाज़्मा गतिविधियों का केंद्र हैं। २. यह उंगलियों के छोर तथा सूर्यचक्र की पीठ में सर्वाधिक सुदृढ़ होते हैं। ३. रक्त की तुलना में स्नायुओं के केंद्र में प्लाज़्मा ज़्यादा होता है।

डा. ईन्सुशिन कहते हैं, कि अपनी प्रयोगशाला में हमने लगातार प्रयोग किये हैं कि क्या वायो-प्लाज़्मा (प्राण-शक्ति) का वास्तव में अस्तित्व है? हम जानते हैं कि हर जीवधारी के पास एक शक्ति वितरण करने वाली प्रणाली है, जो अपने चारों ओर एक क्षेत्र जिसे हम सूक्ष्म शरीर भी कह सकते हैं, तैयार करती है।

जर्मनी के एक अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. विलहेमरीच भी प्राण-शरीर के अस्तित्व में भारतीय सिद्धांत का मानवीय देह की एक प्रतिकृति के अस्तित्व के रूप में समर्थन करते हैं। वे इसे 'आर्गोन' या एक जैव विद्युतीय शक्ति कहकर इसका परिचय देते हैं।

इस तरह देखा जाये तो परामनोविज्ञान पर विकसित देशों के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों ने अपनी समृद्ध और सुनियोजित प्रयोग-शालाओं में काफ़ी काम किया है। इन कुछ दशकों में ही इस पर उनकी गहरी अभि-रुचि से यह लगने लगा है कि शायद मानव अब आत्मा के रहस्यमय और सुदृढ़ दुर्ग को ढहाने की कगार तक पहुंच रहा है, और शायद नयी शताब्दि अपने साथ, इस खामोश तह को उघारने का सेहरा बांध कर ही आये। इस सागर-मंथन में कौन-कौन से रत्न उपलब्ध हों, यह कौन जान सकता है?

पर अभी तो इसके साथ अक्सर कुछ अगर-मगर जुड़े चल रहे हैं। हर बार गहरी डुबकी लगाने के बाद भी खोजियों के हाथ से कोई सूत्र छूट जाता है और यही सूत्र एक नयी शंका, एक अभेद्य पत्थर की दीवार को जन्म देता है। यह मील का पत्थर बन जाता है। मंजिल दूर होती लगने लगती है।

प्रयास जारी है, पर सफलता कितनी दूर है यह एक विकट प्रश्न है। पथ दुरूह है, यात्रा निरापद भी नहीं है और उसका सरलीकरण या सहजीकरण पूरी मानवता के लिए चुनौती बना हुआ है। चुनौतियों से जूझना है और सफ़लता के लिए जूझते चलना है।

०००

पृथ्वी के आकर्षण तत्व को प्रथम बार निरूपित करने वाले, सुप्रसिद्ध वैज्ञा-निक न्यूटन ने एक बार कहा था, कि ज़िंदगी भर इस महासागर के तट पर बैठ कर कंकर ही चुने। एकाध कंकर फेंककर इस महोदधि के अगाध जल को यदि पल भर के लिए उद्वेलित कर ही लिया तो, इसका यह मतलब तो नहीं कि हमने

सागर की अथाह गहराई माप ली।

पुनर्जन्म को तो भारतीय दर्शन में सदा से ही मान्यता प्राप्त है इस पर हमारी पूर्ण आस्था और अटूट विश्वास ने, हमारे पश्चिमी बंधुओं को इसके प्रति निष्ठावान और विश्वासी बनाया है। परकाया प्रवेश भी भारत के लिए कोई अजूबा चीज़ नहीं कही जा सकती। हमारे अनेकों पौराणिक आख्यान इसके जीवंत साक्षी हैं।

तो परामनोविज्ञान और परकाया प्रवेश का क्षेत्र अलग-अलग है। परा-मनोविज्ञान एक जानकारी है। उन सब चीज़ों के लिए एक गहरी खोज है, जिन्हें अभी तक मानव मस्तिष्क सुलझा नहीं पाया है। सृष्टि का, जीवन का एक अजाना अबूझ प्रदेश, जहां घुसने की तीव्र जिजीविषा लिये, विज्ञान के महारथी जुटे हुए हैं।

और परकाया प्रवेश, एक सिद्धि है, एक उपलब्धि है... पर, फिर यह सवाल अपनी जगह पर ही खड़ा है, कि हमारे अंदर कौन है, आत्मा क्या है? जी कौन रहा है, और मरता कौन है? जब आत्मा अमर है और शरीर नश्वर है, तो मृत्यु किसकी हुई? शरीर जो नाशवान है वह तो हमारे सामने पड़ा ही है। क्या शरीर की मृत्यु हुई? पर जो वस्तु नाशवान है, उसका नाश तो सुनिश्चित है ही, फिर उसके लिए इतना आडंबर क्यों?

आत्मा के निकल जाने से ही तो शरीर का निधन माना गया तो न तो आत्मा मरी न शरीर मरा...बस दोनों एक दूसरे से विलग हो गये।

फिर आत्मा, अशरीरी आत्मा कहां गयी? कौन-सा वह लोक है, जहां इन अशरीरी आत्माओं का निवास है? मृत्यु के बाद, और जन्म से पूर्व के बीच के समय में आत्मा कहां ठहरती है? क्या उसकी यह महायात्रा निरंतर चलती रहती है? क्या सचमुच ही चौरासी लाख योनियों में उसे भटकना पड़ता है? तो फिर यह भटकाव तो आत्मा का हुआ, शरीर जो मात्र माध्यम है, आत्मा का घर है, उसका भटकाव कहां हुआ?

फिर हमसे यह क्यों कहा जाता है कि अच्छे काम करो, ताकि भवबंधन कटें। बंधन किसके कटेंगे आत्मा के या शरीर के?

आत्मा को तो स्वयं शुद्ध-बुद्ध कहा गया है। वह निर्लेप है, निर्विकार है, अवध्य है। जो अजर-अमर है, शुद्ध-बुद्ध है, पावन है वह कैसे भवबंधन में फंस सकती है? अच्छे या बुरे कर्म कर सकती है? वह तो कर्म करती ही नहीं। और शरीर जो अच्छे-बुरे काम करता है, वह तो इसी धरती की माटी में मिल जाने वाला है। तो फिर कर्म का भोग्य कौन है?

एक सवाल और। हमें क्या यह नहीं बताया जाता (होश सम्हालने के साथ ही हमारा क्या एक अदृश्य शक्ति से साक्षात्कार करके यह नहीं समझाया जाता) कि इस धरती पर जो कुछ हो रहा है वह सब ईश्वरेच्छा से हो रहा है। उसकी इच्छा

के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। तो जब हमें कर्म करने का अधिकार ही नहीं है, तो फिर दंड हमें क्यों मिलता है? उसी अदृश्य शक्ति ने, तथाकथित ईश्वर ने हमसे, यह या वह, अच्छे या बुरे, जो भी हों काम करवाये हैं, तो फिर इन कर्मों के कर्त्ता हम कैसे हो गये? कठपुतली को नचानेवाला क्या उन्हें भी, उनके इस या उस काम के लिए दंडित करता है? जब कठपुतलियों को उसने अपनी मरज़ी के मुताबिक ही नचाया, तो अपराध की सज़ा वे क्यों भोगें? वे अपराधी हैं ही कहां?

वैसे ही तो हम भी उस नचानेवाले के हाथ की कठपुतली हैं? फिर... सवाल-दर-सवाल... उलझनें-दर-उलझनें और इतनी पेचीदगियां कि ग्रंथि सुलझती ही नहीं, बल्कि आदमी इनको सुलझाते-सुलझाते स्वयं उलझ जाता है।

फिर अपनी अक्ल की संदूकची तो वैसे भी ख़ाली है, उसमें कुछ भी क्या आने वाला है? पर ये सवाल अपनी जगह बिल्कुल ही अहमियत नहीं रखते, या एकदम बेमानी हैं, ऐसी बात भी नहीं है। इनका वजूद तो है ही।

बहरहाल यह चर्चा यहीं रहे। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान, मूर्धन्य वैज्ञानिक और चोटी के पंडितगण इस ग्रंथि को सुलझाने में लगे पड़े हैं। फिर बुद्धि के उस विशाल समूह में अपनी आवाज़ समंदर की लहरियों में एक लघु क्षणिकामात्र ही रहेगी...।

यहां यदि, एक दो प्रसंगों का उल्लेख भी कर लिया जाये, यद्यपि ये प्रसंग एकदम अप्रासंगिक नहीं हैं।

इस संदर्भ में एक दो घटनाएं याद आ रही हैं। तब बहुत छोटी थी मैं। हमारी एक मौसी थीं। लखनऊ के मौलवीगंज मोहल्ले में रहती थीं।

एक बार वे बहुत बीमार हुईं। उन्हें प्रसूत का रोग हो गया था।

यह वह युग था, जब न तो नारी को आज की तरह परिवार में इतने अधिकार या इतनी सुख-सुविधाएं मिली हुई थीं और न तब हमारी मेडिकल साइंस इतनी समुन्नत हुई थी। औरत अपने प्रसवकाल की दुरूह यात्रा, गंदी कोठरियों में, फटे-पुराने जीर्ण-शीर्ण बिछौनों में, और उससे भी अधिक गंदी दाई के साथ पूरी करती थी।

तो एक रात उनकी मृत्यु हो गयी। परिजनों को रोते-बिलखते छोड़ वे चली गयीं। पर कुछ घंटों बाद उनके शव में कुछ हरकत-सी हुई और वे उठ बैठीं।

उन्होंने बताया कि उन्हें यमदूत जब यमराज के पास लेकर पहुंचे तब उन्होंने कहा कि 'अरे, तुम इसे क्यों ले आये? इसी नाम की दूसरी महिला को लाना था। जाओ, इसे छोड़ आओ। इसकी ज़िंदगी अभी पूरी नहीं हुई है। तुम ग़लत औरत को ले आये हो।'

मौसी ने कहा, कि उस वक्त वे उस दिव्य पुरुष के चरणों में लिपट गयीं और कहा कि 'प्रभु, आपने मुझे जीवनदान देकर बड़ी अनुकंपा की। मैं तो अपने छह महीने

के दूध पीते बच्चे को छोड़ कर यहां आयी हूं ?'

ख़ैर, तो उनकी आत्मा ने तो जीवन अनुदान में पाकर फिर उसी शरीर में प्रवेश कर लिया। उन्होंने, उस लोक की उस क्षणिक यात्रा का जो विवरण दिया, वह भी अपने में अद्‌भुत और अलौकिक था। उन्होंने कहा कि अलौकिक सौंदर्य और निःसर्ग की सुषमा से भरपूर था वह लोक और इतना प्रकाश था उस लोक में जैसे अनगिन सूर्य अपना अतुल अनंत प्रकाश फैलाये हों। उस लोक की सुषमा, सौंदर्य और अमित सुखद शीतलता अवर्णनीय है।

बहुत दिनों तक मौसी जीवित रहीं। मैंने भी उन्हें देखा था। बाद में वह सब कुछ भूल गयी थीं और सबसे दुखद बात तो यह हुई कि जिस पुत्र के लिए वे उस लोक से लौटी थीं, वही भरी जवानी में उन्हें छोड़कर चला गया था। और यों पति-पुत्र हीन एक भीषण और दुर्निवार जीवन-यात्रा उन्होंने पूरी की। ज़िंदगी भी उन्हें इतनी मिली कि जो अंतहीन लगने लगी थी।

अब प्रश्न यह है कि मृत्यु के कई घंटों बाद वे अपने उस पार्थिव शरीर के शव में प्रविष्ट हुई थीं, तो मौत और ज़िंदगी के इस मध्यांतर में आत्मा का गंतव्य स्थान कौन-सा था ? क्या वही अद्‌भुत अलौकिक अनाम लोक ? और वह कहां था, कितनी दूर था और उस लोक के विषय में मानव आज भी कल्पनाओं के जंगल में ही क्यों भटक रहा है ?

कहते हैं कि कुछ लोगों को अपनी मृत्यु का आभास पहले ही हो जाता है। हमारे नानाजी ने कई महीने पहले ही अपनी मृत्यु के विषय में बता दिया था। निश्चित दिन पर, गोधूलि वेला में उन्होंने मिट्टी-गोबर से ज़मीन लिपवाई और शीतलपाटी बिछाकर लेट गये। शोकाकुल विस्मित परिजनों से उन्होंने साग्रह शोक त्याग करने और गीता व रामायण पाठ करने को कहा।

रात अभी चार घड़ी ही गुज़री थी कि उन्होंने ज़ोर से पुकारा, 'गोविन्द (यह मेरे मामाजी का नाम था), मैं जा रहा हूं। देखो, मुझे लेने विमान आ गया है।'

उस समय वहां बैठे लोगों ने क्षणांश के अंदर एक प्रकाश पुंज का अनुभव किया। वह इतना तीव्र प्रकाश था कि उनकी आंखें चौंधिया गयी थीं। क्षणांश में वह प्रकाश का बृहत् पिण्ड लुप्त हो गया था, और उसी क्षण नानाजी भी अपनी महायात्रा के लिए विदा हो चुके थे।

तो यह सब क्या है ? अगर यह अद्‌भुत प्रकाश किरण वही है, जिसकी वैज्ञानिकों ने खोज कर ली है, तो क्या हम यह स्वीकार लें कि हम उस देश के आसपास पहुंचने की अपनी कोशिशों में सफल हो रहे हैं ?

वह देश, जो अभी तक अद्‌भुत रहस्यों से भरा है, जहां न जाने कितने लोग जाते रहे हैं अनंत काल से, अनादि काल से...

मानव की यह महायात्रा ज़ारी है।

बेहिसाब कष्टों से भरी यह जीवन-यात्रा, जिसमें जानेवाले कितनी आंखों के आंसू, कितने दिलों का असह्य दर्द लेकर चले गये हैं, माओं को बिलखते छोड़कर उनके बच्चे... पत्नियों को वैधव्य की आग में झोंककर उनके पति ... ओह यह एक बेहद दर्द-ग़म से भरा, आंसुओं के सैलाब में डूबा इतिहास है! कौन इसे पढ़े, कौन लिखे?

कहते हैं जानेवाले वापस आते हैं। पर कहां? ज़िंदगियों की किताब में जाने-वालों का हिसाब ही लिखा देखा है, आने वालों का लेखा तो किसी ने कभी देखा-सुना नहीं। (**'अखंड ज्योति' के सौजन्य से**) –१८/२० कस्तूरबा गांधी मार्ग, दिल्ली-१

□

मातृवत्

रामकृष्ण परमहंस से एक बार उनके एक परिचित ने पूछा–'महाराज, आप अपनी पत्नी के साथ गृहस्थ जीवन क्यों नहीं बिताते?'

प्रश्न सुनकर परमहंस कुछ पल चुप रहे, फिर मुस्कराते हुए बोले कि तुमने कार्त्तिकेय का किस्सा सुना है? एक दिन बालक कार्त्तिकेय ने खेल-खेल में एक बिल्ली को नोच-खरोंच दिया। घर आये तो अपनी मां का मुख देखकर हैरान रह गया। मां के गालों पर नाखूनों की खरोंच के वैसे ही निशान पड़े थे। कार्त्तिकेय ने आश्चर्य से खरोंच का कारण पूछा तो मां बोली–'बेटा, यह तेरा ही कार्य है। तूने ही तो अपने नाखूनों से मुझे नोचा है।'

'मैंने नोचा है?' बालक कार्त्तिकेय का आश्चर्य और बढ़ा। अविश्वास के स्वर में बोला–'मैंने तुमको कब नोचा?'

'क्यों, भूल गया क्या? आज तूने बिल्ली को नोचा-खरोंचा नहीं था?'

'बिल्ली को तो ज़रूर नोचा था...' कार्त्तिकेय ने उसी स्वर में कहा–'लेकिन तुम्हारे गालों पर निशान कैसे पड़ गये?'

'अरे बेटा,' मां बोली–'मेरे सिवा इस संसार में और है ही कौन? सारा संसार मेरा ही स्वरूप है। यदि तू किसी को सताता है तो मुझे ही तो सताता है।'

कार्त्तिकेय से कुछ कहते न बना। निश्चय कर लिया उसने–मैं विवाह ही नहीं करूंगा। संसार की सब स्त्रियां जब मातृवत् हैं तो विवाह करूं भी किसके साथ?

रामकृष्ण ने इतना कहकर कारण बताया–'कार्त्तिकेय के समान मेरे लिए भी संसार की सारी स्त्रियां मेरी मां समान हैं। तुम्हीं बताओ, गृहस्थ जीवन किसके साथ बिताऊं?'

–शिशिर विक्रांत

□

अनुला वैद की हिन्दी कहानी

□

ग्रहों का चक्कर

अच्छी भली ज़िंदगी बीत रही थी। अगर कभी कोई चिंता हुई भी तो यह कि पेपर कैसा आयेगा, जांचते समय परीक्षक का मूड कैसा होगा। सो, बरसाती मेंढक की तरह परीक्षा के दिनों में भगवान के आगे दीपक जलाकर विनती होती, 'हे प्रभु ! हमारा पेपर करेक्ट करते समय उसे कोई ऐसी खुशखबरी दे देना कि वो पेपर में कम और अपने में ज़्यादा मशगूल हो और हमें नंबर दे दे।' उन दिनों सबसे प्रेम-भाव था, मस्ती थी, काम करो, पढ़ो-लिखो, खाओ-पियो, सो जाओ।

विवाह लायक हुई नहीं कि पता चला कि वृहस्पति देव से शुरू होकर एक-एक करके सब ग्रह बारी-बारी से आने शुरू हो गये। अब तक ये कहां बैठे थे, ये ही हैरानी थी !

तो शुरुआत हुई वृहस्पतिवार को पीली गाय के पूजन व आटे के पेड़े खिलाने से। और पीली गायें गायब ! मन करता था गाय तो गाय है, पीली हो या सफ़ेद, पर ताक़ीद थी कि नहीं, पीली ही होनी चाहिये। सो, मुंह-अंधेरे उठकर तलाश शुरू होती, मन ही मन मनाते हुए कि जल्दी मिल जाये, कोई देखे ना। खैर ! कुछ समय बाद हालत ये हो गयी कि पास-पड़ोस की सब पीली गायें पहचान की हो गयीं। अब जब किसी समय बाहर जाओ, पीली गायें प्रेम से दौड़ती चली आतीं चाटने। कहीं भी बाहर जाने से पहले चारों ओर चोर नज़र दौड़ानी पड़ती—कहीं पीली गाय तो नहीं है आस-पास।

पीली गाय का आशीर्वाद था या क्या—विवाह होना ही था, सो हो गया और साथ ही पंडितजी ने एक लोहे का कड़ा भी पहनने की ताकीद भी कर दी। कांच की चूड़ियां व सोने के कड़े के साथ लोहे का मेल कुछ जंचा नहीं, तो पूछ लिया—ऐसा क्यों ?' पता चला—शनि महाराज साढ़े सात साल को आ रहे हैं। पूछती—'क्या करेंगे ?' उत्तर मिला—'यूं ही ज़रा मानसिक अशांति, शरीर-कष्ट, कुछ सांसारिक झंझटें।' मन में सोचा—लो अब तो और सुख और मानसिक शांति मिलनी चाहिये थी, ये कबाब में हड्डी की तरह शनि महाराज इस बेवक्त आकर क्यों बुक कर गये अट्ठाईस साल की

उमर तक।

अपना कष्ट तो ज्यों-त्यों निकाल दिया जाता, पर पति के कष्ट में तो हर हिंदू नारी हर संभव उपाय करती है। सो, पति महोदय के पेट के दर्द का कारण डाक्टर न जान पाये, ज्योतिषी जान गये–'शिव प्रकोप है'। पर जब हमने कुछ किया हो तो। शनिवार को काले कुत्ते को रोटी व बंदरों को चने खिलाने का सुझाव दिया गया।

पड़ोसियों का 'ब्लैकी' जो लाख गेट बंद कर देने पर भी अपने जिमनास्टिक लोच द्वारा शरीर तोड़-मरोड़कर पतली सलाखों से निकलकर पूंछ हिलाता आ जाया करता था। अब हमारे मुस्कुराते चेहरे व स्वागत को देखकर सनक गया और ताज़ी रोटी पर असली घी सूंघकर भी हमें मुंह चिढ़ाता हुआ रोटी छोड़ भाग गया। बड़ी मुश्किल से वह रोटी ठिकाने लगाई।

ये उपाय छोड़ 'सप्तवार कथा' का सहारा लिया। पर उससे शनि महाराज के प्रति श्रद्धा उपजने के बजाय राजा विक्रमादित्य की बुद्धि पर तरस आने लगा। अरे, जब देवता लोग भी डिप्लोमेसी से सब ग्रहों में सर्वोपरि कौन है के निर्णय को टाल गये थे, तो उन्हें कौन-सी आफत आयी थी और करना ही था तो सबके आसन गोल घेरे में रख देते कि सभी अपने-अपने समय में सर्वोपरि हैं या अर्ध चंद्राकार रख देते–दोनों सिरे बराबर। पर ना, हमें कैसे पता चलता, ये तो भला हो विक्रमादित्य का कि उन्होंने ये कर तो लिया कि उन जैसा कष्ट किसी को न हो।
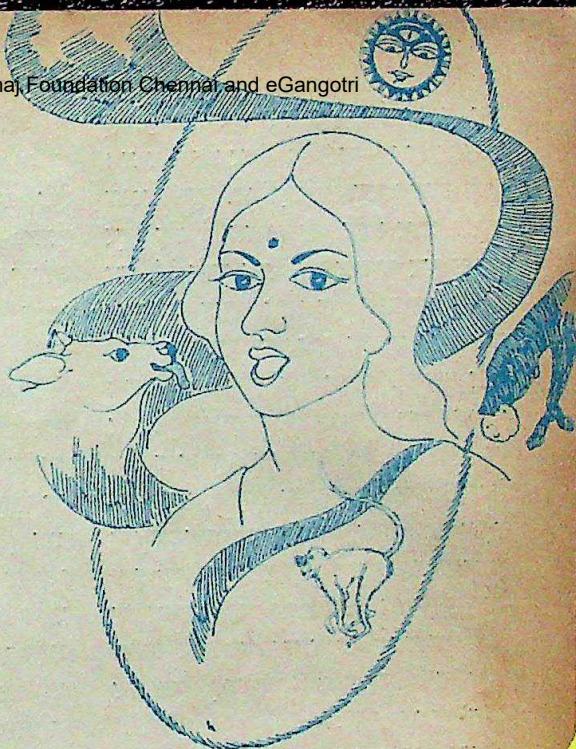
इसी बीच तबादला हो गया कलकत्ते का। नये घर में आते ही जो सूचना पहले पहल मिली, वो ये थी कि पीछे के दरवाज़े, खिड़कियां बंद रखें, एक बंदर अक्सर आ जाया करता है, स्त्रियों से नहीं डरता, खा-पीकर चला जाता है।

मन बल्लियों उछल गया। इसे कहते हैं 'उसकी कृपा'—घर बैठे बंदर मिल गया। सारे दिन दरवाज़े-खिड़कियां खुली रखी जातीं और दिल की हालत ये कि 'हर आहट पर समझी वो आय गयो रे', पर वो न आया। एक दिन सुबह अचानक अखबार की एक खबर पर नज़र पड़ी कि दिल धक्क! उक्त (हमारे) क्षेत्र में एक पागल बंदर ने उपद्रव मचा रखा है। उसे गोली मारने का आदेश दिया गया है। फिर, 'संकट से हनुमान छुड़ावैं, मन-क्रम-बचन ध्यान जो लावै' की, श्वास-प्रश्वास के साथ पाठ करते हुए झटपट खिड़कियां-दरवाज़े बंद जो किये, तो फिर न खोले। कितने ही पावर कट हुए, ऊमस भरी गर्मी हुई। पेट में चौदह इंजेक्शन कौन लगवायेगा?

पर खैर इतना तो कहना ही पड़ेगा कि शनि महाराज क्या आये, जैसे नेत्रों पर हाई पावर का चश्मा लग गया। सब कुछ इतनी बारीकी से नजर आने लगा कि हैरानी हुई कि अब तक कैसे सब ओर हरा ही हरा देखते रहे। जिनके लिए सब कुछ न्योछावर करो, वक्त आने पर कैसा दो टूक उत्तर देते हैं। शनि देव का धन्यवाद किया—आंखें खोल दीं—अब चैन से रहेंगे।

पर कहां, एक धमाका फिर हुआ। अब क्या हुआ? पता चला—राहु-केतु आये हैं। हद हो गयी, हमारे पीछे ही क्यों पड़े हैं?

ज्योतिषियों-पंडितों से आस्था उठ गयी। ये एक बारगी क्यों नहीं बता देते। ऐसे काम नहीं चलेगा—खुद ही कुछ करना होगा, सोचकर अगले महीने के बजट में ज्योतिष विज्ञान, एस्ट्रोलौजिकल जर्नल आदि खरीद डाले गये और स्व-अध्याय शुरू हुआ।

पहले तो कुछ समझ नहीं आया। फिर बारह राशियों की कुंडली-रूपी शतरंज बिछायी गयी और देखा कि जहां सब ग्रह क्लॉकवाईज़ चलते हैं—कोई ढाई साल एक राशि पर, कोई ढाई दिन आदि—वहीं पीछे से घेराव करते हुए एंटी क्लॉक-वाईज़ श्रीमान राहु व केतु आते हैं। फिर कोई सामने से सातवीं दृष्टि डालता है, कोई तीसरी, कोई चौथी, कोई आठवीं, कोई नौवीं इत्यादि। फिर ये कोई एक-दो साल के लिए नहीं, कई बड़े-बड़े महारथी अट्ठारह-अट्ठारह, उन्नीस-उन्नीस सालों के लिए भी महादशा के रूप में जम जाते हैं। बचो, कहां तक बचोगे।

....और ध्यान लगाया तो एक भेद और खुला—बारह की बारह राशियां जन्म-लग्न से किसी न किसी घर में होंगी ही। और सभी घर-लग्न से व हमसे किसी न किसी रूप में संबंधित हैं ही। इन ग्रहों को कहीं नहीं जाना—एक घर से उठकर दूसरे में चले जाना है। इसी तरह से सदा घूमेंगे, सो इनसे पिंड छूटने का सवाल नहीं। अब क्या किया जाये—कच्छ-मच्छों को राम नाम की आटे की

गोलियां, चिड़ियों को दाना, चींटियों को आटा डाला जाये, या प्रभु पर आस्था रख कर, जो होता है होने दो, भगवान सब ठीक करेंगे; इस पर विश्वास किया जाये।

अब की बार दूसरा विकल्प ठाना। भगवान ने कहा है मुझमें सब नक्षत्र ब्रह्मांड समाये हैं। जो सबका नियंता उसे ही पकड़ो।

शुद्ध स्थान में पवित्र तन-मन से, सुगंधित फूल, धूप, दीप से पूजन आरंभ किया ही था कि गुरु नानक ने जैसे काजी को मस्जिद में घोड़े बेंचते पाया था, हमने स्वयं को दाल पकाते पाया। आंखें बंद करके प्रभु का ध्यान किया ही था कि अंदर से आवाज़ आयी, 'दाल रख देती गैस पर तो पूजा करते-करते पक जाती।'

अगले दिन दाल सिम पर रखकर बैठी। फिर आंखें बंद कर श्रीविग्रह का ध्यान किया कि फिर आवाज़ आयी—दाल के उबाल से गैस बुझ गयी तो सारे घर में गैस फैल जायेगी। अब अगर ये आवाज़ दाल रखते समय आ जाती, तो क्या बिगड़ जाता। फिर कभी धोबी के आ जाने का भय, कभी पेपरवाले के निकल जाने की आशंका, नौकर द्वारा झाड़ू ठीक से न लगाने की चिंता।

'छोरत ग्रंथि जानि खगराया, विघन अनेक करइ तव माया' का ख्याल कर मन में ठान, कान बंद कर लिये—हर आवाज़ के प्रति। हमें नहीं बनानी दाल, उपवास रखेंगे। न लगे झाड़ू, न आये धोबी। आखिर बड़ी मुश्किल से मन शांत हुआ और रामायण तथा गीता का पाठ आरंभ हुआ।

संत-असंतों के भेद खुले और पहले पहल हमें स्वयं संत व सब असंत नज़र आये। एक बात पर जाकर निगाह टिक गयी कि—'स्वाभाविक संतोष के बिना सुख क्या कोई सपने में भी पा सकता है?' 'कामना ही सब दुःखों की जड़ है।' हमने सोचा, ये ही ठीक है। इसे ही उखाड़ो। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। पूरे दत्तचित्त होकर ईमानदारी से जुट गये।

तभी एक दिन अचानक एक महात्माजी द्वार पर आ गये। कुछ वार्तालाप के बाद बोले—'बोल, क्या चाहिये? मांग ले।'

वाह री किस्मत! जब तक एक लिस्ट, बना रखी थी कि ये-ये चाहिये, तो शनि, राहु, केतु, मंगल आये कि ले कैसे लेगी? अब लिस्ट गवां दी तो महात्माजी कहते हैं—'मांग, क्या चाहिये।' पर अब मैं इन बातों में आने वाली नहीं, सोचकर उनसे केवल आशीष ही लिया।

पर, ज़रा षड्यंत्र देखिये—जब संतोष पा लिया, तो चारों ओर से सुनने को मिलने लगा है—संतोष करके बैठ जाना उचित नहीं—संतोष मृत्यु है। आगे का रास्ता बंद—चाह नहीं रखोगे तो आगे कैसे बढ़ोगे।

सुना है शनि फिर ढाई साल को आ रहा है।

□

पुष्पारानी गर्ग का ललित निबन्ध

□

शिल्पी है जल

जी हां, जल आदि से अंत तक अपनी संपूर्ण यात्रा में शिल्पी ही तो है। एक अद्‌भुत शिल्पी ! जो अपनी हर लहर में कुछ न कुछ निर्माण करता ही रहता है। यदि कोई उसकी धारा के साथ ही गतिमान हो जाय तो फिर कहना ही क्या ! अब देखिये न, सामान्य सा पत्थर जल की धारा में बहता-बहता न जाने कितनी यात्रा तय कर लेता है और इधर जल अंदर ही अंदर बिना छेनी-हथौड़ी के अपनी शिल्पकला अनवरत चालू रखता है, और हम देखते हैं कि पत्थर का वह टुकड़ा एक आकर्षक शिवलिंग के रूप में ढल चुका है। कैसी मोहक कला है जो कृति और कृतिकार के अनजाने आकार ग्रहण कर लेती है और फिर हमारे बीच आकर फिर से कुछ निर्माण करने लगती है। इसमें आश्चर्य ही क्या जो नर्मदा के जल ने हर कंकड़ को शंकर बना दिया है। जब हम 'ॐ नमः शिवाय' कहकर उस लिंग को जलांजलि अर्पित करते हैं, तो वह हमारी अंतरात्मा में भी कुछ अपर-लोक की भव्यता का निर्माण करती है। हमारी वृत्तियों में कैसा आनंददायी विस्तार आ जाता है। हम श्रद्धा से जितना विनत होते हैं, जितना समर्पित होते हैं, हमारी आत्मा उतनी ही उन्नत होती है। चेतना के नवीन आयाम उन्मुक्त होने लगते है। कैसा शिल्प है यह जल का जो शिला की मूर्ति बनाता है और मन को मूर्तिवत् ढालता है।

यह जल शिल्पी ही तो है जिसने अपने मृदुल आघातों से कठोर शिला को कोमल बालुका बनाकर तट पर बिखरा दिया है। उस बालुका में केलि करते-करते अबोध बचपन कल्पनाओं के न जाने कितने महल निर्मित करता है। कौन कह सकता है कि वह कल्पना जब सत्य में आकार ग्रहण करेगी, तब अपने मौलिक रूप से अधिक भव्य एवं आकर्षक न होगी।

इस शिल्पी जल की महिमा का क्या वर्णन करें ! यह जल कल-कल निनाद करता जिधर से बह निकलता है, उधर ही कुछ न कुछ निर्माण करता चलता है। हमारे देवी-देवताओं को भी स्वर्ग से उतरकर इसकी मनोहारी लीलाभूमि में निवास करने की लालसा हो आती है। कितने तीर्थों का निर्माण किया है इस

जल ने, कुछ गिनती है इनकी! फिर भी हर तीर्थ स्वयं ही श्रद्धा-भक्ति का केंद्र बन गया है। इन तीर्थों ने बड़े-बड़े बीहड़ों को, निर्जन प्रदेशों को आबाद कर दिया है। व्यक्ति कोई भी हो, कैसा भी हो। ये सबके लिए समदर्शी है। इन तीर्थों पर देश की संस्कृति एक इंद्रधनुषी आभा लिये जैसे साकार हो उठती है। कोई सामान्य सा पर्व हो या कोई संक्रांति पर्व हो या पूरे बारह वर्षों के अंतराल के बाद पड़ने वाला कुंभ का पर्व हो, जल तो अपनी महिमा से स्वयं अनजान बहता ही रहता है। परंतु जब श्रद्धालुओं की भीड़ 'हर हर गंगेऽऽऽऽ या 'नर्मदेऽऽऽऽ हर' कहती हुई उस जल में गोता लगाती है तो सारा वातावरण उसी में लय हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो हर लहर भी उसी के साथ लयबद्ध होकर नृत्य कर रही है।

यह जल शिल्पी है तभी जो जलनिधि को रत्नाकर कहते हैं। अनंतानंत रत्नों का निर्माण किया है इस जल ने। तभी देवों और असुरों ने ललचाकर रत्नाकर का मंथन किया और उससे चौदह रत्न निकले जिनसे तीनों लोक समृद्ध हुए। उसके बाद भी क्या रत्नाकर ने रत्नों का दान बंद किया?

जल तो ऐसा शिल्पी है जो निर्माण कर देता ही रहता है। स्वाति की कितनी बूंदों को उसने मोती बना दिया, इसका कोई हिसाब है क्या! और जब वह अपने शिल्प में आप बूंद बनकर ढलता

चित्र : पवनकुमार जैन

है तब उसके सौंदर्य के क्या कहने! जब वह ओस की बूंद बनकर नन्ही दूब की किसी फुनगी पर पल भर को ठहर जाता है तो उसे देखकर भला कौन नहीं लुभाता! जल की वह ओस बनी हुई बूंद दूब पर ठहर कर सूर्य की किरणों को सात रंगों में नहलाती हो या पुष्प की पंखुड़ी पर ठहरकर मंद पवन के साथ नृत्य करती हो, उसका व्यक्तित्व ही निराला होता है। उसका आकर्षण क्या किसी रत्न से कम है?

जल की इस एक बूंद ने क्या नहीं किया! इसने कितने हृदयों को कवि बना दिया। सद्यःस्नाता राधा के केशों से टपकती जल की बूंदों ने परब्रह्म के अवतार श्रीकृष्ण को भी मोर बनकर उन्हें पान करने को विवश कर दिया। फिर कोई कवि यह कह उठे कि 'सिक्त कुंतल से झरते देवि, पिये हमने सीकर अनमोल' तो क्या आश्चर्य! उस सीकर का मोल कोई क्या बता सकता है जिसने स्वयं

मायापति को भी अपने सौंदर्य से मोहित कर लिया।

जल की वही बूंद जब आंसू बनकर ढलती है तो जैसे पत्थर भी मोम हो उठता है। कवि के कोमल हृदय की तो बात ही क्या? करुणा की एक बूंद एक महाकाव्य की सृष्टि कर सकती है। अब देखिये न! संगमरमर का बना ताजमहल जो महज़ एक खूबसूरत कब्र है, कवि को काल के गाल पर ठहरे, एक शुभ्र जलबिंदु के समान दिखायी देता है। वह कह उठता है–'कालेर कपोल तले, एक बिंदु अश्रुजल शुभ्र समुज्ज्वल एई ताजमहल।'

जल तो जल है। वह दूसरों को अपने शिल्प में ढालते-ढालते स्वयं दूसरों के शिल्प में ढल भी जाता है। कवि ने सच ही कहा है–'कदली सीप भुअंग मुख, एक बूंद तिहुं भाइ।' यह संगत की ही महिमा है कि दूध में मिलकर जल भी दूध बन जाता है। जल की महिमा को भला कौन नकार सकता है। वह जैसे स्वयं दूसरों के रंग में ढल जाता है, वैसे दूसरों को अपने रंग में ढाल भी लेता है। गंगा के जल में मिलकर हर जल गंगाजल बन जाता है। 'इक नदिया इक नार कहावत मैलौ नीर भरौ, जब मिलि कै दोउ एक बरन भये सुरसरि नाम परौ', यह कहकर कवि जल की महिमा का ही बखान करता है। धुआं जो स्वभाव से ही मनुष्य के लिए अत्यंत कष्टदायी है, इसी जल के सहयोग से सारी सृष्टि को जीवन देनेवाला बादल बन जाता है–'सोई जल अनल अनिल संघाता, होई जलद जग जीवन दाता।' जब वह धुआं जल के संयोग से बादल बनकर ऊपर उठता है और श्याम मेघ बनकर आकाश पर छा जाता है तो सारी धरती पर उल्लास छा जाता है। एक ओर वह धरती की प्यास बुझाता है तो दूसरी ओर धरती के अंक में समाकर कितनी ही वनस्पतियों की सृष्टि करता है। कैसा विनम्र शिल्पी है यह जल, जो अमित ऊंचाइयों तक उठकर फिर नीचे उतरता है और उतरता ही जाता है। और फिर, जिस प्रकार जीव ब्रह्म से निकलकर ब्रह्म ही में समा जाता है, उसी प्रकार वह सागर से उठकर सागर में ही समा जाता है।

जल तो बस आदि से अंत तक शिल्पी है। निर्माण ही उसका स्वभाव है, उसकी गति है। जब वह किसी सरोवर के बंध में बंधा भीतर ही भीतर लहराता रहता है, तब भी क्या उसका निर्माण कार्य बंद हो पाता है! सरोवर में प्रातः काल दिवाकर की प्रथम रश्मि का स्वागत करने को जब उसका कमल अपने पाटल खोलकर आकाशोन्मुख हो विहंस उठता है तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि स्वयं ज़ल-चेतना गतिमान होकर अपने ही बंधन से मुक्त होती हुई उस चैतन्य पुरुष के साथ एकाकार हो जाने को तत्पर है।

–द्वारा श्री राधेश्याम गर्ग, एडवोकेट, भंवर कुआ चौराहा, इंदौर, म. प्र.

□

महानगर : दो गीत

□ सूर्यभानु गुप्त

[१]

नाख़ूनों में दिन की पिनें।
कांधे पर रख सर कविताओं के;
दिन डूबे बैठ कर गिनें।

रात के भरे सपने
सुबह ने नगर-चक्की में,
दाल-से दले सपने।

पानी में भाषा के ,
उतराये चोई-से दुख मन के;
आंधी के आम-से बिनें
नाख़ूनों में दिन की पिनें...

दर्द का धुआं चेहरे,
कोहेनूर से महंगे हैं,
इन दिनों ज़हर मोहरे!

केसर के खेतों में,
डस-डस कर भोले खरगोशों को,
उलट–उलट खाये नागिनें
नाख़ूनों में दिन की पिनें...

○○○

[२]

चेहरों के स्कूल लगे हैं,
कंधों के सारे गमलों में
या कपास के
फूल लगे हैं!

आंखों में फैली कोसों तक,
ऐसी रेतीली वीरानी,
धूप उड़ा ले जाये जेठ की,
जैसे जमुनाजी का पानी।

बातों में,
सूनी नावों के ,
बैरागी मस्तूल लगे हैं!
चेहरों के स्कूल लगे हैं...

जड़ें अंधेरों में हाथों की,
दीप जलाये कैसे कोई,
यूं उदास सब, घर लौटे हों,
लाश फूंक कर जैसे कोई।

घर-घर,
मिट्टी के चूल्हे हैं,
चूल्हों पर महसूल लगे हैं
चेहरों के स्कूल लगे हैं...

—३३ सोजपाल काया बिल्डिंग, चन्दावरकर रोड, माटुंगा, बंबई-१९—

□

बरसानलाल चतुर्वेदी का व्यंग्य-लेख

□

'प' से पगड़ी

पुराने ज़माने में लोग सर पर पगड़ी पहनते थे। राजस्थान में अब भी पगड़ी पहनने का रिवाज़ है, किंतु पगड़ी पहनने वालों की संख्या कम हो गयी है। पहनने में बहुत समय लगता है। उसका कलात्मक रूप से बांधना हर एक के वश की बात नहीं है। एक पुरानी कहावत है: 'राग, रसोई, पागड़ी, कभी-कभी बंध जाय।'

बड़े से बड़े संगीतज्ञ कभी-कभी बेसुरे हो जाते हैं, बेताल हो जाते हैं, गृहविज्ञान में दक्ष गृहिणी ऐसी रसोई बना देती है जो बेस्वाद हो। इसी प्रकार अगर पहली बार में ही पगड़ी में कसावट आ गयी तो आ गयी वरना फिर कितनी बार बांधो, सुंदरता नहीं आ पायेगी।

समाचारपत्रों में प्रायः भ्रष्टाचारी नेता, तस्कर व्यापारी, रिश्वती अफसर आदि असामाजिक तत्वों की 'पगड़ी उछाली' जाती है। ये अलग बात है कि 'चिकना-गढ़ा-संस्कृति' के प्रचार-प्रसार के कारण 'पगड़ी उछालने' का कोई अनुकूल प्रभाव नहीं होता। पगड़ी सर पर पहनी जाती है क्योंकि वह व्यक्ति का सर्वोच्च भाग होता है। शायद 'पगड़ी का उछालना' किसी की इज्ज़त में धब्बा लगना रहा होगा। पहले तो पहनते ही नहीं और पहनते हैं तो उछलने की चिंता नहीं करते।

जब मूंछें हुआ करती थीं तो बदनामी होने पर लोग मूंछें नीची कर लिया करते थे। अब अधिकांश तो 'क्लीन शेव' रहते हैं, कुछ उनकी स्मृति-मात्र रखते हैं, कुछ अवश्य हैं जो मूंछों से प्रेम करते हैं और उनको सजा कर रखते हैं।

पगड़ी तथा मूंछ किसी ज़माने में कीर्ति के प्रतीक थे, अपकीर्ति होने का प्रभाव सबसे पहले इन पर दिखाई देता था। अर्जुन जब युद्धक्षेत्र में जाने से हिचकिचा रहे थे तो श्रीकृष्ण ने उन्हें यही समझाया था कि युद्ध न करने से उनकी अपकीर्ति होगी और अपकीर्ति मृत्यु से अधिक दुःखदायी है। तुलसीदासजी ने भी समाज द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति को मृत के समान माना है।

जैसे-जैसे हम अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत होते गये कीर्ति-अपकीर्ति, इज़्ज़त-बेइज़्ज़त, यश-अपयश के भेदभाव को ही मिटा डाला। आर्थिक दृष्टि से समाजवाद न

भी आया हो, किंतु ये छोटे-छोटे अंतर मिटा दिये गये।

लोग छोटी - मोटी बेइज़्ज़ती को 'माइन्ड' नहीं करते। बड़े लोग बड़े-बड़े स्कैंडलों' को हज़म कर जाते हैं। इतना, हाजमा बढ़ जाना राष्ट्रीय स्वास्थ्य के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करता है।

हां, तो बात पगड़ी की हो रही थी। युग बदला। पगड़ी देवी किराये के साथ जुड़ गयीं। मस्तक पर पहले ही थीं, किराये के मस्तक पर मुकुट बनकर बैठ गयीं। प्रयाग में गंगा, यमुना तथा सरस्वती की त्रिवेणी बहती है। गंगा और यमुना का जल तो पृथक-पृथक दृष्टि गोचर होता है किंतु सरस्वती दिखलाई नहीं देती। पगड़ी देवी भी इतनी पर्दा-नशी हैं कि दिखलाई नहीं पड़तीं। व्याकरण की दृष्टि से सामान्य संज्ञा होते हुए भी भाववाचक संज्ञा के रूप में रहती हैं। इनका वर्चस्व महानगरों में अधिक है। अनभिज्ञ व्यक्ति जो मकान या दुकान की तलाश में किराये के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है, किंतु किराये के साथ-साथ जब उसे पगड़ी की रकम बतायी जाती है तो उसका दिल 'राजधानी एक्सप्रेस' की गति से धड़कने लगता है।

चित्र : आर्. डी. पुरोहित

मृत्यु के बाद एक रस्म होती है, उसे 'चौथा' भी कहा जाता है तथा 'रस्म-पगड़ी' भी कहा जाता है। बंधु-बांधव जमा होते हैं तथा उत्तराधिकारी के पगड़ी बांधते हैं। ये करुणरस का प्रसंग है। मकानों, दुकानों की पगड़ी के लेन-देन में वीभत्स, अद्भुत और कहीं-कहीं रौद्र एवं वीररस की अनुभूतियां भी होती देखी गयी हैं। इन पगड़ियों में अंतर केवल इतना है कि जहां पहली 'रस्म-पगड़ी' मृत्यु के बाद बांधी जाती है दूसरी प्रकार की 'रस्म-पगड़ी' में देनेवाला जीवित अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और लेनेवाला तो माला-माल हो ही जाता है।

प्रेमी प्यार को ब्यौरेवार अपनी डायरी में नहीं लिखता। प्यार भी प्रायः गुप्तरूप से ही किया जाता है। पगड़ी की रकम खातों में नहीं डाली जाती। 'कलनेमि जिमि रावण राहू—उघरेहि अंत न होइ निबाहू।' जब पड़ता है छापा तब याद आते हैं 'पापा'!

—१३/७ शक्ति नगर, दिल्ली-७

□
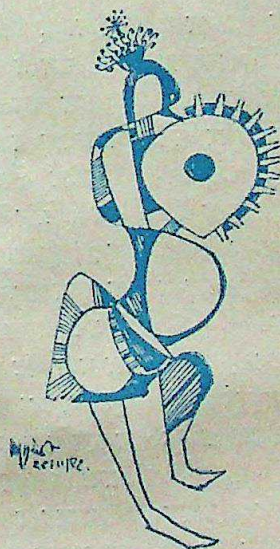
दृष्टि मिली : बिजली की कड़क से

अनिल ग्रोवर

उपेन्द्रनाथ राहा अंधे थे . . . मगर, बिजली की कड़क ने उन्हें पुनः खोयी दृष्टि प्रदान की ।

यदि आप हिंदी फिल्मों के शौक़ीन हैं तो आपने किसी न किसी हिंदी फिल्म में यह दृश्य अवश्य देखा होगा कि फिल्म के किसी अंधे पात्र को सीढ़ियों से गिर जाने या ऐसी ही किसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप, दृष्टि मिल गयी । ऐसे दृश्य देख कर आपको अवश्य हंसी आयी होगी, क्योंकि ऐसी चमत्कारिक घटनाएं आपको जीवन में देखने को नहीं मिलतीं ।

किंतु, ऐसी चमत्कारिक घटनाएं वास्तविक जीवन में सचमुच घटती रहती हैं, यद्यपि यह सच है कि उनकी संख्या अधिक नहीं होती ।

फालमाइथ (अमरीका) के एडविन राबिसन एक सड़क-दुर्घटना में अपनी दृष्टि खो बैठे थे । नौ वर्षों तक वे अंधे रहे । एक दिन, बिजली ज़ोर से चमककर, उन पर पड़ी, और एक चमत्कार हुआ . . ., उनकी दृष्टि वापस आ गयी । अमरीकी समाचारपत्रों ने इस समाचार को बड़ी प्रमुखता से प्रकाशित किया । जिस समय बिजली उन पर पड़ी थी, उस समय वे अपने घर के बाग़ में बैठे थे । डॉक्टरों का कहना है कि बिजली पड़ने के धक्के से उन्हें उनको दृष्टि वापस मिली ।

इस चमत्कार की वजह से राबिसन, रातोंरात यशस्वी व्यक्ति बन गये । उन्हें प्रतिदिन सैकड़ों पत्र और फोन मिलने लगे । टेलिविज़न स्टेशन उनसे भेंट करने लगे । हालीवुड के एक निर्माता ने राबिसन के चमत्कार को लेकर एक चलचित्र बनाने की घोषणा की । एक प्रमुख पत्र को दी गयी भेंट में राबिसन ने बताया, 'मुझे ऐसा लगता है, जैसे किसी ने मुझे अगले पचास वर्षों के लिए 'चार्ज' कर दिया है ।'

भारतीय वृद्ध को दृष्टि-लाभ

भारत में भी एक ऐसी ही चमत्कारिक घटना जून, १९८० में कलकत्ता में घटी । यद्यपि यह घटना जून में घटी थी, तथापि वह प्रकाश में एक महीने बाद आयी, क्योंकि जिस व्यक्ति के साथ यह घटना घटी थी, उसके रिश्तेदारों का पहले खयाल था कि यह चमत्कार अस्थायी है । लेकिन जब दृष्टि-लाभ स्थायी हो गया, तो उन्होंने उसकी सूचना समाचारपत्रों को दी ।

९४-वर्षीय उपेंद्रनाथ राहा, जिनकी

शुभ्र दाढ़ी टैगोर की दाढ़ी की याद दिलाती है, को १९६२ में दोनों आंखों में मोतियाबिंद की शिकायत महसूस हुई । उनकी बायीं आंख का आपरेशन जब कलकत्ता के एक अस्पताल में हुआ, तो डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी थी कि छह महीने बाद उन्हें दायीं आंख का आपरेशन भी करा लेना चाहिये ।

किंतु राहा ने दायीं आंख का आपरेशन नहीं कराया, क्योंकि वे प्लस ११ के लेंस से उस आंख से देख सकते थे । लेकिन, १९७५ के आरंभ तक दायीं आंख का मोतियाबिंद दुष्कर हो गया । उन्हें इस आंख से क्रमशः कम दिखायी देना आरंभ हो गया, और १९७५ के अंत तक उन्हें इस आंख से दीखना बिलकुल बंद हो गया ।

अब श्री राहा ने एक विशेष यौगिक मुद्रा का अभ्यास आरंभ किया, और उसमें भली भांति अभ्यस्त होकर, घंटों इसी मुद्रा में बैठे रहने लगे । ७ जून, १९८० को रात के नौ बजे के करीब, वे अपने घर के बाग में इसी मुद्रा में बैठे थे कि उन्हें बिजली की कड़क की ज़ोरदार आवाज़ सुनायी दी । इस कड़क से उन्हें अपने मस्तिष्क में एक ज़बर्दस्त धक्के का आघात अनुभव, और प्रायः चार मिनट तक उनका मस्तिष्क इस आघात से कम्पायमान होता रहा ।

प्रातःकाल का चमत्कार

इस आघात की समाप्ति पर उन्होंने
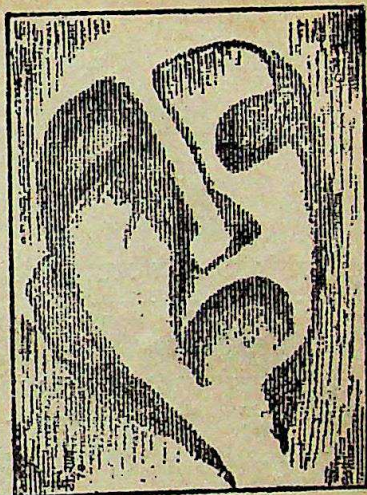
अपने को 'नॉर्मल' अनुभव किया, और रात का खाना खाकर सोने चले गये । मगर, अगले दिन जब वे उठे, तो उन्होंने अपनी चारों ओर की दुनिया को पहले से अधिक स्पष्ट और जगमग पाया । वे यह देखकर चकित रह गये कि वे अब दोनों आंखों से बिलकुल साफ़ देख सकते थे । पलंग की चादर का हरा रंग, और सामने के घर का पीला रंग उन्हें सुस्पष्ट नजर आ रहा था ।

उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था । उन्होंने आवाज देकर अपनी पत्नी को बुलाया । जब वह उनके सामने आकर खड़ी हुई, तो वे उसे देखते ही रह गये—चार वर्षों बाद, वे अपनी पत्नी का चेहरा और शरीर साफ़ देख रहे थे ।

(शेषांश पृष्ठ १२३ पर)

बौद्ध धर्म में देवियां

डा. अनुपमा वर्मा

बौद्ध धर्म के स्वरूप को देखते हुए उसमें देवियों की पूजा आश्चर्य की बात लगती है। परंतु तांत्रिक बौद्ध धर्म में देवियों का बड़ा महत्त्व है और उसके ग्रंथों में अनेक देवियों का वर्णन भी मिलता है। बौद्ध धर्म का जब प्रचार एवं प्रसार होने लगा तब उसकी भौगोलिक सीमा के विस्तार के साथ ही उसमें स्थानीय प्रचलित धार्मिक परंपराओं एवं मान्यताओं का समावेश होने लगा। महायान धर्म में यह बात बहुत अच्छी तरह से देखी जा सकती है। वास्तव में बौद्ध धर्म में देवियों के समावेश को बौद्ध धर्म के विकास की ऐतिहासिक परिणति समझना चाहिये।

जातक कथाओं में, जिनकी परंपरा ईसा पूर्व की शताब्दियों तक जाती है, इस विकास की प्रक्रिया देखी जा सकती है। इन कथाओं में मुख्य रूप से दिक्पाल देवियों, देव कन्याओं, अप्सराओं, किन्नरियों, नाग कन्याओं, यक्षणियों और प्रेतनियों का वर्णन मिलता है। अनेक देवियों के नामों का भी उल्लेख हुआ है—जैसे सुधम्मा, चित्रा, नंदा और सुजाता, तण्डा, आरति, रगा, सिरिकालकण्णी, असुर कन्या सुजा, समुद्र देवी मणिमेखला, नाग कन्या सुजना और इन्दरति, अप्सरा अलम्बुस, देव कन्या बहुसोदरी, किन्नरी रथावती, श्री देवी, आशा देवी, श्रद्धा देवी, ह्री देवी आदि। जातकों में कुछ ऐसी स्त्रियों के नाम भी मिलते हैं जो देवियों के नहीं हैं, किंतु कालान्तर में उनकी गणना देवियों में होने लगी। सिरिमा, प्रभावती, चंदा, पद्मा, चन्द्रा, नंदा, सुनन्दा, सुभद्रा, सुदर्शन आदि ऐसी ही देवियां हैं।
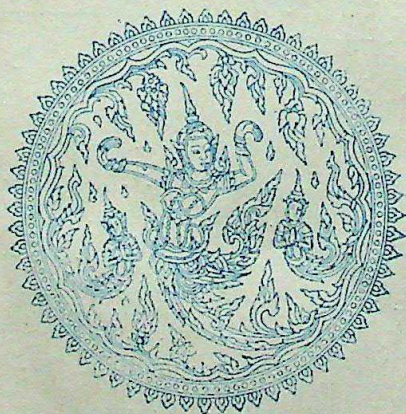
प्रारंभिक बौद्धकला में उपर्युक्त अनेक देवियों और अन्य देवियों का भी अंकन
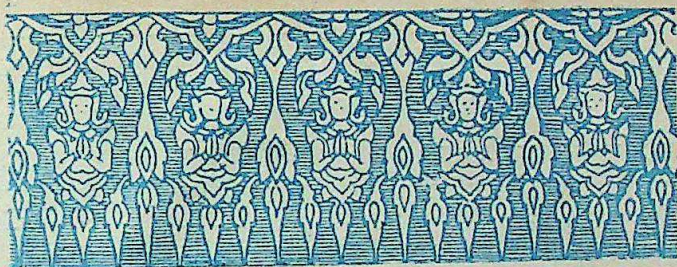
मिलता है। भरहुत में सुदर्शना यक्षी, चंदायक्षी, चुल्लकोका देवता, महोकोका देवता, सिरिमा देवता आदि का चित्रण है। सांची की कला में विभिन्न यक्षणियों एवं गजलक्ष्मी का अंकन है। बोधगया की वेदिका पर भी गजलक्ष्मी का चित्रण है। अमरावती के स्तूप में गंगा और यमुना का वर्णन मिलता है। गांधार की बौद्धकला में नागियों और किन्नरियों का सामान्यतः अंकन है; साथ ही माया देवी, हारीती, पृथ्वी देवी आदि भी उत्कीर्ण मिलती हैं।

इस तरह स्पष्ट होता है कि किस तरह देवीपूजा की भावना धीरे-धीरे बढ़ती चली जा रही थी और किस तरह लोकधर्म की देवियों को बौद्ध धर्म में आत्मसात् किया जा रहा था। यह कार्य एकबारगी न होकर धीरे-धीरे अनेक अवस्थाओं में संपन्न हुआ। उदाहरण के लिए जातकों में सिरिमा बुद्ध की माता है; भरहुत में इन्हें सिरिमा देवता कहा गया है, किंतु सांची और बोधगया में आकर इनका रूप प्रायः गजलक्ष्मी का हो जाता है। और यह असंभव नहीं लगता कि तांत्रिक बौद्ध धर्म की श्री देवी इन्हीं का विकसित रूप हों।

इसी प्रकार जातकों में चंद्रा या चंदा का बुद्ध की माता के रूप में उल्लेख मिलता है। भरहुत में चंदा या चदा यक्षी है। कालांतर में यही चुंडा या चुंदा नाम से बौद्ध धर्म की लोकप्रिय देवी हो गयी। पालि साहित्य के अनुसार बुद्धकालीन समाज में हारीती की बहुत मान्यता थी। ऐसा वर्णन मिलता है कि राजगृह में हारीती नाम की एक राक्षसी रहती थी जिसके पांच सौ बच्चे थे। यह प्रतिदिन दूसरों के बच्चों को मारकर खाती थी। एक दिन बुद्ध ने इसके सबसे छोटे बच्चे को छिपा लिया। वह रोती-कलपती बुद्ध के पास गयी। भगवान ने कहा कि 'तुम्हारे तो पांच सौ बच्चे हैं तो तुम एक को नहीं भूल सकतीं; फिर जिसके एक ही बच्चा है उसे यदि तुम मार डालती हो, तो उसे कितना दुःख होता होगा। तुम्हारा बच्चा तुम्हें मिल जायेगा, पर आज से तुम प्रतिज्ञा करो कि तुम किसी के बच्चे को हानि नहीं पहुंचाओगी।' राक्षसी बुद्ध के चरणों में गिर गयी; उसको उसका बच्चा मिल गया। वह बुद्ध-सेविका बन गयी और संतानरक्षिणी के रूप में पूजी जाने लगी। गांधार की

बौद्धकला में इस बात की पुष्टि होती है कि हारीती को बौद्ध धर्म में देवी के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी थी।

महायान साहित्य में उत्तरोत्तर देवियों का प्रवेश बढ़ता गया; और वास्तव में बौद्ध धर्म में देवियों का जो भी स्थान है उसकी भूमिका महायान ने तैयार की। महायान का तांत्रिक बौद्ध धर्म से निकट संबंध है; जहां एक ओर महायान में अनेक तांत्रिक तत्त्व हैं वहां दूसरी ओर महायान के ही दार्शनिक सिद्धांत तांत्रिक बौद्ध धर्म में संग्रहीत और रूपांतरित किये गये हैं। महायान सूत्रों में बुद्ध और बोधिसत्व अलौकिक और चमत्कारी गुरुओं के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। बोधिसत्व-चर्या के प्रारंभ में बुद्ध और बोधिसत्वों की मानस-पूजा का विधान है। बौद्ध धर्म की बहुत-सी देवियां बुद्ध और बोधिसत्वों से संबंधित हैं। रक्षा की देवी, 'तारा देवी' को तो समस्त बुद्धों तथा बोधिसत्वों की माता ही कहा गया है।

तांत्रिक बौद्ध धर्म में देवी का स्थान सर्वोच्च है और पुरुष देवता की स्थिति गौण है। हिंदू परंपरा में पुरुष देव, शिव, प्रपंचोपशम अथवा शांत रूप है, और शक्ति क्रियात्मक है। शक्ति के उदय से ही सृष्टि का विस्तार होता है और शक्ति के शिव में लीन हो जाने से प्रलय होती है। विपरीत बौद्ध परंपरा में शक्ति का कार्य पुरुष देवता संपन्न करता है। देवी तो प्रपंचोपशम है। देवी प्रज्ञा कहलाती है और देव उपाय। पुरुष देवता अवरोह और आरोह दोनों ही क्रमों में उपाय है। देवी स्वयं अद्वयतत्त्व है, वह शून्यता या निर्वाणरूप है। स्थूल रूप में वही संसार है। बौद्धतंत्र में मिलनेवाले मंडल इसी बात को व्यक्त करते हैं। मंडल में रहने वाली देवी शून्यता, प्रज्ञा अथवा निर्वाण का प्रतीक है। अन्य देवियां इसी केंद्रवर्ती प्रज्ञा की अभिव्यक्तियां हैं। सबसे पहले यह अभिव्यक्ति स्कंध और धातुओं के रूप में होती है जिनके प्रतीक तथागत और उनकी देवियां हैं।

तत्त्वज्ञान में एक और अनेक की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है; और इसका समाधान दोनों को परमार्थतः अभिन्न मानकर किया गया है। इसीलिये बौद्ध धर्म में निर्वाण और संसार दोनों का एक-सा महत्त्व है। उसके अनुसार जो निर्वाण और संसार को एक समझता है, वही मुक्ति का अधिकारी भी होता है। **—११, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, मंदसौर, म. प्र.**

☐

(पृष्ठ ११९ का शेषांश)

उनके परिवार के सदस्यों को इस 'चमत्कार' पर यक़ीन नहीं आ रहा था। उन्हें क़ायल करने के लिए राहा महोदय को अनेक परीक्षणों के दौर से गुज़रना पड़ा। इन परीक्षणों से पता चला कि अब राहा महोदय नंगी आंखों से किताब पढ़ सकते थे, दूर से अपने घरवालों और मवेशियों को पहचान सकते थे, और रंगों की पहचान भी कर सकते थे। रंगों की पहचान की क्षमता वे कई वर्ष पूर्व खो बैठे थे। कम शक्ति वाले एक आवर्धक लेंस की मदद से अखबार पढ़ना भी उनके लिए सहज हो गया था। दायीं आंख में मोतियाबिंद का कोई चिह्न शेष नहीं रहा था। कमाल यह था कि अब वे दायीं आंख से बायीं आंख की अपेक्षा बेहतर देख सकते थे।

जब मैं अपने मित्रों के साथ बड़ानगर स्थित उनके स्थान पर उनसे मिलने गया तो बच्चों जैसी किलकारी के साथ उन्होंने हमारी कमीज़ों के रंग पहचान लिये।

राहा पं. बंगाल के भूतपूर्व पुलिस इंस्पेक्टर हैं, और तीन पुत्र, तीन पुत्रियों के पिता हैं। इस चमत्कार के बारे में वे कहने लगे, 'मैं इसे ईश्वरीय वरदान मानता हूं। अपने प्रियजनों को दुबारा देखकर बड़ा हर्ष होता है।'

९४ वर्ष की आयु में भी राहा एकदम चुस्त और स्वस्थ हैं। 'पिछली बार कब बीमार पड़ा था, याद नहीं। मैं सौ वर्षों तक जिऊंगा। दीर्घ आयु हमारे परिवार के सदस्यों की विशेषता है। मेरी पत्नी चारुबाला की आयु ८४ वर्ष है। मेरे पिता ११२ वर्ष की आयु में परलोक सिधारे थे, और मेरी मां तथा दादा १०५ वर्ष की आयु तक जीवित रहे थे।' उन्होंने बताया।

श्री राहा के चमत्कारिक दृष्टि-लाभ के संबंध में मैं कलकत्ता के तीन प्रमुख नेत्र-विशेषज्ञों से मिला। ये थे डॉक्टर नीहार मुंशी (जिन्होंने श्री राहा की बायीं आंख का मोतियाबिंद निकाला था), डॉक्टर बलाई मित्र और डॉक्टर आय. एस. रॉय। तीनों का कहना था कि इस मामले से किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचना कठिन है। डॉक्टर रॉय का कहना था कि बिजली की कड़क से दृष्टि-लाभ संभव है, इसके वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

वैसे डॉक्टर मुंशी और डॉक्टर रॉय दोनों का मत है कि बिजली की कड़क सुनकर श्री राहा ने अपनी गर्दन बड़े ज़ोर से घुमायी होगी, जिससे उनके पके मोतियाबिंद स्खलित हो गये। डॉ. मुंशी ने यह भी कहा कि किसी दृग-तंत्रिका की कमज़ोरी के कारण, अब तक श्री राहा को साफ़ न दिखायी देता रहा हो, और इस आघात से वह सहसा सशक्त हो गयी।

डॉक्टर बलाई मित्र बिना श्री राहा की आंखों की जांच किये, कोई राय देने को तैयार न थे।

('संडे स्टैण्डर्ड' से साभार उद्धृत)

☐
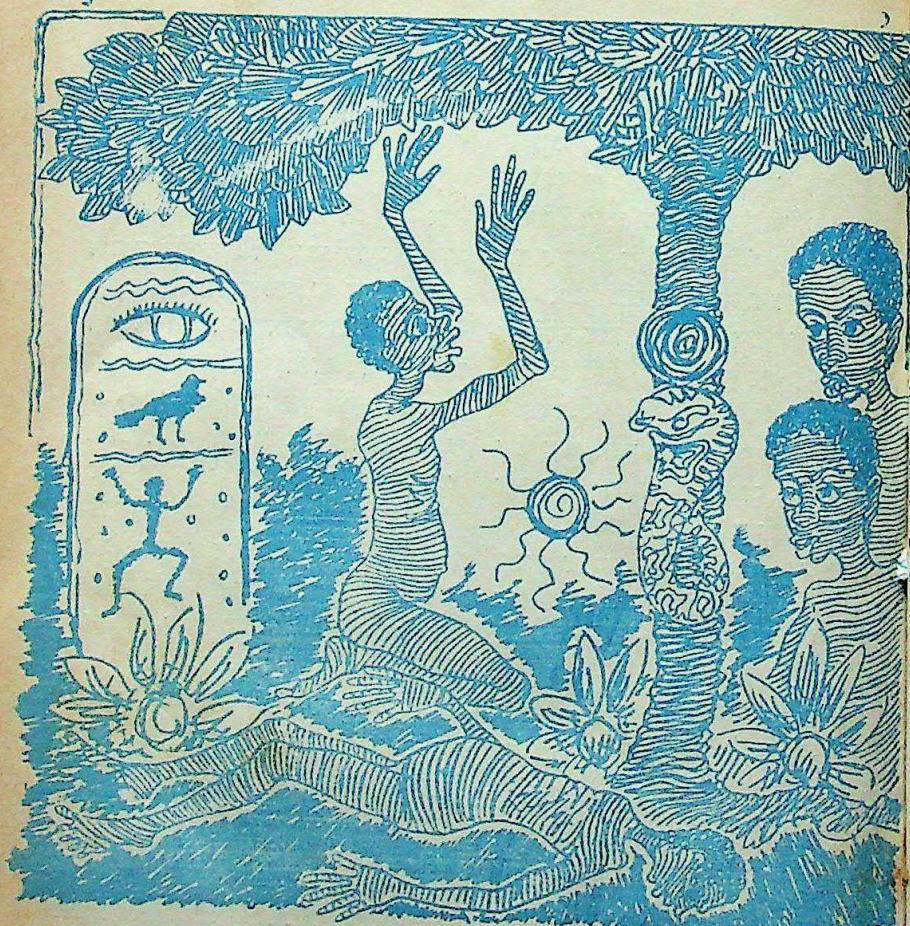
जेम्स एच. नील की प्रख्यात रहस्य-कथा

जंगल का जादू

का हरिमोहन शर्मा द्वारा प्रस्तुत सार-संक्षेप

यह उस काल की रोमांचक सत्यकथा है, जब घाना पर नक्रूमा का राज्य था, और घाना में रहनेवाले सब श्वेत और अश्वेत लोग अनिश्चय और आतंक के वातावरण में जीते थे। देश भर में जासूस फैले थे, जिनकी बात पर विश्वास करके नक्रूमा की सरकार किसी भी घाना-निवासी को, बिना अग्रिम सूचना या किसी अपराध के जेल में ठूंस कर उसको अंतहीन यातनाएं दे सकती थी।

इसी काल में जेम्स नील नामक एक ब्रिटिश अधिकारी को कुछ समय तक, घाना के मुख्य जांच-अधिकारी के पद पर कार्य करने का अवसर मिला था। 'जंगल मैजिक' नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने बताया है कि किस प्रकार घाना आकर, 'काले जादू' (जिसे घाना तथा अनेक अफ्रीकी देशों में 'जू-जू' कहा जाता है) के प्रति उनका अविश्वास, आंखों के सामने घटती घटनाओं को देखकर विश्वास में बदल गया।

०००

कुछ घटनाओं का लोमहर्षक वर्णन!

नवंबर, १९५२ में लंदन स्थित गोल्ड कोस्ट के हाई कमिश्नर ने मुझे मुख्य वित्त तथा आपूर्ति अधिकारी के पद पर नियुक्त करके, तुरन्त आँकरा जाने को कहा। घाना ने अपने विकास के लिए एक पंचवर्षीय योजना आरंभ की थी, और इन विकास-कार्यों के लिए धन और सामान जुटाने की चुनौतीभरी जिम्मेवारी मेरी थी। मैंने इस पद के लिए फ़ौरन स्वीकृति दे दी, कारण मॉरिशस और पैलेस्टाइन में कार्य करने के बाद, अफ्रीका के किसी देश में काम करने की मेरी बहुत इच्छा थी।

किन्तु आँकरा पहुंचने पर मुझे पता चला कि मुझे मुख्य जांच अधिकारी के पद पर काम करना होगा, क्योंकि देश में चोरी, भ्रष्टाचार तथा सरकारी धन के दुरुपयोग की घटनाएं बहुत अधिक बढ़ गयी थीं, और उन पर काबू पाने के लिए एक ईमानदार, कर्मठ और योग्य जांच-

अधिकारी की आवश्यकता थी।

जिस समय मैंने मुख्य जांच-अधिकारी का और भी अधिक चुनौतीभरा पद स्वीकार किया, उस समय मैंने सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि मैं जब तक इस पद पर रहूंगा, तब तक अफ्रीका का 'काला जादू' (जू-जू) मुझे लगातार तंग करता रहेगा, और उसके कारण मेरे प्राणों पर भी बन आयेगी। मेरा काले या सफ़ेद, किसी भी किस्म के जादू में कभी कोई आस्था नहीं थी, लेकिन आँकरा के कुछ ख़ौफनाक अनुभवों के बाद, यह आस्था काफ़ी डगमगा गयी, और मुझे लगने लगा

कि 'काले जादू' (जू-जू) की हक़ीक़त से इंकार नहीं किया जा सकता।

०००

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता थी कि मेरे सभी अफ़्रीकी सहायक कर्मठ, बुद्धिमान और ईमानदार लोग थे। प्रमुख सहायक था, आदजी—जिसमें इन गुणों के अलावा स्वामी-भक्ति का भी परम गुण था।

मेरे कार्यालय का फोन नंबर था—२१२१, और वह कभी ख़ाली नहीं रहता था। जब भी इस फोन की घंटी बजती, मुझे एक नयी, अजीबो-गरीब और सनसनीखेज़ घटना सुनने को मिलती। इनमें से ऐसे मामले कम ही निकलते, जिनकी विधिवत् जांच की जा सके, और ऐसे मामलों की जांच हम पूरी लगन और मेहनत से करते। हमारी जांचों के फलस्वरूप, अपराध और भ्रष्टाचार के मामले बहुत कम रह गये थे, और अपराधी-वर्ग हमसे डरने लगा था।

लेकिन, अपराधी-वर्ग में ऐसे अपराधी भी थे, जो हमसे क़तई नहीं डरते थे, सिर्फ़ इसलिए कि चूंकि उन्हें जादूगरों का संरक्षण प्राप्त है, इसलिए हमारा महकमा क्या, कोई भी भी व्यक्ति या संगठन इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस बात का पक्का पता मुझे तब चला, जब आदजी ने मेरे पास आकर बड़े गंभीर और परेशान स्वर में कहा, 'सर, धोखाधड़ी के जिस नये मामले में हम लोग जिन अभियुक्तों से पूछताछ कर रहे हैं, उन्होंने हमें धमकी दी है कि यदि हमने उन्हें फ़ौरन रिहा नहीं कर दिया, तो वे जादूगरों के पास चले जायेंगे।'

'तो, चले जायें। जादूगर हमारा क्या बिगाड़ लेंगे?' मैंने कहा।

कुछ क्षण चुप रहने के बाद, आदजी ने कहा, 'सर, आप चूंकि यूरोपियन हैं, इसलिए आप आसानी से नहीं समझ पायेंगे कि 'काला जादू' (जू-जू) कितनी प्रभावशाली शक्ति है और उसका वार सदैव अचूक रहता है।'

'काले जादू की प्रभाविकता में मेरा विश्वास कभी नहीं हो पायेगा, आदजी, तुम या कोई कितनी भी कोशिश क्यों न करे।'

'आप ग़लती कर रहे हैं, सर! 'जू-जू' की शक्ति का पता आपको जल्दी ही चल जायेगा।' आदजी ने हिचकते हुए कहा। वह बेचारा जो कुछ कह रहा था,

मेरे हित में ही कह रहा था। 'मैं अपने निजी अनुभवों से जानता हूं कि जादूगर लोग 'जू-जू' की मदद से अपने शत्रुओं को भारी हानि पहुंचा सकते हैं, यहां तक कि उसकी हत्या भी करवा सकते हैं।'

आदजी नाराज़ न हो जायें, इसलिए मैंने काले जादू की और हंसी तो नहीं उड़ायी लेकिन, अंदर से मैं अविश्वासी ही बना रहा। मेरा खयाल था कि आॅकरा में रहनेवाले सब यूरोपियन मेरी भांति 'जू-जू' को बकवास मानते होंगे, लेकिन बातें करने पर पता चला कि यूरोपियन क्लब के कुछ सदस्य 'जू-जू' में अनपढ़ और जाहिल अफ्रीकियों की भांति ही विश्वास करते थे। उनमें से केविन रॉयन नामक यूरोपियन इंजीनियर ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'मैं भी आप लोगों की भांति 'जू-जू' की बातें सुनकर उन पर हंसा करता था, लेकिन बाद में मुझे पता चला कि 'जू-जू' कितना ख़तरनाक है। जादूगरों द्वारा मंत्र पढ़कर फेंका गया पाउडर भयंकर दुर्घटना और हत्या तक का कारण बन सकता है। यह देखिये, मेरा तावीज़, जो मैंने पचास पौण्ड में एक जादूगर से खरीदा था। यदि मैंने इसे धारण न किया होता, तो कभी का मर गया होता।'

केविन के इस कथन के बावजूद, 'जू-जू' में मेरी आस्था बिलकुल नहीं जागी। लेकिन, तभी एक ऐसी घटना घटी, जिसने मुझे और मेरी अनास्था दोनों को बुरी तरह हिला कर रख दिया।

०००

घाना सरकार ने नेमा नाम के एक नये बंदरगाह का निर्माण-कार्य आरंभ कराया ही था कि सिमेन्ट, लोहे की छड़ों आदि सामान की नियमित और व्यवस्थित ढंग से चोरी आरंभ हो गयी। इन चोरियों की जांच का काम मुझे सौंपा गया। मैं अपने चुने हुए सहकारियों को लेकर घटनास्थल पर पहुंचा। कुछ दिन बाद ही मुझे पता चल गया कि एक पुर्तगाली इंजीनियर थियोदोर पाउलोस चोरों के गिरोह का नेता है। लेकिन जैसे ही मैं अपने सहकारियों के साथ उसे गिरफ्तार करने पहुंचा, वह और उसके साथी हमें चकमा देकर जंगल में भाग खड़े हुए। लेकिन, मुझे और बंदरगाह-योजना के पर्यवेक्षक सिमन्द को पूरी आशा थी कि वे लोग, डर के मारे कभी वापस नहीं आयेंगे। और इस प्रकार चोरियों का सिलसिला ख़त्म हो जायेगा।

जब मैं जाने की तैयारी कर रहा था, तब सिमन्द ने कहा, 'इस पेड़ का मसला और तय हो जाता, तो मेरा अटका हुआ काम फिर शुरू हो जाता। मगर, यह कमबख़्त पेड़ किसी भी तरह हटता ही नहीं।'

आश्चर्य से, मैंने उस छोटे से पेड़ को देखा, जो रास्ते के ठीक बीचोबीच खड़ा था। सिमेन्द ने इसे जड़ से नष्ट करने की पूरी कोशिश की थी, यहां तक कि उसके ऊपर रौलर भी चलवाया था, लेकिन पेड़ हिलने का नाम भी नहीं ले रहा था। कई मजूरों ने मेरे सामने उसे हिलाने-हटाने की बहुत कोशिश की, पर नाकाम रहे।

'इस पेड़ में एक देवी का वास है,' सिमन्द के फोरमैन ने मुझे बताया, 'और जब तक इसमें देवी का वास रहेगा, तब तक आप इसे डायनामाइट लगाकर भी नष्ट नहीं कर सकते। हम खुद यह प्रयोग करके देख चुके हैं।'

'क्या इस देवी को पेड़ से अलग नहीं किया जा सकता?' मैंने पूछा।

'यह काम सिर्फ़ एक जादूगर ही कर सकता है।'

'कितनी फीस लेगा वह?'

'उससे बात हो चुकी है। वह १०० पौण्ड मांगता है, और कहता है कि यह रक़म उसे पेड़ के हट जाने पर ही दी जाये।'

मैंने सिमन्द को सलाह दी कि वह जादूगर को पेड़ को हटाने का मौक़ा दे। वह पहले ही, इसके लिए तैयार था।

जादूगर ने आकर, घाना की 'गा' भाषा में पेड़ से प्रार्थना करनी आरंभ की, जिसका अनुवाद, संक्षेप में, इस प्रकार था: 'हे पेड़ की देवी! यदि तुम कृपा करके, यह पेड़ छोड़कर चली जाओगी, तो हज़ारों लोग, जिन्हें नये बंदरगाह के बनने से लाभ होगा, तुम्हें दुआएं देंगे।'
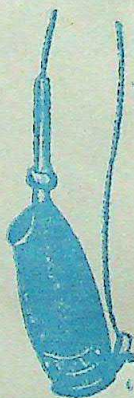
काफ़ी देर तक प्रार्थना करने के बाद, वह सहसा चुप हो गया, और फिर सिमन्द से बोला, 'देवी पेड़ छोड़कर चली गयी है। अब आप पेड़ को आसानी से हटा सकते हैं; वह कोई प्रतिरोध नहीं करेगा।'

और सचमुच, फिर पेड़ इतना आज्ञाकारी, हो गया कि सिर्फ़ एक मामूली से मज़दूर ने उसे आसानी से, जड़ सहित ज़मीन से बाहर निकालकर, अकेले ही, एक कोने में फेंक दिया। इससे पूर्व मेरे सामने २० मज़ूरों का एक दल भी उसे उसकी जगह से नहीं अलग कर सका था।

०००

इस घटना के पन्द्रह दिन बाद, मुझे एक सरकारी कर्मचारी के ख़िलाफ़ यह शिकायत मिली कि वह गांव के किसानों को यह डर दिखाकर कि यदि उसकी जेब गर्म

न की गयी, तो वह उनके खेतों के बीच से रास्ता निकालने की इज़ाज़त निकलवा लेगा, उनसे काफ़ी रक़म ऐंठ चुका है, और लगातार ऐंठता जा रहा है।

मैंने उसके खिलाफ़ गवाहियां जमा करनी शुरू कर दीं, और सारी व्यवस्था हो जाने पर, एक दिन उसे गिरफ्तार करके, अदालत के सामने खड़ा कर दिया। अदालत से ज़मानत पर छूटने के बाद, न्यामे नाम के इस आदमी ने खुलेआम धमकी दी, 'मैं 'जू-जू' की मदद लेकर, उन सबको, जिन्होंने मेरे खिलाफ़ गवाही दी है, और मुझे गिरफ्तार किया है, ज़िन्दा नहीं रहने दूंगा।' मुझ पर तो इस धमकी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, लेकिन मेरा प्रमुख सहायक आदजी और कुछ गवाह बुरी तरह डर गये थे।

और शीघ्र ही मुझे भी डरने को मजबूर होना पड़ा। जिस दिन न्यामे का मुकदमा अदालत में शुरू होने वाला था, उससे दो दिन पहले, हमारे दो ख़ास गवाह जो भले-चंगे थे, न जाने कैसे अचानक चल बसे। और, मुकदमे के दिन जज महोदय अचानक बुरी तरह बीमार पड़ गये। लौटते समय, मैं एक लॉरी-दुर्घटना में मरते-मरते बचा। मुझे किसी ने बताया कि न्यामे के जादूगर ने मेरा एक पुतला बना रखा है, और उसे तरह-तरह की यंत्रणाएं देता रहता है, इस आशा में कि उनका आखिरी शिकार मैं ही बनूंगा। मैं अंदर से काफ़ी डरा हुआ था, लेकिन ऊपर से 'जू-जू' से हार मानने के लिए बिल्कुल तैयार न था।

एक दिन जब मैं अपनी कार में अपनी सीट पर बैठने जा रहा था, तो मेरे भयभीत ड्राइवर ने मुझे बैठने से रोक दिया। कारण ? सीट पर जादूगर द्वारा फेंका हुआ जादू का पाउडर पड़ा था, जो ड्राइवर के अनुसार, मेरी हत्या का कारण बन सकता था।

ड्राइवर ने इस संभावना को टालने के उद्देश्य से, एक नया अण्डा खरीदकर, तीन बार उसे मेरे सिर के ऊपर से घुमाकर, बहुत दूर फेंक दिया। यह एक जादू को काटने के लिए किया गया दूसरा जादू था।

लेकिन, घर आते ही, मैंने महसूस किया कि मेरा सारा शरीर इस बुरी तरह दर्द कर रहा है, मानों उस पर सख्त मार पड़ी हो। यह दर्द, कम होने के स्थान पर, लगातार बढ़ता ही जा रहा था, और एक-दो घंटे बाद मुझे निश्चय हो गया कि मेरा अंत समय निकट आ गया है।

०००

यह अनुभूति इतनी प्रगाढ़ थी कि मुझे अच्छी तरह याद है कि बिस्तर पर लेटे-लेटे, मैंने अपने सूक्ष्म शरीर को अपने स्थूल शरीर से पृथक होकर, आकाश की ओर जाते देखा। मैं न कल्पना के पंखों पर सवार था, और न मुझे दृष्टि-भ्रम हो रहा था। १९५३ की उस रात को, वास्तव में, मैंने अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से जुदा होकर ऊपर जाते देखा था।

सहसा, मैंने देखा कि मेरा सूक्ष्म शरीर एक विशाल ज्योति-पुंज में समा गया है। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मेरी मृत्यु हो चुकी है। नहीं तो, सूक्ष्म शरीर ज्योति-पुंज में क्यों लय हो जाता?

किन्तु, तभी मैंने देखा कि मेरा सूक्ष्म शरीर ज्योति-पुंज से निकलकर, पुनः मेरे स्थूल शरीर में मिलने के लिए आ रहा है। और इन शब्दों की गूंज मेरे कानों में पड़ी, 'जाओ! अभी तुम्हारा अंतिम समय नहीं आया है।'

सूक्ष्म और स्थूल शरीरों के एक होते ही, मेरी पीड़ा फिर बढ़ गयी। दर्द असह्य होता जा रहा था, और मेरी समझ में नहीं आता था कि मैं क्या करूँ? मैंने अपने नौकर को भेजकर आदजी को बुलाया, जो मुझे तुरन्त यूरोपियनों के अस्पताल में ले आया।

भली भांति मेरा निरीक्षण, करने के बाद भी, अस्पताल के डॉक्टरों को पता न चला कि मेरी पीड़ा का क्या कारण है? उन्होंने मुझसे यही कहा कि कुछ दिन अस्पताल में बिताना मेरे लिए अच्छा रहेगा। लेकिन, आदजी का कहना था कि मेरी पीड़ा का कारण, मेरे शत्रुओं द्वारा मुझ पर कराया गया काला जादू है, जिसका प्रतिकार कोई जादूगर ही कर सकता है।

'क्या तुम किसी ऐसे जादूगर को जानते हो?' मैंने पूछा।

'मेरे चचा टैट्टे को जू-जू का सबसे बड़ा जादूगर माना जाता है। वे मेरे कहने से आ जायेंगे।'

चचा टैट्टे ने बहुत से गण्डे-तावीज़ धारण कर रखे थे, और वे देखने से ही एक जादूगर लगते थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा, 'जो जादूगर आपका जानी दुश्मन बना हुआ है, उसने अपना दो-तिहाई काम तो पूरा कर लिया है। एक-तिहाई काम पूरा होते ही, आपका भी काम तमाम हो जायेगा। मगर, अब आप मेरे संरक्षण में हैं, और अब किसी की हिम्मत नहीं कि वह आपका बाल भी बांका कर सके।'

यह कहकर उसने अपनी भाषा में कुछ पाठ करना आरंभ कर दिया। बीच-बीच में, वह कुछ नाम भी लेता जाता था, उसने मेरा नाम भी कई बार लिया। फिर उसने मेरे हत्यारों के हुलिये बताने शुरू कर दिये। 'जिस आदमी को आपने किसानों से पैसे ऐंठने के जुर्म में अदालत में घसीटा है, उसका चाचा, एक जादूगर की सहायता से आपकी जान लेना चाहता है। वह मेरा भी दुश्मन है, इसलिए मैं अब उसकी सब चालों को नाकाम कर दूंगा, आप निश्चिन्त रहें। लेकिन आपको अपनी ओर से भी काफ़ी सावधानी बरतनी होगी, और हर उस जगह से बचना होगा, जहां आपके दुश्मन जादूगर ने पहले से ही जादुई पाउडर बिछा रखा हो।'

○○○

मैं जादूगर टैट्टे से बहुत अधिक प्रभावित हुआ, और यह स्वीकार करने को तैयार हूं कि उसी के कारण न्यामे और

उसके साथियों द्वारा मेरे विरुद्ध किये गये जादू से मेरे प्राण बचे । उसकी कही हर बात सच निकली, और वह पहला आदमी था, जिसने बिना कुछ कहे, 'जू-जू' के प्रति मेरा विश्वास दृढ़ीभूत किया, और यह मानने को विवश किया कि 'जू-जू' की सहायता से सचमुच जादूगर किसी को भी मर्मान्तिक पीड़ा पहुंचा सकते हैं ।

कुछ समय बाद, मुझे उस क्षेत्र से, जो घाना और फ्रांसीसी उपनिवेश की सीमा पर स्थित था, 'चीता-मानव' नाम के एक रहस्यमय और प्रभावशाली कबीला सरदार की ओर से एक अत्यावश्यक संदेश मिला, जिसमें कहा गया था कि उस क्षेत्र में निर्माण-कार्यों में लगने वाले सामान की बहुत चोरी हो रही है । इसके अलावा, सात-आठ नरभक्षी शेर भी उस क्षेत्र में घुस आये हैं, और दो स्त्रियों और एक पुरुष को उठाकर ले गये हैं ।

सदल-बल उस क्षेत्र में पहुंचने के बाद, मुझे मालूम पड़ा कि 'चीता-मानव' के कबीले के लोग शेरों से अधिक नर-भक्षी हैं, और अपने पैने और तेज़ दांतों से, देखते ही देखते आदमी को चबा डालते हैं । जो उनके बारे में कुछ नहीं जानता, उसे चबाये हुए आदमी को देखकर यही लगता है कि किसी चीते ने ही उस आदमी की यह दुर्दशा की । 'चीता-मानव' ने चूंकि सबसे अधिक आदमियों को मार कर खाया था, इसलिए वह अपने कबीले का सरदार बनकर, अपने को 'चीता-मानव' कहने लगा था ।

उस क्षेत्र में अन्य सार्वजनिक निर्माण-कार्यों के अलावा, एक राजमार्ग के निर्माण का कार्य भी चल रहा था । अधिकांश चोरियां इस स्थल पर ही होती थीं, और शेर भी यहीं आते थे ।

सबसे पहले, मैंने शेरों को पकड़ने के लिए आसपास अनेक गड्ढे खुदवाये । जो शेर, सर्वप्रथम एक गड्ढे में गिरा, उसे देखने के लिए काफ़ी लोग जमा हुए । मगर, वे उसे देख ही रहे थे कि शेर ने एक ज़बर्दस्त छलांग लगायी, और गड्ढे के बाहर आ गया । उसे भागते देखकर, सड़क-इंजीनियर ने उस पर गोली चलायी, जो उसे नहीं लगी । इस बीच, शेरनी ने न जाने कहां से आकर, इंजीनियर को चबा डाला । मैं इंजीनियर को तो नहीं बचा सका, लेकिन शेरनी को मारने में अवश्य सफल हो गया ।

शेरों को पकड़ने के लिए जो गड्ढे हमने खुदवाये थे, उन्हें और गहरा किया गया । इसका अच्छा परिणाम निकला, और अगले दो-तीन दिनों में सब शेरों को गड्ढों में मार डाला गया ।

चोरों का जो दल निर्माण-कार्यों के सामान की चोरी कर रहा था, उसे पकड़ने में हमें कोई ख़ास दिक्कत नहीं हुई । लेकिन, जब मैं अपना काम पूरा करके वापस जाने लगा, तो 'चीता-मानव' ने आकर मेरे सामने एक विचित्र निवेदन प्रस्तुत किया । उसने कहा, 'आपने शेरों और चोरों का सफ़ाया करके हम पर बहुत उपकार किया है,

श्रीमान ! मगर जाने से पहले, हम पर एक उपकार और करते जाइये । अबोसो नाम की धूर्त जादूगरनी से हमारी रक्षा कीजिये । मेरे कबीले के बहुत से लोग उसके चंगुल में फंसकर न जाने कहां ग़ायब हो गये हैं । यह कमीनी जादूगरनी जिस नवयुवक या युवक को एक बार जी भर कर देख लेती है, वह या तो उसका ग़ुलाम हो जाता है, या फिर किसी रोग या दुर्घटना से ग्रस्त हो जाता है ।'

'देखो, चीता-मानव ! जादूगरों और जादूगरनियों के मामले में हमारा विभाग कुछ नहीं कर सकता। लेकिन, अबोसो नाम की इस औरत से मैं तुम्हारी शिकायत के बारे में बातचीत अवश्य कर सकता हूं । कहां रहती है वह और क्या करती है ?'

'वह तंग-धड़ंग हालत में एक पेड़ पर रहती है। वैसे वह किसी की नहीं सुनती, लेकिन आपके बुलाने पर अवश्य आ जायेगी । कल ही से, उसके श्राप की वजह से क्वाको नाम का एक नवयुवक फोड़ों की तक़लीफ़ सह रहा है । आप उसके सामने, इस मामले की सुनवाई भी कर सकेंगे ।'

मैं चीता-मानव की बात पर विचार कर ही रहा था कि एक चमत्कार देखने को मिला । न जाने कहां से आकर, अबोसो मेरे और चीता-मानव के सामने प्रकट हो गयी । वह एक स्वस्थ और आकर्षक युवती थी, और उसने अफ्रीकी शैली की रंग-बिरंगी और भड़कीली पोशाक धारण कर रखी थी । वह काफ़ी चपल और चतुर युवती मालूम पड़ती थी ।

०००

'बन्दापरवर ! गुस्ताखी माफ़ हो ! यह चीता-मानव आपसे मेरे बारे में जो कुछ कह रहा था, वह सरासर झूठ है । आपने उसकी शिकायत सुनी, तो मेरी सफ़ाई भी सुन लीजिये । उस क्वाको को बुलाइये, जो कई दिनों से मुझे बुरी-बुरी गालियां देता चला आ रहा था, और मेरे मना करने पर भी बाज़ न आया था । अब वह यहां आकर मुझसे माफ़ी मांग ले, और यह वायदा करे कि वह भविष्य में कभी मेरा अपमान नहीं करेगा, तो मैं अपना श्राप वापस लेकर, उसे भला-चंगा करने को तैयार हूं ।'

मैं हक्का-बक्का उसकी बात सुन रहा था । फिर भी, इतना होश अवश्य था कि अपने एक सहायक को यह आदेश दूं कि वह जाकर क्वाको को बुला लाये । क्वाको आया, तो मैंने देखा, उसका सारा शरीर फोड़ों से भरा हुआ था । उसे देखकर, अबोसो ने उसके सामने क्षमा-याचना का प्रस्ताव रखा । बेचारा क्वाको इतना अधिक पीड़ित था कि उसने अपनी पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए फ़ौरन अबोसो से माफ़ी मांग ली, और आश्वासन दिया कि वह आगे कभी उसे नहीं छेड़ेगा । अबोसो ने हंसते हुए, उसकी माफ़ी फ़ौरन कबूल कर ली ।

जैसे ही, अबोसो ने उसकी माफ़ी कबूल

की, वैसे ही मुझे एक और चमत्कार देखने को मिला। उसके फोड़ों के घाव धीरे-धीरे सूखने शुरू हो गये, और उसकी पीड़ा कम होने लगी। दस-पन्द्रह मिनट बाद, वह हंसता-खेलता वहां से चला गया। मैं आश्चर्य से कभी अबोसो को देख लेता था, और कभी क्वाको को।

'देखा आपने, हुजूर! कितनी कमीनी जादूगरनी है। एक मामूली-सी बात पर बेचारे लड़के को कितनी तकलीफ़ पहुंचायी। इसे तो ज़िंदा ज़मीन में गाड़ देना चाहिये।' चीता-मानव ने मुझसे कहा।

'क्या बक रहा है, बुड्ढे? ज़्यादा बक-बक की, तो अभी तुझे और तेरे कबीले के सब लोगों को ज़मीन में गाड़ कर रख दूंगी।'

'देखा, आपने हुजूर, कैसी धमकी दी है इसने,' चीता-मानव ने लाल-पीली आंखें करते हुए मुझसे कहा। लेकिन, मैंने उसकी बात पर कोई ध्यान न देते हुए, अबोसो से पूछा, 'इस बात में कहां तक सचाई है कि तुमने चीता-मानव के कबीले के बहुत से युवकों को अपने वश में करके गायब कर रखा है? कहां हैं, वे सब?'

'देखिये, साहब! चीता-मानव के कबीले के युवकों के ग़ायब होने की घटनाओं से मेरा कोई लेना-देना नहीं है। हां, मैं इतना अवश्य जानती हूं कि वे सब युवक यहां से बीस मील की दूरी पर स्थित एक ऐसे स्थान में, जहां एक सार्वजनिक निर्माण-कार्य चल रहा है, सरकारी सामान की चोरी में लगे हैं, और इस बात का पता चीता-मानव को भी है। आपको यक़ीन नहीं आता, तो आप खुद वहां जाकर तहक़ीकात करके मेरे कथन की सच्चाई का पता लगा सकते हैं। आप कार से चलिये, मैं उड़ कर वहां पहुंचती हूं। देखें, पहले कौन वहां पहुंचता है?'

...और, एक और करिश्मा!

वह देखते ही देखते, मेरे सामने से अन्तर्धान हो गयी। मैं देखता रह गया। मुझे केविन के शब्द याद आ गये कि 'जू-जू' हंसकर टालने की चीज़ नहीं है। उसकी प्रभाविकता एक हक़ीक़त है, यह मैं खुद देख चुका था।

ooo

चीता-मानव चिल्लाता रह गया, 'यह झूठ बोल रही है, सरकार! मेरे क़बीले के लोग चोर नहीं हैं,' लेकिन मैंने अपने ड्राइवर से फ़ौरन उस स्थान पर चलने को कहा, जिसका ज़िक्र अबोसो ने किया था। ड्राइवर ने बताया कि वह स्थान, वैसे भी, आँकरा लौटते समय रास्ते में पड़ता ही।

उस स्थान पर पहुंचकर, मैंने पाया कि अबोसो पहले से ही वहां मौजूद थी। क्या वह सचमुच उड़कर आयी थी, जैसा कि उसने मुझसे कहा था? जो भी हो, वह मेरे सामने मौजूद थी, और अपने पीछे-पीछे आने का इशारा कर रही थी। वह जिस रास्ते पर, अपने पीछे आने को कह रही थी, वह कच्चा रास्ता था, और जंगल की ओर जाता था। मैं हथियारों से लैस होकर,

अपने साथियों के साथ उसके पीछे-पीछे हो लिया।

जहां से घना जंगल शुरू होता था, वहां एक ट्रक खड़ी थी, जिस पर कुछ अफ्रीकी युवक सरकारी सामान लाद रहे थे। हमें देखते ही, वे सामान फेंककर भागने लगे, मगर मेरे साथियों ने भागकर उन्हें पकड़ लिया। अवोसो ने मुस्कराकर अपनी भाषा में मुझसे कहा, 'अब तो आपको मालूम पड़ गया होगा कि कौन सच बोल रहा था—मैं या वह चीता-मानव, जो इस चोरी में एक चौथाई का हक़दार है?'

और, इससे पहले कि मैं उसका शुक्रिया अदा कर सकूं, वह एक बार फिर अन्तर्धान हो गयी, और मैं देखता और सोचता ही रह गया कि वह आखिर गयी कहां?

०००

इस चमत्कारिक घटना के बाद, कई सप्ताह तक मेरे विभाग में शांति रही; ऐसी कोई शिकायत नहीं आयी, जिसकी जांच का काम हमें शुरू करना पड़ता। इस लंबी बेकारी से हम लोग काफ़ी ऊबते जा रहे थे।

तभी, मुझे पता चला कि बुआतेंग नाम का एक मामूली सरकारी कर्मचारी प्रायः रोज़ जुआघर में जाकर, ऊंची रक़मों के साथ जुआ खेलता है। डेढ़ सौ-दो सौ पौण्ड हार जाना या जीत जाना उसके लिए, जिसकी तनख्वाह सिर्फ़ १०० पौण्ड महीना थी, एक मामूली बात थी। यह जानकर मैंने आदजी को लगा दिया, यह जानने के लिए कि आख़िर उसके पास इतनी रक़म आती कहां से है?

करीब, एक हफ्ते बाद, आदजी ने आकर मुझे बताया, 'यह आदमी एक सरकारी विभाग में फोरमैन है, और उसका काम है, बाहर के मज़दूरों को काम पर लगाना। वह फर्जी दस्तख़त करके ऐसे मजदूरों की तनख्वाह जेब में रख लेता है, जो कभी काम पर रखे ही नहीं गये थे।'

'तुम उसके विरुद्ध अभियोगात्मक साक्ष्य जमा करो। हम उस पर मुकदमा चलायेंगे,' मैंने कहा।

'उसके विरुद्ध अभियोगात्मक साक्ष्य जमा करना बहुत कठिन है, सर! कारण, उसके ऊपर 'जू-जू' के एक बहुत बड़े जादूगर का वरद-हस्त है, और यह जादूगर उन सभी व्यक्तियों को, जो इस आदमी के खिलाफ़ गवाही देने की हिम्मत करेंगे, तरह-तरह से परेशान करेगा, यह जानकर कोई ऐसी हिम्मत करने की बेवकूफ़ी नहीं करेगा।'

मैंने फ़ौरन बुआतेंग को बुला भेजा।

उसके आने के बाद, मैंने उससे बहुत सख्ती के साथ कहा, 'देखो, बुआतेंग, मुझे मालूम पड़ चुका है कि तुम्हारे पास जुआ खेलने के लिए इतना पैसा कहां से आता है? मैं तुम पर मुकदमा चलाने वाला हूं, और यदि इस बीच तुमने अपने जादूगर की मदद से मुझे या मेरे विभाग को किसी भी तरह का कोई नुक़सान पहुंचाने की कोशिश की, तो अच्छी तरह समझ लो कि फिर

घाना सरकार न तुम्हें ज़िंदा रहने देगी, न तुम्हारे जादूगर को ।'

'मैंने कुछ नहीं किया है, सरकार ! मैं बेक़सूर हूं ।'

'तो, तुम्हारे पास इतना पैसा आख़िर आता कहां से है ?'

'मेरा चाचा बहुत अमीर है । वह मुझे पैसे देता रहता है ।'

मैंने उससे ज़्यादा बहस नहीं की, और उसे जाने दिया, लेकिन आदजी तथा उसके सहायकों को आदेश दे दिये कि वे उसे रजिस्टर में फर्ज़ी दस्तख़त करवाते समय, रंगे हाथ पकड़ने की कोशिश करें ।

आदजी और उसके सहायक सफल हुए, और उन्होंने बुआतेंग को रंगे हाथों पकड़ लिया, और जेल में बंद कर दिया ।

लेकिन, बुआतेंग की गिरफ्तारी के एक सप्ताह बाद, आदजी को न जाने कौन-सा रोग हो गया कि वह दो-तीन दिन बाद ही, सूखकर कांटा हो गया । जब मैंने उससे पूछा कि वह किस डॉक्टर से अपना इलाज करवा रहा है, तो उसने डॉक्टर का नाम बताते हुए कहा, 'लेकिन, यह मामला 'जू-जू' का है और इसमें कोई डॉक्टर कुछ नहीं कर सकेगा । चचा टैट्टे न जाने कहां चले गये हैं । वे होते, तो अवश्य मुझे बचा लेते ।'

'मैं तुम्हें बचाऊंगा । मेरे कहने पर, यूरोपियन अस्पताल के बड़े डॉक्टर मैथ्यूज तुम्हारी जांच करके, तुम्हारा इलाज करने को तैयार हो जायेंगे,' मैंने कहा ।

डॉक्टर मैथ्यूज ने आदजी का भली-भांति निरीक्षण कर, उसका इलाज शुरू किया, मगर उससे आदजी को कोई लाभ नहीं हुआ । होता भी कैसे ? वे उसे वही दवा दे रहे थे, जो वह पहले ही ले रहा था । उसने मुझसे उदास स्वर में कहा, 'अगर चचा टैट्टे जल्दी नहीं आये, तो मेरी मौत निश्चित है ।'

सौभाग्य से, उसके चचा टैट्टे शीघ्र ही लौट आये, और उन्होंने फ़ौरन उसका 'जादू का इलाज' शुरू कर दिया । इस 'इलाज' के प्रभाव से आदजी कुछ ही दिनों में भला-चंगा हो गया, जैसे उसे कुछ हुआ ही न हो ।

बाद में, चचा टैट्टे ने मुझे एक ऐसी बात बतायी, जिसे सुनकर मैं दंग तो हुआ ही, विचलित हुए बिना भी नहीं रह सका । उसने बताया कि बुआतेंग ने आदजी को तंग करने के लिए तो एक छोटे जादूगर को चुना था, लेकिन मेरी हत्या के लिए एक ऐसे जादूगर को चुना है जिसकी गिनती घाना के चोटी के जादूगरों में होती है । मुझे बचकर रहना होगा ।

०००

जो बंगला मुझे रहने के लिए मिला था, उसके चारों ओर प्रायः दो एकड़ ज़मीन थी, जिसमें सांपों, बिच्छुओं आदि की भरमार थी । ये जानवर कभी-कभी बंगले के अंदर भी घुस आते थे, और मुझे उनसे बहुत सावधान रहना पड़ता था ।

एक रात, मैंने सोते-सोते महसूस किया

कि कई बिच्छु जैसे जीवों ने एक साथ मुझे डंक मारा है। मैं फ़ौरन उठ बैठा। तकिये के आसपास देखा, तो कुछ ऐसे जीवों को तेज़ी से बाहर भागते देखा। पता नहीं, वे कहां छिप गये। लेकिन, सुबह होते ही, मैंने पाया कि गर्दन पर न डंक के निशान थे, न सूजन के। कोई कष्ट भी नहीं हो रहा था। यूरोपियन अस्पताल के डॉक्टरों ने मेरी जांच करके कहा कि यह मेरा भ्रम-मात्र था कि मुझे किसी जीव ने काटा है, या कुछ हुआ है।

लेकिन, अगले दिन से अंग-अंग में जो न सहा जाने वाला और न बयान किया जाने वाला दर्द शुरू हुआ, तो उसे मैं भ्रम कहकर नहीं टाल सका। यह दर्द दिन भर बढ़ता ही रहा, और रात तक तो ऐसी हालत हो गयी कि मुझे अपना नौकर भेज कर, आदजी को बुलवाना पड़ा। उसके आने पर मैंने उससे कहा, 'लगता है, कोई बड़ा और भयानक जादूगर मेरी जान लेने पर उतारू है।'

'आप चिन्ता न करें! मैं फ़ौरन चचा टैट्टे को साथ लेकर घाना के सबसे बड़े जादूगर के पास जाऊंगा। उनकी सहायता से हम आपको इस कमबख्त जादूगर से मुक्ति दिलायेंगे।'

'जो कुछ करना है, जल्दी करो। मेरा कष्ट निरन्तर बढ़ता जा रहा है?'

सुबह, जागते ही मैंने अपने सामने दाढ़ीवाले एक बुजुर्ग को बैठे पाया। वे मालम अर्लागी थे, घाना के सबसे बड़े और सबसे ईमानदार जादूगर, जो 'जू-जू' का प्रयोग किसी ग़लत कार्य या उद्देश्य के लिए नहीं करते थे। उन्होंने मुझसे कहा 'आदजी ने मुझे आपकी समस्या के बारे में सब कुछ बता दिया है। आप फ़िक्र न करें। मैं जान पर खेलकर भी, आपको उन तीन शक्तिशाली जादूगरों के सम्मिलित आक्रमण से बचाऊंगा, जो आपको यंत्रणा देकर, जान से मारने पर तुले हैं। खुदा ने चाहा, तो कामयाबी इन दुष्टों को नहीं, मुझे मिलेगी।'

चार-पांच दिन बाद, जिनमें मेरा सारा कष्ट मेरे शरीर से हटकर, मालम अर्लागी के शरीर में चला गया था, मुझे पता चला कि मालम अर्लागी ने सचमुच अपनी जान पर खेल कर, मेरी रक्षा की, और इन तीनों दुष्ट जादूगरों को समाप्त करने में सफल हुए, जो मेरी हत्या करना चाहते थे।

इस घटना के बाद, यूरोपियन अस्पताल के बड़े डॉक्टर मैथ्यूज भी 'जू-जू' के क़ायल हो गये। फिर, मैंने कभी उन्हें 'जू-जू' और काले जादू की हंसी उड़ाते नहीं देखा।

०००

ये तो चंद घटनाएं हैं, 'जू-जू' के मेरे अनुभवों से संबंधित, जो घाना में सात-आठ वर्ष के कार्य-काल में मुझे हुए। अन्य चमत्कारिक घटनाओं का वर्णन फिर कभी।

घाना जाने से पूर्व, 'जू-जू' और काले जादू के नाम से ही, मेरी नाक-भौं सिकुड़ जाती थी, और मैं यह कहकर 'जू-जू' का

(शेषांश पृष्ठ १४४ पर)

गोर्की और टालस्टाय

□

गौरीशंकर गुप्त

एक दिन लियो टालस्टाय ने मैक्सिम गोर्की से अचानक यह सवाल पूछ ही लिया, 'गोर्की ! तुम भगवान् के अस्तित्व में आस्था क्यों नहीं रखते ?'

गोर्की ने उत्तर दिया–'कैसे रखूं आस्था ! मेरा हृदय नहीं मानता ।'

टालस्टाय–'एकदम गलत ! तुम आस्तिक के सिवाय और कुछ नहीं हो सकते । तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है । ईश्वर के बिना तुम्हारी प्रवृत्ति में चेतना ही पैदा नहीं हो सकेगी । नास्तिक बने रहने की तो तुम्हारी जिद भर है । तुम चाहते हो कि इस दुनिया का नक्शा तुम्हारी कल्पना के अनुसार बने; सो कैसे हो सकता है ? तुम्हारी इच्छा ही तो एकमात्र इच्छा इस दुनिया में नहीं है–दूसरे और भी तो हैं । जहां तक मैंने समझा है, तुम ऐसे व्यक्ति हो, जो इस संसार की कई चीज़ों से प्रेम करते हो–और प्रेम का ही दूसरा नाम है आस्था या आस्तिकता ! प्रेम संकीर्ण होता है और आस्तिकता विस्तृत । तुम अपने प्रेम में थोड़ी और स्थिरता घोलो । फिर तुम्हारा प्रेम अपने-आप आस्तिकता में व्यक्त हो उठेगा । प्रेम का सर्वोच्च रूप ही तो आस्था है ।

'जो लोग भगवान् में आस्था नहीं रखते, वे कभी और कहीं भी प्रेम नहीं कर सकते । उनके प्रेम में स्थिरता का आनंद नहीं आ सकता–स्थिरता या एकाग्रता ही तो प्रेम का आनंद है । मैं जानता हूं, तुम सौंदर्य के प्रेमी हो । लेकिन सौंदर्य आखिर है क्या ? सबसे पूर्ण सौंदर्य ईश्वर ही तो है ।

'बोलो, गोर्की ! क्या जवाब देते हो तुम ?' टालस्टाय जादूगर की-सी परम मोहिनी वाणी में पूछने लगे ।

क्या जवाब देते गोर्की ! मौन उनके प्रदीप्त नेत्रों को अपलक देख रहा था और अंतर्मन कह रहा था–यह व्यक्ति मनुष्य नहीं, ईश्वर-जैसा ही लगता है ।

–राष्ट्रपिता प्रकाशन, ए. २ ५, कामेश्वर महादेव की गली,
गायघाट, वाराणसी–२२१००१

□

संग्रहणी

□ वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

उपरोक्त बीमारी प्रायः पाचन शक्ति की दुर्बलता के परिणामस्वरूप पैदा होती है। यह बीमारी प्रायः उन्हीं व्यक्तियों को होती है, जो कुपथ्य आहार ग्रहण करते हैं या दस्तों की बीमारी में भी पथ्यापथ्य का पालन नहीं करते।

इस बीमारी में कभी मल कच्चा या कभी पका हुआ, पतला या गाढ़े रूप में निकलता है। खाये हुए अन्न का रस बराबर नहीं बनता। जिससे रस रक्त, मांस, चर्बी, मज्जा आदि धातुओं का निर्माण ठीक प्रकार से नहीं होता और रोगी दिन-ब-दिन कमज़ोरी अनुभव करने लगता है।

यह एक ऐसी बीमारी है, जिसका उचित उपाय न किया जाये, तो यह असाध्य रूप धारण कर लेती है। साधारणतः बालकों का यह रोग जल्दी ठीक हो जाता है। युवावस्था में थोड़े कष्ट के बाद निरंतर इलाज करने से ठीक हो जाता है। लेकिन वृद्धावस्था में यह बीमारी कष्टसाध्य होती है।

अतः इस रोग के प्रारंभ होते ही इसका उचित उपाय करना चाहिये। इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में सोंठ, गिलोय, नागरमोथा और इंद्र जौ का समान मात्रा में चूर्ण बनाकर एक चम्मच की मात्रा से दिन में तीन बार ठंडे पानी के साथ सेवन करें।

रोग पुराना होने पर, बेलगिरी, इंद्र जौ, नागरमोथा, सोंठ, काली मिर्च, भुनी हुई सौंफ और भुना हुआ जीरे का समान मात्रा में चूर्ण बनाकर एक चम्मच की मात्रा से दिन में तीन बार पानी के साथ सेवन करें।

भोजन के बाद कुटजारिष्ट दो-दो चम्मच की मात्रा से दिन में दो बार पानी मिलाकर सेवन करें।

भोजन सुपाच्य एवं हल्का होना चाहिये। भारी, तले हुए एवं गरम-तीखे पदार्थों से परहेज़ करना नितांत आवश्यक है।

□

एक बार महाराष्ट्र के एक नगर में भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री अटल-बिहारी वाजपेयी को सिक्कों से तौला गया।

अंत में भाषण देते हुए वाजपेयीजी ने कहा—'भाइयो, आपने मुझे सिक्कों से तौला इसके लिए धन्यवाद, किंतु आप अपने प्रदेश के मुख्यमंत्री (तत्कालीन) का भी ध्यान रखना; क्योंकि वे अभी 'अन्तुले' हैं।'

—श्याम मनोहर व्यास

□

हिंदी : महापुरुषों की दृष्टि में

□

- हिंदी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—स्वामी दयानंद

- राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।

—महात्मा गांधी

- हिंदी एक जानदार भाषा है। वह जितनी बढ़ेगी, देश को उतना ही लाभ होगा।

—जवाहरलाल नेहरू

- हिंदी पढ़ना और पढ़ाना हमारा कर्तव्य है। उसे हम सबको अपनाना है।

—लालबहादुर शास्त्री

- हिंदी की होड़ किसी प्रांतीय भाषा से नहीं, केवल अंग्रेजी के साथ है।

—डा. राजेंद्रप्रसाद

- हिंदी देश की एकता की कड़ी है।

—डा. जाकिर हुसैन

- मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं नहीं सह सकता।

—विनोबा भावे

- मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिंदी सम्पर्क भाषा बनकर रहेगी।

—वि. वि. गिरि

- हिंदी अब सारे भारत की राष्ट्रभाषा बन गयी है। हमें उस पर गर्व होना चाहिये।

—सरदार पटेल

- सबको हिंदी सीखनी ही चाहिये। इसके द्वारा भाव-विनिमय से सारे भारत को सुविधा होगी।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

- हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

—मैथिलीशरण गुप्त

- हिंदी का प्रचार राष्ट्रीयता का प्रसार है।

—पुरुषोत्तमदास टंडन

- हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, वह तो है ही।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

संकलनकर्ता : नरेशकुमार बंका

□

नवनीत : आपकी निगाह में

□

नवनीत के प्रत्येक अंक के अधिकांश लेख बड़े प्रेरणादायक होते हैं। मई-८३ का अंक मेरे सामने है। 'टेरी फॉक्स' की जीवनी बड़ी प्रेरक जान पड़ी। 'परपार के गायक रवीन्द्रनाथ' लेख बहुत अच्छा लगा। आपका लेख 'भारत के उत्थान में संतों की भूमिका' बड़ा प्रेरणादायक जान पड़ा। 'यज्ञानुष्ठान और भारतीय संस्कृति के मूलतत्व' लेख बहुत ही ज्ञानवर्धक है।

—व्योहार राजेन्द्रसिंह, जबलपुर, म. प्र.

०००

नवनीत का कई वर्षों से मैं नियमित पाठक हूं। वास्तव में पत्रिकाओं की श्रेणी में **नवनीत** अपना यथा नाम तथा गुण को चरितार्थ करता है। इसका प्रत्येक अंक संग्रहणीय है। जून-८३ के अंक में 'भारतीय विद्या भवन के प्रथम दानदाता सेठ मूंगालाल गोयनका' के जीवन चरित्र से बहुत प्रेरणा मिली। 'कला का सौंदर्य-स्वर्ग खजुराहो,' तथा 'आम का पेड़' क्रमशः बहुत ही मर्मस्पर्शी लगे। 'सर्प दंश से मृत व्यक्ति जी उठा' वास्तव में बहुत ही रोमांचकारी घटना लगी।

सभी श्रेष्ठ रचनाओं से अंक अनूठा बन गया है। अगले अंक की प्रतीक्षा है।

—हरिश्चंद्र पाठक, धार, म. प्र.

०००

आपके द्वारा संपादित **नवनीत** पत्रिका वास्तव में चरित्र-निर्माण की पत्रिका है। हिंदी साहित्य से ओतप्रोत पत्रिका ज्ञानवर्धक और रोचक है। जून-८३ के अंक की सामग्री में बंगला साहित्यकार विमल मित्र की कहानी 'आत्महत्या या हत्या' बहुत ज्ञानवर्धक रही। पत्रिका की सभी सामग्री बहुत ही रोचक है।

—कु. विभा पंड्या, अंबिकापुर, म. प्र.

०००

एक से बढ़कर एक सुंदर सामग्री से संपन्न जून-८३ का अंक मिला। शुरू से अंत तक पढ़ डाला। 'भारतीय विद्या भवन के प्रथम दानदाता श्री मूंगालाल गोयनका' के प्रति मन श्रद्धा से भर गया। 'भारतीय संस्कृति के उपासक डॉ. बुल्के' तथा 'मिथिलांचल की लोककला' आदि लेख इस अंक की शोभा हैं। विमल मित्र की कहानी 'आत्महत्या या हत्या' के लिए बहुत धन्यवाद। उच्चस्तरीय लेखकों की कहानियों का आपका चुनाव सर्वथा प्रशंसनीय है। आज जबकि हिंदी में अनेक पत्रिकाएं अपनी श्रेष्ठता का ढोल पीटती हैं, उनमें **नवनीत** चुपचाप अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है— यही इसकी श्रेष्ठता है।

—अरुण गनेरीवाल, जमशेदपुर

०००

नवनीत का अंक मुझे प्रथम बार पढ़ने को मिला। अपने सफर के दौरान एक

बुकस्टाल से मैंने उसे खरीदा था। मुझे तलाश थी कि मैं एक अच्छे साहित्य को पढ़ूं और उसका ग्राहक बनूं। जून-८३ का **नवनीत** मेरे हाथ लगा। श्री विनोद शंकर शुक्ल की व्यंग्यकथा 'शोधं शरणं गच्छामि' पढ़ी। उसमें शिक्षित नवयुवकों की बेरोज़गारी का चित्रण किया गया है। साथ ही डॉ. मुल्कराज आनंद का 'कला का सौंदर्य-स्वर्ग खजुराहो' लेख बहुत प्रिय लगा। असीम चक्रवर्ती की सत्यकथा 'मौत के चंगुल में कई घंटे' भी अच्छी लगी। अब मैं **नवनीत** का प्रत्येक अंक पढ़ता ही रहूंगा।

—मुकेशकुमार राही, भीलवाड़ा, राज.

०००

नवनीत का जून-८३ का अंक पढ़ा। 'महात्मा गांधी का पत्र हिटलर के नाम' आज के संदर्भ में अति प्रासंगिक और उपयोगी लगा। श्री रतनलाल जोशी के 'भगवान के आश्वासन पूरे करने के लिए ही दोहराये जाते हैं' भी आदर्श एवं मननीय संस्मरण है। इसमें संत आगस्तीन का जो उद्धरण आया है, वह हमारे केनोपनिषद् जैसा लगा। महापुरुष कहीं के हों, उनकी आत्मा की आवाज़ एक ही होती है। विमल मित्र की कहानी 'आत्महत्या या हत्या' आज के इस अति सुविधा-भोगी जगत के आये दिन के परिणाम को उजागर करती एक सशक्त रचना है।

—टीकाप्रसाद शर्मा, धरान, नेपाल

०००

भारतीय आर्ष-परंपरा, जीवन-मूल्य और संस्कृति के उत्कर्ष प्राप्त प्रतिमानों के संवाहक की भूमिका का निर्वाह संप्रति यदि कोई भी मासिक पत्र कर रहा है, तो वह है **नवनीत**।

मई १९८३ के अंक में 'यज्ञानुष्ठान और भारतीय संस्कृति के मूलतत्व' शीर्षक से अभिहित श्री सन्हैयालाल ओझा का लेख पढ़ा। विवेच्य के भाव-गांभीर्य और भाषा के प्रांजल स्वरूप के संदर्भ में मुझ जैसे पाठक के द्वारा कुछ भी कहना या कह पाना कदापि संभव नहीं। उक्त लेख के माध्यम से अनेक नूतन स्थापनाएं संभव हुई हैं और एकाधिक ऐसी स्थापनाएं, जो प्रतिबद्ध ऐतिहासिक दृष्टिबोध के कारण सही दिशाबोध कराने में असमर्थ थीं। आर्य-अनार्य समस्या, आर्य एवं आर्येतर सांस्कृतिक-धार्मिक मूल्यों पर इतनी विशद विवेचना इसके पूर्व सुलभ नहीं हुई थी।

—अमरनाथ तिवारी, मिर्जापुर, उ. प्र.

०००

नवनीत का जून-८३ अंक देखा, मन प्रसन्न हो गया। फिर वही चिकना कागज़, सुंदर छपाई और रेशमी छुअन। हां, आवरण-चित्र इस अंक का भी आकर्षक नहीं है। मार्च-८३ तक के आवरण पृष्ठों पर राधाकृष्ण के रंगीन चित्रों की प्रदर्शनी बड़ी ही मोहक और नयनाभिराम थी।

श्रीरंजन सूरिदेव का शोधपरक निबंध 'वासुदेवहिण्डी की पारंपरिक विद्याएं' डॉ. रघुवंश का विचारोत्तेजक उद्बोधन 'हमारा मूल्य-निरपेक्ष व्यक्तिवाद', अन-

वर आगेवान का प्रेरणाप्रद स्तवन 'भारतीय विद्या भवन के प्रथम दानदाता' और 'कला का सौंदर्य-स्वर्ग खजुराहो' **नवनीत** के जून-८३ के अंक की स्मरणीय रचनाएं हैं। **नवनीत** से हमें ऐसे ही स्तरीय साहित्य और मनमोहक रूप-सज्जा की सदैव अपेक्षा रहेगी। **—ए. एल. श्रीवास्तव, इलाहाबाद**

०००

नवनीत के प्रत्येक अंक से जिज्ञासु मन तृप्त और आह्लादित हो रहा है। कृपा कर एतदर्थ मेरी कृतज्ञता एवं बधाई स्वीकारें। माह जून के अंक में डॉ. मुल्कराज आनंद का 'कला का सौंदर्य-स्वर्ग खजुराहो' शीर्षक कला-विषयक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें कहा गया है कि 'मंदिर का उच्च शिखर मानव को भगवान तक उठती हुई आकांक्षाओं के प्रतीक के रूप में सर्वमान्य हो चुका है'। इस संबंध में निवेदन है कि कृपा कर और अधिक बोध-लाभ करायें कि मंदिरों में कलश-निर्माण कब, कहां से प्रारंभ हुआ? आकांक्षाओं के प्रतीक के रूप में मान्य होने के अतिरिक्त क्या इसका कोई अन्य प्रयोजन-लाभ भी है? विश्वास है आप कृतार्थ करेंगे।

—स्वरूपचन्द जैन, मेरठ, उ. प्र.

०००

नवनीत का किशोरावस्था से प्रशंसक हूं। आज पत्रिकाओं की भीड़ में अपना विशिष्ट स्थान बनाये रखना अपने-आप में भगीरथ प्रयास है। **नवनीत** भारतीय दर्शन के प्रति ललक पैदा करने में जितना सफल हुआ है, उतना ही बौद्धिकता के परिमार्जन में भी। **नवनीत** का आवरण पृष्ठ ही **नवनीत** की विशिष्टता के स्तर का परिचायक रहता है। जून-८३ के अंक में सभी लेख गुण-गरिमा लिये हुए हैं। 'मंत्र-शक्ति एक अध्ययन' को पढ़कर एहसास हुआ कि मंत्रों के बारे में पहले से जानकारी न प्राप्त करने से हमने बहुत-कुछ खो दिया है।

—प्रकाश पालीवाल, अकलतरा, म. प्र.

०००

नवनीत का मई-८३ का अंक पढ़ा। निर्मल कुमार का लालित्यपूर्ण निबंध 'वैसे तो . . .' एवं व्यास श्रीप्रकाश त्रिपाठी का हृदयस्पर्शी लेख 'आनंद के आयाम' आज की विषम एवं त्रस्त मानवता के संबंध में सोचने को विवश करते हैं एवं मुझे **नवनीत** के माध्यम से कुछ कहने को बेचैन करते हैं। आज हर व्यक्ति त्रस्त, अशांत और कुंठित जीवन जी रहा है। हम प्रकृति एवं अपने मध्य समायोजन नहीं कर पा रहे हैं। भौतिकता से पीड़ित मानव अपने-अपने अंतर के सत्य को नहीं खोज पा रहा है। विसंगति और संताप से भरे जीवन में आनंद और शांति का तभी अनुभव हो सकता है, जब हम अपने अंतस् को जान सकें एवं अंतर के आलोक को पा सकें। **नवनीत** पत्रिका मानव के सांस्कृतिक उत्थान हेतु इसी प्रकार के निबंध प्रकाशित करती रहेगी, ऐसा विश्वास है।

—संध्या वात्स्यायन, चंदौसी, उ. प्र

मैं लगभ[illegible] नियमित पाठक हूं । **नवनीत** एक उच्च कोटि की पत्रिका है । यह दोहराने की आवश्यकता नहीं कि यह ज्ञानवर्धक भी है । अभी **नवनीत** जुलाई-८३ का अंक पढ़ा । बहुत ही उत्कृष्ट रचनाएं लगीं । **नवनीत** तनहाई में एक दोस्त की भूमिका निभाता है । जुलाई अंक में पुष्पा सक्सेना की कहानी 'तलाश के हाशिये' ने अत्यधिक प्रभावित किया।

इसी प्रकार 'पाब्लो पिकासो: 'होक्स या जीनियस' के लेखक देवेंद्र इस्सर को शत-शत बधाई । उम्मीद है **नवनीत** इसी प्रकार पाठक वर्ग को उच्च स्तर की रचनाएं हर अंक में भेंट करता रहेगा ।

—श्रवणकुमार, ग्वालियर, म. प्र.

०००

नवनीत नियमित रूप से पढ़ता हूं । [illegible] हूं तो भारतीय संस्कृति और धर्म के प्रति नयी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है । इसमें कोई संदेह नहीं कि वर्तमान पतनोन्मुख समाज के लिए **नवनीत** पत्रिका उत्तिष्ठत जाग्रत का संदेश देती है ।

नवनीत का जून-८३ अंक देर से देखने को मिला । विमल मित्र की कहानी 'आत्म-हत्या या हत्या' उन लोगों के लिए एक सीख है, जो अनजाने में अपनी हत्या का उद्योग कर रहे हैं । पूरी कहानी में पाठक की उत्सुकता बनी रहती है । 'गंवई मन और गांव की याद' पढ़कर गांव में पला-बढ़ा, किंतु शहर में कैद, हर व्यक्ति गांव की याद में डूब जायेगा । जहां शहर में मनुष्य के अहंकार की कुरूपता है, वहां गांव में प्रकृति का मधुर सौंदर्य है।

—ज्ञानेश्वर प्रसाद त्रिपाठी, लखनऊ, उ. प्र.

□

(पृष्ठ १३६ का शेषांश)

मज़ाक उड़ाया करता था, 'जू-जू ? वही न, जिससे गंवार अफ्रीकी डरते हैं ।' लेकिन, मैं आज 'जू-जू' का मज़ाक नहीं उड़ा सकता, क्योंकि मैं खुद 'जू-जू' से डरता हूं ।

'जू-जू' की मैं कोई तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सकता । सिर्फ़ इतना कह सकता हूं कि दुनिया में अच्छाई के साथ बुराई भी है । उजाला है तो अंधेरा भी है । कालेजादू का प्रयोग सिर्फ़ अफ्रीका के जादूगर ही नहीं करते, तिब्बत, मंगोलिया आदि के पीतमुखी जादूगर भी, और एलेस्टर क्राउले जैसे गोरे जादूगर भी करते हैं ।

और जादू-विशेषज्ञ तो यहां तक मानते हैं कि 'जू-जू' का सर्जनात्मक पक्ष और चिकित्सात्मक मूल्य भी है । उनके अनुसार, इसका सफल प्रयोग शारीरिक रोगों और मानसिक विकृतियों के रेचन व शोधन में भी हो सकता है ।

शायद कोई साधक 'जू-जू' को, भविष्य में सर्जनात्मक दिशा प्रदान कर सके ।

□

सु रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४०० ००७ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४०० ००४ में मुद्रित ।

Regd. No. BYW 203